



四庫全書

卷一百一十五

詩經

113425

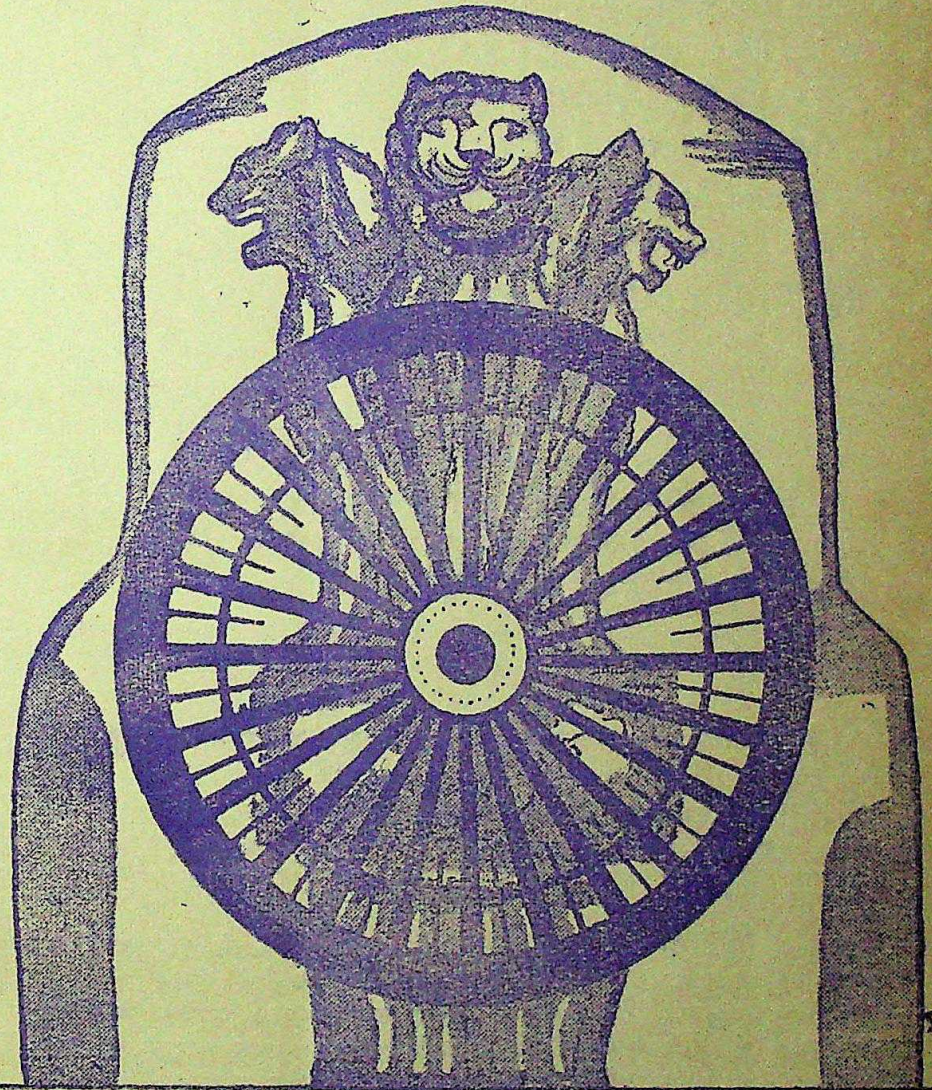
COMPILED

~~PT-181~~

Book Verification-2014

धर्मदूत

COMPILED



महाबोधि समा का मासिक मुख-पत्र

सितम्बर
वर्ष २२
अंक ५

एक अंक का ।
वार्षिक ४



विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१. बुद्ध-वचनानुसृत—'निर्वाण सबसे बड़ा सुख है'	१११
२. नवदीक्षित बौद्ध—श्रीराहुल सांकृत्यायन	११२
३. नवदीक्षित बौद्धों से—श्रीधर्मरत्न यमि	१२०
४. सिद्धार्थ-जननी महात्माया—सुश्री विद्या बी० ए०	१२१
५. बौद्धधर्म की कुछ विशेषताएँ—भिक्षु अश्वघोष	१२३
६. महाभिमिश्रकमण—श्री रामलाल भौतमाँगे	१२४
७. महासमय सुत—श्री मोहनकुमार नाथूसिंह तेंवर	१२५
८. धर्म-विजय—श्रीमती यशोदादेवी कुशवाहा	१२७
९. शारिपुत्र-प्रकरण—डा० सीताराम सहगल	१२९
१०. बौद्ध-जगत	१३१

बुद्धजयन्ती विशेषांक

'धर्मदूत' के २५०० वीं बुद्धजयन्ती के अवसर पर प्रकाशित विशेषांक की कुछ प्रतियाँ और शेष हैं। १॥) प्रति के हिसाब से इन्हें 'धर्मदूत' कार्यालय से प्राप्त किया जा सकता है। इस विशेषांक में बौद्धधर्म सम्बन्धी सभी सामग्री संग्रहीत है।

'धर्मदूत' के नियम—

- १—'धर्मदूत' भारतीय महाबोधि सभा का हिन्दी मासिक मुखपत्र है। 'धर्मदूत' प्रति पूर्णिमा को प्रकाशित होता है।
- २—'धर्मदूत' के ग्राहक किसी भी मास से बनाये जा सकेंगे।
- ३—पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक-संख्या एवं पूरा पता लिखना चाहिये, ताकि पत्रिका के पहुँचने में गड़बड़ी न हो।
- ४—लेख, कविता, समालोचनार्थ पुस्तकें (दो प्रतियाँ) और बदले के पत्र सम्पादक के नाम तथा प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र और चन्दा व्यवस्थापक के नाम पर भेजना चाहिये।
- ५—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने या न करने घटाने-बढ़ाने या संशोधन करने का अधिकार सम्पादक को है। बिना डाकखर्च भेजे अप्रकाशित कविता या लेख लौटाये न जा सकेंगे। जिस अङ्क में जिसका लेख या कविता छपेगी वह अङ्क उनके पास भेज दिया जायगा।
- ६—'धर्मदूत' में केवल बौद्धधर्म, कला, संस्कृति, साहित्य, पुरातत्व आदि सम्बन्धी लेख ही प्रकाशित किये जा सकेंगे।
- ७—किसी लेखक द्वारा प्रकटित मत के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।
- ८—'धर्मदूत' का वार्षिक मूल्य ४) और आजीवन ५०) है।

व्यवस्थापक

"धर्मदूत" सारनाथ, वाराणसी



113425

धर्मविद्वत्

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं । देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्जे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवल परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ । महावग्ग, (विनय-पिटक)

‘भिक्षुओ ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिये, लोक पर दया करने के लिये, देव-ताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो । भिक्षुओ ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्था में कल्याणकारक धर्म का उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो ।’

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष २२

सारनाथ,

सितम्बर

बु० सं० २५०१

ई० सं० १९५७

अङ्क ५

बुद्ध-वचनान्त

‘निर्वाण सबसे बड़ा सुख है’

‘यदि साथ विचरण करने वाला अनुकूल विद्वान् मित्र मिल जाय, तो सभी विघ्नों को दूर कर उसके साथ स्मृतिमान् और प्रसन्न होकर विहार करे । यदि ऐसा मित्र न मिले तो पराजित राष्ट्र को छोड़ राजा की भाँति, हस्तिराज के समान अकेला विचरण करे । अकेला रहना उत्तम है । मूर्ख के साथ मित्रता अच्छी नहीं । अकेला विचरे, पाप न करे । हस्तिराज की तरह अनुत्सुक होकर रहे । काम पड़ने पर मित्रों का होना सुखकर है । जो मिले उससे सन्तुष्ट रहना सुख है । मृत्यु के उपरान्त पुण्य सुख है । सभी दुःखों का प्रहाण सुख है । संसार में माता और पिता की सेवा सुखकर है । संन्यास सुखकर है और निष्पाप होना भी सुखकर है । वृद्धावस्था तक शील का पालन सुखकर है । स्थिर श्रद्धा का होना सुखकर है । ज्ञान का लाभ करना सुखकर है । पापों का न करना सुखकर है ।

आरोग्य-परमा लाभ,

सन्तुष्टी परम धन ।

विस्वास-परमा जाती,

निव्वानं परमं सुखं ॥

निरोग होना परम लाभ है । सन्तोष परम धन है । विश्वास सबसे बड़ा बन्धु है । निर्वाण सबसे बड़ा सुख है ।

—धम्मपद

नवदीक्षित बौद्ध

श्री राहुल सांकृत्यायन

मई १९५६ से मई १९५७ तक बुद्ध-निर्वाण की २५ वीं शताब्दी बड़े जोर शोर से मनाई गई। लोगों ने और केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों ने दिल खोलकर उसमें भाग लिया। सरकार ने करोड़ों से अधिक रुपये खर्च कर के शताब्दी के अवसर पर बौद्ध प्रधान स्थानों में नई इमारतें, सबके तैयार करवाईं। कितने ही विशाल अतिथि-गृह बनवाये। बुद्ध सात शताब्दियों से निर्वासित थे। उन्हें पुनः अपने घर में स्वागत के लिये बुलाया जा रहा था। वर्तमान शताब्दी के आरम्भ में हरेक इतिहास और अपनी संस्कृतिक प्रेमी को यह बड़ी दुस्सह बात मालूम होती है, कि जिसके चरणों की छाप हमारे विस्तृत देश में सब जगह पुरानी मूर्तियों और ध्वंसावशेषों के रूप में मिलती है, उस महापुरुष का लोग नाम तक नहीं जानते थे। जिसके दर्शन की गूँज हमारे दर्शन के संस्कृत ग्रन्थों में स्पष्ट सुनाई देती थी, उसकी वाणी का हमारे यहाँ कोई पता नहीं था। जिसके उपदेशों से प्रेरित होकर भर-हुत और साँची की सौन्दर्यमय मूर्तियाँ निर्मित हुईं, जिसके आदर्श पर जीवन समर्पित करनेवालों के लिये कारला, भाजा आदि के भव्य गुहाविहार बने, वह उपेक्षित और सूने-सूने थे। पिछली आधी शताब्दी तक शिक्षित और संस्कृत भारतीय जिस अभाव को बड़े दुःख के साथ देख रहे थे, उसकी एक अंश में पूर्ति हो रही थी, इसीलिये वह पच्चीसवीं शताब्दी के महोत्सव में दिल खोलकर भाग ले रहे थे।

पर, हमारे देश में ऐसे लोगों का भी अभाव नहीं था, जो बुद्ध के इस स्वागत को फूटी आँखों नहीं देखना चाहते थे। उन्होंने इसके खिलाफ आवाज भी उठाई—दूसरे धर्मों से निरपेक्ष रहकर सरकार बौद्धों के प्रति इतनी आत्मीयता क्यों दिखला रही है। वह भाव किसी पुराने रुढ़िग्रस्त पण्डित के मस्तिष्क से नहीं निकल रहे थे, बल्कि नवशिक्षित तथा अपने को भारतीय संस्कृति के एकमात्र

ठेकेदार माननेवालों के मुँह से निकल रहे थे, वे सोते-जागते, उठते-बैठते भारतीय संस्कृति की दुहाई देते थे, और विदेशी धर्मवालों को फूटी आँखों देखना नहीं चाहते थे। वह नहीं चाहते थे, कि भारतीय सरकार बौद्धों के लिये इतना खर्च करे। उनकी आवाज नक्कासखाने में तूती की आवाज साधित हुई। पर, वह हताश नहीं थे। उनके मन की अब हमारी सरकार कर रही है, गोया अपने किये पर पानी फेर रही है।

पच्चीसवीं निर्वाण-शताब्दी का फल बौद्ध तीर्थस्थानों में इमारतों के खड़े होने, बुद्ध पर ग्रन्थों के प्रकाशित होने तथा जुलूसों और सभाओं तक ही सीमित नहीं रहा। इस एक वर्ष के भीतर भारत में आध करोड़ लोग बौद्ध हो गये। यह जादू के चमत्कार जैसा था। जहाँ बुद्ध और बौद्धों का नाम पढ़कर कभी-कभी लोग मनबहलाव कर लेते थे, वहाँ लाखों के जुलूस में “बुद्ध भगवान् की जय” का नारा लगने लगा। एक आगरा शहर ही में पच्चीसों छोटे-बड़े बुद्धमन्दिर बन गये। हजारों नौजवानों ने अपने धर्म-ग्रन्थ का अध्ययन शुरू किया, अपने विस्मृत इतिहास को जीवित करने के लिये तैयारी शुरू की। महापुरुष अम्बेडकर ने धर्म-चक्र प्रवर्तन की पुनरावृत्ति की, जब कि पिछले साल नागपुर में उनके साथ तीन लाख नर-नारियों ने त्रिशरण पंचशील से बुद्धधर्म की दीक्षा ली।

नवम्बर १९५६ का वह दिन नहीं भूल सकता, जब कि नेपाल में बाबासाहब अम्बेडकर ने बड़े भावावेश में, पर गम्भीरता के साथ घोषित किया—दो वर्ष और जी जाऊँ, तो भारत में पाँच करोड़ बौद्धों को दिखा दूँगा। हजार अफसोस, कि वह संकल्प पूरा नहीं हुआ। उस समय भी वह शरीर से बेकाबू थे। लेकिन, कौन आशा कर सकता था, कि दो महीना भी पूरा नहीं होगा, और बाबासाहब को अपना संकल्प पूरा किये बिना जीवन समाप्त करना होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं, कि बौद्ध-

नवदीक्षित बौद्ध

११३

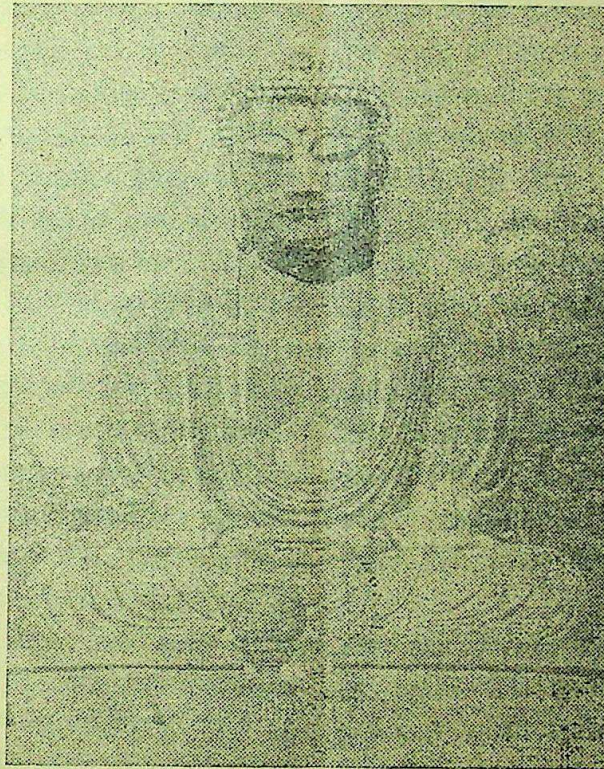
समाज की भारत में सात सौ वर्षों बाद इस ठोस प्रतिष्ठा में सब से बड़ा हाथ बाबा साहब का है। इतिहास उन्हें कभी भुला नहीं सकेगा। पिछली आधी शत-वर्षों में सैकड़ों शिक्षित-संस्कृत पुरुष हमारे देश में हुये, जिन्हें बौद्ध-धर्म का अभाव बहुत खटकता था। वह ठण्डी साँस लेकर कहते थे—क्या वह बौद्ध-समाज हमारे देश में फिर नहीं आयेगा, जिसकी महिमा फाहियान, स्वेन्, चाङ् और ई. चिङ् के यात्रा-ग्रन्थों में मिलता है? व्यक्तिगत तौर से उनमें से कितने ही बौद्ध बने। जिसके ऊपर एक बार बुद्धवाणी और उससे प्रेरित कला तथा संस्कृति की छाप पड़ गई, वह जीवन भर उसके मन से मिटनेवाली नहीं है। लाहौर के प्रसिद्ध वकील पं० शिवनारायण शर्मा ने एक बार स्वामी दयानन्द के बारे में लिखते हुये कहा था—मैंने स्वामीजी को देखा था। उनके भाषण सुने थे। पर, मेरे दिल और दिमाग को पहले ही बुद्ध ने ले लिया था, इसलिये मैं आर्यसमाजी नहीं बन सका। इन पंक्तियों का लेखक कह सकता है—

बुद्ध से परिचय प्राप्त करने से पहले अपने दिल और दिमाग को उसने ऋषि दयानन्द को दे दिया था। पर, जब बुद्ध की वाणी और व्यक्तित्व से परिचय प्राप्त करने का अवसर मिला, तो उस दान को लौटाना पड़ा, और तथागत के चरणों में सिर सदा के लिये झुक गया। पर, व्यक्तिगत श्रद्धा-भावना से बौद्ध-समाज की दृढ़ प्रतिष्ठा इस देश में नहीं हो सकती थी। पं०

शिवनारायण शर्मा पक्के बौद्ध थे, पर उनकी सन्तान बौद्ध नहीं रह सकी। ऐसे उदाहरण हमारे विशाल देश में सैकड़ों मिलेंगे। असल समस्या थी, कैसे बौद्ध-समाज की दृढ़ नींव रखी जाये।

कोई पूछेगा, बौद्ध-समाज की ऐसी आवश्यकता ही क्या? मैं अभी भारत के सबसे दलित करोड़-करोड़ जनता के बारे में नहीं कहता। केवल भारतीय संस्कृति की

आवश्यकता की दृष्टि से कहता हूँ। भारत का कोई पुराना टीला नहीं, कोई पुराना गाँव नहीं, जहाँ एकाध दूटी-फूटी बौद्ध-मूर्तियाँ न मिलें। पूजा के तौर पर अर्पित की गई “ये धर्मा...” अथवा विहार या व्यक्ति के नाम से उत्कीर्ण मिट्टी की मुहरें न मिलें। मेरे पितृग्राम (कनैला, जिला आजमगढ़) के डिह स्थान में प्रायः हजार वर्ष से महाकाल की मूर्ति पड़ी हुई थी। पहले अखंड तथा पूज्य देवता के रूप में और पीछे तुर्कों द्वारा तीन खण्डों में टूटी, डिह बाबा के प्रतीक के रूप में। वहाँ के लोग बिल्कुल नहीं जानते



जापान की एक बुद्धमूर्ति

थे, कि यह वज्रयान के अत्यन्त प्रभावशाली देवता महाकाल हैं। बौद्ध-धर्म अपने अन्तिम समय में वज्रयान के रूप में हमारे देश में मौजूद था। सहजयान और वज्रयान पर्याय हैं। सहजयान के चौरासी सिद्धों ने उस स्वच्छन्दता का प्रसार किया था, जिसकी प्रतिध्वनि हमें कबीर और दूसरे सन्तों में पीछे मिली - कनैला वालों में इन पंक्तियों का लेखक ही पहले-पहल पहचान सका, कि वह डिह की

मूर्ति कौन है। उसे भी इसका पता न लगता, यदि उस देवता के प्रताप को तिब्बत में छाया न देखा होता। मंत्र-यान, तंत्रयान या वज्रयान में गुण भी थे, पर दोष और भी अधिक थे, जिसके ही कारण वह बौद्ध-धर्म को ले डूबा। उससे भी पुनीत, गौरवमय बौद्ध कृतियाँ हमारे देश में जगह-जगह पड़ी हैं। सारनाथ (वाराणसी) के खंड-हरों में, उसके पास अवस्थित संग्रहालय में खण्डित होने पर भी भव्य और इलाघनीय हजारों मूर्तियाँ हैं। साँची की कला और मूर्तियों के बारे में तो कहने की कोई आवश्यकता नहीं। पेशावर से कलकत्ता और लखनऊ से मद्रास तक के हर संग्रहालयों में एक से एक सुन्दर कला-कृतियाँ हैं, जिनको देखकर उन हाथों को चूम लेने का मन करता है, जिन्होंने उनका निर्माण किया। हमारे गाँव-गाँव में जो यह गौरवपूर्ण प्राचीन निधियाँ बिखरी पड़ी हैं, उन्हें हमारे लोग अन्यपुरुष में पुकारा करते थे—“यह बौद्धों की कृतियाँ हैं।” यहाँ ऐसे आदमियों की आवश्यकता थी, जो अन्यपुरुष में नहीं बल्कि उत्तमपुरुष में कहें—“यह हमारी मूर्तियाँ हैं, हमारे पूर्वजों ने इन्हें बनाया, यह हमारे प्रमुख देवता की मूर्ति है।” आज लाखों बौद्ध भारत में पैदा होकर वही करने जा रहे हैं। अब वह म्यूजियम की चीज तथा इतिहास के प्रतीक के रूप में अन्य पुरुष के रूप में सम्बोधित नहीं की जायेंगी, यह कितने हर्ष की बात है।

उस दिन एक जैन साप्ताहिक पत्र में एक लेख पढ़ा। लेखक ने अपने साधुओं और पंडितों को कोसते हुए कहा था, कि जहाँ एक ही साल के भीतर चालीस लाख बौद्ध इस देश में हो गये, वहाँ जैन धर्म उन्हीं चौदह-पन्द्रह लाख नर-नारियों तक सीमित है, जो कि आज से शायद पाँच सौ वर्ष पहले भी इतने ही थे। जैन हमारे देश के सबसे धनी लोगों में हैं। शिक्षा में भी वह पिछड़े नहीं हैं, और समाज में भी उनका निम्न स्थान नहीं है। इतने साधन-सम्पन्न होने पर भी वह क्यों नहीं हमारे देश के सबसे दलित-उपेक्षित लोगों को अपनी ओर आकृष्ट करने में सफल हुए। अपनी सामाजिक रूढ़ियों में ग्रस्त होने के कारण वह तथाकथित हरिजनों को अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सके। आर्यसमाजी कम से कम मौखिक तौर से उनसे

कहीं अधिक उदार थे। पर, वह भी विशेष नहीं कर सके। सामाजिक उदारता की कमी वस्तुतः इसमें कारण रही, जो कि आर्यसमाजी या जैन हरिजनों को अपनी ओर नहीं खींच सके।

आज से बीस वर्ष पहले हिन्दू ब्राह्मणशाही से निराश हो अम्बेडकर ने धर्मान्तर करने की घोषणा की। उस समय ईसाई, मुसलमान, आर्यसमाजी सभी दौड़ पड़े थे। जानते थे, अम्बेडकर करोड़ों आदमियों का वास्तविक नेता है, उसके हमारे धर्म में आने पर उसके लाखों अनुयायी हमारे मत में आ जायेंगे। सिक्खों ने अम्बेडकर और उनके अनुयायियों को अपने मत में दीक्षित करने के लिये लाखों रुपये जमा किये। असफल होने पर उन्होंने उस रुपये से बम्बई में खालसा कालेज के नाम से एक विशाल कालेज स्थापित कर दिया, जो अब भी शिक्षा का उपयोगी काम कर रहा है। अम्बेडकर के पास दूसरे धर्मों की तरह बौद्ध-धर्म भी अपनी पुस्तकों के रूप में पहुँचा। १२६०-७० ई० में कुबले खान को अपने धर्म में करने के लिये जिस तरह दुनिया के दीन और मजहब दौड़ पड़े, वही बात आज से २० वर्ष पहले अम्बेडकर के लिये हुई थी। कुबले को अन्त में लामा फग्स्-पा बौद्ध धर्म की ओर आकृष्ट करने में सफल हुए। अम्बेडकर के पास कोई लामा फग्स्-पा जैसा महाविद्वान् बौद्ध आचार्य नहीं पहुँचा। बौद्ध-धर्म की पुस्तकें जरूर उनके पास गईं। अम्बेडकर ने उनका अध्ययन, गम्भीर अध्ययन किया, इसमें सन्देह नहीं। तभी तो जब पार्लियामेन्ट ने अम्बेडकर की किसी बात पर व्यंग करते हुये किसी सदस्य ने कहा—आपकी आत्मा को शान्ति मिले, तब उन्होंने जवाब दिया था—“मैं बौद्ध हूँ। मैं आत्मा को नहीं मानता।” बौद्ध अनात्मवाद को समझ पाना किसी भी दूसरे धर्म के लिये अत्यन्त कठिन काम है। आत्मा और ईश्वर से भी इन्कार होकर रहना किसी भी धार्मिक विश्वास के आदमी के लिये असम्भव सा मालूम होता है।

अम्बेडकर धर्म को केवल वैयक्तिक दृष्टि से नहीं देखते थे। उसे अपने करोड़ों उन भाइयों की दृष्टि से देख रहे थे, जो कि मानव के हरेक अधिकार से हजारों वर्ष से वंचित थे। उन्हें मानवोचित अधिकार मिलना चाहिये।

नवदीक्षित बौद्ध

११५

इसके लिये ईसाई गारंटी देने को तैयार थे। वह लाखों लाख रुपये खर्च कर सकते थे। बाहर के शक्तिशाली पश्चिमी देशों की सहानुभूति और सहायता उनके लिये सुलभ थी। पर, अम्बेडकर सुशिक्षित, सुसंस्कृत गम्भीर विचारक थे। वह ब्राह्मणशाही और हिन्दू संस्कृति को एक नहीं समझते थे। हिन्दू संस्कृति भारत की संस्कृति है, जिसके विकास में भारत के हरेक समुदाय, हरेक वर्ग ने भाग लिया है। तथाकथित हरिजनों का भी उसके विकास में कम हाथ नहीं है। आज ब्राह्मण और ऊँची जाति के लोग अपने को बड़ा और अछूतों को छोटा भले ही कहें, लेकिन दोनों के रक्त में अब कोई अन्तर नहीं रह गया है। पुरानी कहावत के अनुसार “काला बाभन गोर चमार” असंभव समझे जाते थे। हजारों वर्ष पहले भले ही असंभव समझा जाता हो, लेकिन आज हजारों लाखों काले ब्राह्मण मिलेंगे, और हजारों लाखों गोर चमार। ब्राह्मणों ने वर्ण-व्यवस्था के लिए बड़े जबरदस्त बाँव बाँधे। अपनी जात से बाहर व्याह करना सर्वथा निषिद्ध ठहरा दिया। इसी के बल पर वह घोषणा करते थे—हमारा वर्ण शुद्ध है, हमारा रक्त शुद्ध है। बौद्ध विचारकों ने आज से ढेढ़ हजार वर्ष पहले उनका जवाब दिया था—“वर्ण या जाति की शुद्धि केवल स्त्री के हाथ में है। अगर वह शुद्ध रहने दे, तभी तो जाति शुद्ध रह सकती है। और तुम स्वयं कहते हो कि स्त्री का कोई विश्वास नहीं—“स्त्रियः अशास्य मनः”। फिर तुम्हारी जाति-शुद्धता पर कैसे विश्वास किया जाये? हाँ, तो ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और अछूत का भेद अब केवल कहने भर का है। एक तरह के खाने-रूपड़े और एक तरह के सांस्कृतिक वातावरण में रहने पर उनमें कोई भेद नहीं किया जा सकता। अम्बेडकर जानते थे, कि समय हमारे साथ है। ब्राह्मणशाही अन्धेरेगदीं बहुत दिनों तक नहीं चल सकती। हमारा सारा राष्ट्र एक राष्ट्र और एक जाति बनकर रहेगा। इसलिये कल अवश्यंभावी नष्ट होनेवाली व्यवस्था के लिये हमें भारतीय संस्कृति को नहीं फेंकना चाहिये—वह स्नानपात्र के साथ बच्चे को फेंकने जैसा होगा। अपनी संस्कृति का स्नेह ही अम्बेडकर को ईसाई और इस्लाम धर्म को स्वीकार करने के लिये तैयार होने

नहीं दिया, यद्यपि दोनों की तरफ से उन्हें अपनी ओर खींचने के लिये भारी प्रयत्न हुये थे।

अम्बेडकर ने निश्चय कर लिया था, हमें अपनी संस्कृति की सीमासे बाहर नहीं जाना है, पर, साथ ही, ब्राह्मणशाही के सामने भी सिर झुकाना नहीं है। आर्यसमाजी ब्राह्मणशाही से दूर नहीं थे, जैन और सिक्ख भी उसके लपेटे में आ गये थे। उनके अनुयायियों की दृष्टि में अछूत-अछूत ही था। बौद्ध-धर्म पर जब अम्बेडकर की गम्भीर दृष्टि पड़ी तो सचमुच ही उन्होंने उल्लास में आकर कहा होगा—“वह चीज मिल गई, जिसे मैं ढूँढ़ रहा था। बल्कि जितना चाहता था, उससे भी अधिक मात्रा में मिली।” बौद्ध-धर्म बहुत उदार है। सामाजिक दृष्टि से वह वर्ण-भेद, जाति-भेद देश-भेद को नहीं मानता। बुद्ध सबसे बड़े प्रथम जनतन्त्रवादी विचारक थे। उनके समय कोसल, मगध, अवन्ती के विशाल राजतन्त्र थे, पर उनका पक्षपात वैशाली के गणतन्त्र से था। महापरिनिर्वाण सुत्त में यह भाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। यही क्यों, उन्होंने अपने भिक्षु-संघ को बिल्कुल गणतान्त्रिक व्यवस्था पर स्थापित किया। किसी बात के निर्णय करने में व्यक्ति नहीं संघ की राय सर्वोपरि मानी। जहाँ राय एक न हो, वहाँ बहुमत (यद्भूयसिक) को निर्णायक समझा जाता। बहुमत अल्पमत जानने के लिये छन्द (वोट) की भिन्न रंग की शलाकायें इस्तेमाल की जातीं। अम्बेडकर ने देखा, जिस जनतान्त्रिकता के ही नीचे हमारे दलित वर्ग के ऊपर उठने की संभावना है, बुद्ध उसके परम समर्थक थे। जनतन्त्रता को केवल वोट या सम्मति-ग्रहण में ही नहीं, बल्कि आर्थिक-क्षेत्र में भी बुद्ध ने व्यवहार करने की कोशिश की, इसीलिये भिक्षु-भिक्षुणियों में निजी सम्पत्ति का निषेध किया। वहाँ पूरे साम्यवाद की स्थापना की। संघ में चांडाल हो या ब्राह्मण, दोनों में किसी प्रकार का अन्तर रखना वर्जित था। चीनी यात्री उल्लेख करते हैं, कि जब वह भारत के किसी बिहार में जाते, तो स्थानीय भिक्षु स्वागत करते हुये पहला सवाल यही करता—“आप कितने वर्ष के हैं?” वर्ष से मतलब भिक्षु बनने के काल से था। यदि आगन्तुक का वर्ष अधिक देखता, तो स्थानीय भिक्षु

दाहिना कंधा खोलकर उकड़ू बैठ दोनों हाथ जोड़ प्रणाम करता, यदि स्वयं वर्ष में अधिक होता, तो अपना वर्ष बतलाता और आगन्तुक उसी तरह उसे प्रणाम करता। संघ में यह समानता का व्यवहार प्रभावित किये बिना नहीं रह सकता, जब वह देखता कि एक कोयले जैसे काले भिक्षुको कपूर जैसा गोरा आदमी उकड़ू बैठकर प्रणाम कर रहा है, चाण्डाल-पुत्र महास्थविर के सामने बैठकर ब्राह्मण-महाशाल पुत्र विद्या ग्रहण कर रहा है।

बाबा साहब के हृदय को छू लेने वाली यह बातें थीं, जिन्होंने उन्हें अपनी ओर आकृष्ट किया। बौद्ध-धर्म में सामाजिक विषमता के लिये स्थान नहीं है। वह सिद्धान्त-रूपेण आर्थिक विषमता का भी विरोधी है। बहुजन और गणतन्त्र को वह सर्वोपरि मानता है। इसके साथ ही जब अम्बेडकर जैसे विचारशील पुरुष ने बौद्ध-दर्शन को देखा, तो वह हर्ष के मारे आत्मविभोर से हो गये। यदि वह बुद्धिवादी न होते, तो यहाँ डरने की बात भी थी। बचपन से वह ईश्वर और भगवान् का नाम सुनते आये थे। बचपन से भूत का नाम सुनते रहने के कारण आदमी सयाना होकर तर्क से भूत के अस्तित्व को न मानते हुये भी भूत के भय से जल्दी मुक्त नहीं होता। ईश्वर के आगे-पीछे तो बड़े-बड़े दर्शन खड़े किये गये हैं, बड़े-बड़े पोथे लिखे गये हैं। दुनिया के सारे धर्म दूसरी बातों में चाहे भले ही आपस में कटे-मरे, पर ईश्वर, गाड़, यहोवा या अल्ला के सामने सभी सिर नवाये और अकल बैच खाने के लिये तैयार हैं। सिर्फ बौद्ध ही एक ऐसा धर्म है, जिसमें ईश्वर के लिये कोई स्थान नहीं है। ईश्वर से मुक्ति पाये बिना बुद्धि पूरी तौर से मुक्त नहीं हो सकती। फिर उन्होंने आत्मवाद के सिद्धान्त पर गम्भीर धिक्चन किया। दुनिया की सभी वास्तविक वस्तुयें क्षणिक हैं। जो क्षणिक नहीं, वह वास्तविक नहीं। इस अनित्यवाद पर विचार किया। दर्शन के तौर पर बौद्ध-धर्म को उन्होंने आज भी आधुनिकतम और प्रगतिशील देखा। यद्यपि दर्शन साधारण जनता की दिलचस्पी का विषय नहीं हो सकता, उसके समझनेवाले बहुत थोड़े ही होते हैं। पर, अगर दर्शन (दृष्टि) सम्यक् (ठीक) हो तो आदमी बहुत से मानसिक बंधनों से मुक्त हो जाता है। ईश्वर को मानने पर ईश्वरी

पुस्तक भी सिर थोपी जाती है। ब्राह्मणशाही अपने वेद, पुराण, उपपुराण, मनुस्मृति सबके बोझ को लादकर आदमी को सिर उठाने लायक नहीं रहने देती। ईसाई बाइबल, मुसलमान कुरान द्वारा उसी प्रकार बुद्धि को बाँधना चाहते हैं। बौद्ध धर्म किसी पुस्तक को बुद्धि के ऊपर मानने के लिये नहीं कहता। उसका तो बल्कि कहना है—

वेदप्रामाण्यं कश्चित् कर्तृवादः,

स्नानधर्मच्छा जातिवादावलेपः।

सन्तापारम्भः पापाहानाय चेति,

ध्वस्तप्रज्ञानां पंच लिंगानि जाड्ये ॥

[वेद (ग्रंथ) की प्रमाणता, किसी (ईश्वर) का (सृष्टि-) कर्तापन (कर्तृवाद), स्नान (करने) में धर्म (होने) की इच्छा रखना, जातिवाद (छोटी बड़ी जाति-पाँत) का घमंड, और पाप दूर करने के लिये (शरीर को) सन्ताप देना (उपवास तथा शारीरिक तपस्या करना)—ये पाँच हैं, अकल-मारे (लोगों) की मूर्खता (जड़ता) की निशानियाँ।]

जहाँ तक उनके अपने विचारों का सम्बन्ध है, बौद्ध-धर्म और दर्शन को उन्होंने सबसे अधिक पसन्द किया। सामाजिक, मानसिक सभी तरह की पूर्ण स्वतन्त्रता देने में बौद्ध-धर्म के समान कोई धर्म नहीं था। साथ ही भारतीय संस्कृति की जो सेवायें बौद्ध-धर्म और बौद्ध-विचारकों ने की हैं, उनकी किसी दूसरे से तुलना नहीं की जा सकती। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है, कि हमारी सुन्दरतम और प्राचीनतम मूर्तियाँ भरहुत और साँची की बौद्ध-मूर्तियों के रूप में मिलती हैं। हमारे सुन्दरतम और प्राचीनतम चित्र अजन्ता और बाघ के चित्रों के रूप में मिलते हैं। हमारी मूर्तिकला के भव्य रूप जावा के बोरो-बुदुर, कम्बोज के अंकोरवात, मध्य-एशिया के तुंग-ह्वान् के रूप में भारत से बाहर भी इतने, भव्य, विशाल और अद्वितीय हैं, कि जिन्हें देख कर आदमी चकित हो जाता है। अम्बेडकर ने देखा, यह सारी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक निधियाँ हमारे देश में बे-मालिक की पड़ी हुई हैं। यहाँ अन्यपुरुष में बौद्धों की चीजें कह कर उनका परिचय कराया जाता है। “हमारी” कह देने भर से वह हमारी होने वाली हैं, यदि हम बौद्ध हैं। इस अनमोल खजाने की

नवदीक्षित बौद्ध

११७

और उनका मन ललचाये, तो आश्चर्य नहीं। आज जो आधे-करोड़ नव-बौद्ध भारत में हुये हैं, उनके कारण अब भारत में इन सांस्कृतिक निधियों को अन्यपुरुष में नहीं कहा जा सकेगा। हजारों भारतीय बौद्ध अजन्ता में जायेंगे, वहाँ उस चैत्य की पूजा करेंगे, जिसमें बुद्ध के अग्रश्रावक सारिपुत्त और सोगल्लान की अस्थियाँ रक्खी गई थीं, जो पौन शताब्दी तक इङ्ग्लैण्ड में प्रवासित रह कर देश के स्वतन्त्र होने पर ही भारत लौटी हैं। वह कहेंगे—“यह हमारा पूजनीय पवित्र चैत्य, उसी विदिशा नगरी के बाहर बना हुआ है, जहाँ अशोक-पुत्र महेन्द्र का ननिहाल था, जिन्होंने बहुजन-हिताय और भारतीय संस्कृति के प्रसार के लिये राज-सुख को छोड़ कर तान्त्रपर्णी (लंका) में भिक्षु-जीवन विताना स्वीकार किया। सारनाथ, जेतवन, कुसीनारा, बोधगया, संकिसा, नालन्दा, राजगृह, वैशाली धान्यकटक (अमरावती), श्रीपर्वत आदि-आदि हमारे देश के दर्जनों स्मृत पुण्य-तीर्थ पुनरुज्जीवित हो जायेंगे। इन तीर्थों के यात्री अब तक केवल विदेशी बौद्ध होते थे। कुसीनारा के महानिर्वाण चैत्य की पूजा करने के लिये बर्मा भिक्षु और गृहस्थ आया करते थे, जिसके कारण आधी शताब्दी पहले कसया के आसपास के लोग उसे बर्मा का देवता-तीर्थ कहते थे। अब पर्व-त्योहार के समय हजारों भारतीय बौद्ध वहाँ जायेंगे। इसके कारण इन स्थानों की पवित्रता फिर से स्थापित होगी। हमारे इतिहास का गौरव लोगों के मन पर स्थापित होगा।

अम्बेडकर की दूरदर्शिता में किसी को सन्देह नहीं हो सकता। उन्होंने हिन्दू संस्कृति के अवांछनीय तत्व को निकाल फेंका, पर उसके असली भाव और रूप को हाथ से जाने नहीं दिया। हाँ, हिन्दू किसी धर्म विशेष का नाम नहीं है, यह हमारे सारे देश और उसकी हजारों वर्ष व्यापिनी संस्कृति का नाम है। सिन्धु नदी को कहते थे। सरस्वती (कुरुक्षेत्र), सतलज, विपाश (व्यास), परुष्णी (रावी), असिकनी (चनाब) और सिन्ध इन सात सिन्धुओं (नदियों) का देश वैदिक काल में ‘सप्तसिन्धु’ कहलाता था। ईरानी स का उच्चारण ह करते थे। इस प्रकार सप्तसिन्धु उनकी भाषा में हप्तहिन्दू हो गया। इसी हिन्दू शब्द को ह का उच्चारण न कर सकने के कारण ग्रीकों

(यूनानियों) ने इन्द या इन्दु कर दिया। उन्हीं के द्वारा सारे विश्व में फैल कर आज हमारे देश का नाम इन्द (इण्डिया) कहा जाता है। रूसी हरेक भारतवासी को इन्दुस् कहते हैं, जापानी इन्दाजन कहते हैं चीनीमें भी इन्दु नाम हजारों वर्षोंसे प्रचलित है। हिन्दू नाम या शब्द को केवल ब्राह्मण-शाही के लिये प्रयोग गलत है। उसे ब्राह्मणशाही का पर्याय नहीं होने देना चाहिये। इस प्रकार नवदीक्षित भारतीय संस्कृति के प्रबल पक्षपाती होने के कारण हिन्दू शब्द के विरोधी नहीं हो सकते, और न इस नाम से उनको चिढ़ हो सकती है। हाँ, वह यह जरूर ध्यान रखते हैं, कि हिन्दू का अर्थ ब्राह्मणशाही न लिया जाये।

बुद्धकी पच्चीसवीं शताब्दी सारे देश में मनाई जा रही थी, हरेक भारतीय के दिल में बड़ा हर्ष और उत्साह था। वह इसके लिये पं० जवाहरलाल नेहरू का हृदय से कृतज्ञ था। हमारी सरकार धर्म-निरपेक्ष सरकार है। साधारण तौर से देखने पर एक धर्म के संस्थापक बुद्ध के प्रति इतना खर्च करके आदर दिखलाना उसके लिये उचित नहीं समझा जाता। पर, बुद्ध केवल धर्म-संस्थापक नहीं थे। वह उच्च कोटिके विचारक होनेके साथ-साथ हमारे देश और संस्कृतिके महान् उन्नायक थे। उनकी शान्तिमय वाणी ढाई हजार वर्ष पहले गूंजी थी। उन्होंने पंचशील का उपदेश दिया था। उस समय उन्होंने कहा था—“वैरसे वैर नहीं शान्त होता है।” उन्होंने मानव-प्रेम का अद्भुत पाठ पढ़ाया। ऐसा पाठ, जिसके कारण बौद्ध-धर्मदूतों ने अपने विचारों के प्रचार में कभी हिंसा का रास्ता नहीं अपनाया। बुद्ध ही कारण थे, जिससे कि हमारे देश का आधी दुनियासे घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित हुआ। भारत के स्वतन्त्र होते ही चीन के साथ हमारे देश की इतनी जल्दी मैत्री और घनिष्टता क्यों स्थापित हो गई? उसका कारण बुद्ध के वह संदेशवाहक थे। जिन्होंने समुद्र के उताल तरंगों से भय नहीं खाया, हिमालय की चोटियाँ और तकला मकान के रेगिस्तानों को तुच्छ समझा। देश के, सुखी जीवन को छोड़ कर जलने के लिये तैयार हो अपनी हड्डियों को उन देशों में बिखेर दिया। लोयाङ् में काश्यप मातंग की हड्डियाँ दो हजार वर्षों से पड़ी बेकार नहीं हैं, उन्होंने चीन को वह उर्वरता प्रदान

की जिसके कारण भारत के प्रति वहाँ स्नेहानुर उगा। हमारी सरकार इंग्लैण्डके अपने दूतावास पर डेढ़ करोड़ रुपये प्रतिवर्ष खर्च करती है। दूतावासों का काम है देशों में परस्पर सद्भावना पैदा करना। जो काम करोड़ों रुपये वार्षिक खर्च करने पर भी नहीं हो सकता, वह काम भारत और चीन के बीच बुद्धने सुलभ कर दिया। इस लिये यदि बुद्ध की पच्चीसवीं शताब्दी मनाने में हमारी सरकार आगे बढ़े, तो इसे उसका धर्म-निरपेक्षता से विचलित होना नहीं कह सकते, और न यही कह सकते हैं, कि यह फजूल का खर्च है। ऐसा करके उसने शताब्दियों से अपने ऊपर चढ़े बुद्ध के ऋण से थोड़ा उद्धार होने की कोशिश की। धर्म को अलग भी कर दें, तो भी बुद्ध को एक महान् विचारक के तौर पर, समाज के एक महान् कल्याण-चेता के तौर पर वह स्थान प्राप्त है, जिसके समान दुनिया में बहुत कम पुरुष पैदा हुये इस में कोई शक नहीं कि यदि पं० जवाहरलाल नेहरू की जगह हमारे देश का कोई दूसरा प्रधान-मन्त्री होती, तो उतनी दूरदर्शिता से काम नहीं ले सकता था। नेहरू अपने विचारों और आदर्शोंकी बुद्ध में अधिक समानता देखते थे, इसीलिये वह सदासे बुद्ध के व्यक्तित्वकी ओर आकृष्ट थे। उन्होंने वही काम किया, जो करना हमारे देश का कर्तव्य था। पर इसे वही कर सकते थे।

आज आधे करोड़ भारती बाहर के करोड़ों बौद्ध के साथ जीवित संबंध जोड़ने के लिये स्नेह शृंखला है। अम्बेडकर की प्रेरणा और उदाहरण ने हमारे देश के एक विशाल जनको बौद्ध बनने के लिये तैयार किया। जिस वर्ष को हमारी सरकार ने पच्चीसवीं शताब्दी के उत्सव का वर्ष माना, उसी वर्ष आधे करोड़ के करीब हमारे देश-वासी बौद्ध हुये। उनके साथ नव-बौद्ध नाम लगाया जा रहा है। पर, नव-बौद्ध सार्थक शब्द नहीं है। वह किसी नये बौद्ध-धर्म के अनुयायी नहीं हैं। न वह किसी नई बौद्ध-परम्परा कायम करना चाहते हैं। मैं समझता हूँ, 'नव' विशेषण अधिक समय तक उनके साथ नहीं रहेगा। हमारे देश के पंचमांश लोग हजारों वर्षों से मानवोचित अधिकारों से वंचित हैं। पहले बुद्ध के उपदेशों और कार्यों से उनकी स्थिति में कुछ परिवर्तन जरूर

हुआ था, जब कि उनके पुत्र-पुत्रियाँ संघ में बराबर का स्थान प्राप्त करते थे। नार्ई-कुल में पैदा हुये उपालि प्रथम बौद्ध महासंगीति के तीन प्रमुख नायकों—महाकाश्यप, आनन्द और उपालि—में से एक थे। पर, समय अनुकूल नहीं था। स्वतन्त्रता और निरंकुशता का बोल-वाला था। बड़ी जातिवालों ने आर्यागम के सभी मार्गों पर एकाधिकार कर रक्खा था। शक्ति के बल पर वह अछूतों को अपने पैरों के नीचे दबाकर रखे हुये थे। इस स्थिति को बदलने का मार्ग आधुनिक युगमें प्रशस्त हुआ। पूँजीवाद ने ब्राह्मणशाही का दीवाला निकाल दिया। बनिये राजसिंहासन पर हावी हो गये। यद्यपि पूँजीवाद ने मशीनों द्वारा धन के उत्पादन को बढ़ाकर अपार सम्पत्ति भर दी, पर, बहुजनों के पैरों की बेड़ी अब भी नहीं कटी। उसे काट कर मनुष्य मात्र के लिये मुक्त करके सुखी और समृद्ध जीवन दिलाने का बीड़ा समाजवाद-साध्यवाद ने उठाया। हजारों वर्षों की गंदगी अब और ठहर नहीं सकती थी। शिक्षा के प्रसार से आत्मचेतना और आत्म-सम्मान की भावना जगी। अम्बेडकर अत्यन्त दलित अछूत जाति में पैदा हुये थे। अपने देश के बौद्ध-युग के बारे में नहीं कहता, क्योंकि उस समय अम्बेडकर को संघ में ऊँचा स्थान पाने में कोई रुकावट नहीं हो सकती थी। पर, इसके द्वारा वह अपनी जाति को ऊपर नहीं उठा सकते थे। उनका तो आदर्श था,—“स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्” (वही पैदा हुआ, जिसके पैदा होने से जाति ऊपर उठे।) यदि युग सहायक न होता, तो अम्बेडकर को गुमनाम रहकर अपना सारा जीवन बिता देना पड़ता। उनमें प्रतिभा थी, लेकिन प्रतिभा क्या करती, यदि उसको व्यवहार का मौका न मिलता। युग उन्हें उच्च शिक्षा प्राप्त करने में सहायक हुआ। वह चाहते, तो उच्च वर्ग में व्यक्तिगत तौर से सम्मिलित होने में उन्हें अधिक रुकावट न होती। पर, वह अपनी सारी जाति को अपने साथ ले जाना चाहते थे। अम्बेडकर जैसी महान् प्रतिभाओं को देखकर उनकी पददलित जाति में भी आत्म-चेतना पैदा हुई। देश में हजारों उच्च शिक्षित पुरुष अछूतों के भीतर पैदा हुये, उन्होंने अपने भाइयों को समझाया कि भाग्य और भगवान् के कारण हम मानव

नवदीक्षित बौद्ध

११९

अधिकारों से वंचित नहीं हैं, बल्कि हमें वंचित रखनेवालों यहीं के लोग हैं, यही बड़ी जातिवाले—ब्राह्मण, क्षत्रिय, लाला लोग। अम्बेडकर ने बीस वर्ष की अपनी सेवाओं द्वारा अपने लोगों के हृदय में ऊँचा स्थान प्राप्त किया, जिसके कारण वह उनके पीछे-पीछे बौद्ध-धर्म में सम्मिलित होने के लिये तैयार हुये। पूछा जा सकता है—क्या एक व्यक्ति ऐसे परिवर्तन का कारण था? परिवर्तन के कारण और भी थे, इसमें शक नहीं, लेकिन, एक योग्य नेतृत्व की आवश्यकता थी, जिसका काम अम्बेडकर ने पूरा किया। पच्चीसवीं शताब्दीवाले वर्षमें, जैसा कि मैंने ऊपर कहा, आधे करोड़ के करीब आदमी बौद्ध-धर्म में बड़े उत्साह से दीक्षित हुये।

पच्चीसवीं शताब्दी मनाने में सरकार ने जिस उत्साह का परिचय दिया, उससे आशा यही रखनी चाहिये, कि वह इन नवबौद्धों के उपस्थित होने से खुश होगी। पर, सरकार का रुख अब उलटा देखते हैं। वह उन प्रतिगामी पुरुषों की कामना पूरा करने जा रही है, जो कहते थे बुद्ध-शताब्दी पर इतना रुपया क्यों खर्च किया जाता है। हमारे देश ने स्वतंत्रता क्यों खोई? गांधीजी ने एक बार कहा था—“अपने करोड़ों भाइयों को अछूत बना रखने के कारण।” उनके इस वाक्य में सत्यता का बहुत बड़ा अंश है। छूत-अछूत में बाँट कर राष्ट्र की शक्ति को ब्राह्मणशाही ने क्षीण कर दिया। यह विभाजन छूत-अछूत तक ही नहीं रहा, बल्कि छूत माने जाने वालों में भी बड़ी जाति और छोटी जाति का भेद कायम किया गया। बड़ी जाति सारी सम्पत्ति और सुभीतों की अधिकारिणी बन गई, छोटी जाति—छूत-अछूत दोनों—अधिकार-वंचित हो गई। अधिकार-वंचित देश को विदेशियों के आक्रमण से बचाने लायक भी नहीं रह गये। ऊपर से नीचे और दाहिने से बाँये चारों ओर इस तरह फूट में पड़ी हमारी जाति वीरता, निर्भीकता आदि गुणों के रहते भी परतन्त्र बनने से नहीं बच पाई। कोई देश सुसंस्कृत और मुक्त केवल मुठ्ठीभर आदमियों के शिक्षित और साफ-सुथरे रहने से नहीं बन सकता। कोट-पतलून और कार वाले कुछ थोड़े से काले साहब विदेशी यात्री के ऊपर हमारे देश का प्रभाव नहीं डलवा सकते, जब कि हमारे शहरों और गाँवों में नंगे-भूखे करोड़ों आद-

मियों को वह अपनी आँखों-देखते हैं। जब तक हमारे यहाँ से अशिक्षा, भुखमरी और हृद दर्जे की गरीबी दूर नहीं होती, तब तक हमारे देश का न सम्मान बाहर बढ़ सकता है और न वह वस्तुतः इतनी शक्ति संचय कर सकता है, कि उसकी तरफ कोई लालच भरी दृष्टि से देख सके। हमारे राष्ट्र-कर्णधार इस बात को भली-भाँति समझते हैं। इसीलिये उन्होंने अछूत-अनुसूचित-जातियों को विशेष सुभीते दिये हैं। उनके लड़कों को स्कूलों-कालेजों में फीस नहीं देनी पड़ती, भारी संख्या में उन्हें छात्रवृत्ति दी जाती है। उनके लिये नौकरियों में स्थान रक्षित किये गये हैं। योग्यता के मान को भी कम कर दिया गया है। बड़ी जाति वाले साधारण जन नहीं, कांग्रेसी भी इस भेद-भाव को बुरा समझते हैं। पर, हमारे दूरदर्शी नेता इसे आवश्यक समझते हैं—सबसे नीचे पड़े हुये लोगों को समान पंक्ति में लाकर बैठाये बिना हमारा उद्धार नहीं हो सकता।

आधे करोड़ के करीब नव-दीक्षित बौद्ध अछूत-अनुसूचित जाति में से हैं। उन्हें शिक्षा और नौकरी के सुभीते अब तक प्राप्त थे। बाबा साहब के जीवन में ही बड़ी जाति वालों ने कहना शुरू किया था, कि बौद्ध हो जाने के कारण इन्हें अनुसूचित जाति का नहीं कहा जा सकता, इसलिये इनको ये सुभीते नहीं मिलने चाहिये। अम्बेडकर ने कहा था—“जिस तरह लड़ कर मैंने ये सुभीते अपनी जाति के लिये प्राप्त किये, उसी तरह मैं उनसे वंचित करने पर लड़ूँगा और अपने लोगों को वंचित नहीं होने दूँगा।” आज वह शक्तिशाली आवाज हमेशा के लिये चुप हो गई है। आज सरकार नव-दीक्षित बौद्धों को उन सुभीतों से वंचित कर रही है। कहती है—“ईसाई और मुसलमान को यह सुभीता नहीं दिया जाता, यह तो केवल हिन्दुओं के अत्यन्त दलित वर्ग के लिए रखा गया है।” पर, क्या बौद्ध होने ही मात्र से ये नव-दीक्षित बौद्ध सारी आर्थिक-सामाजिक विरोधी परिस्थितियों से मुक्त हो गये? हजारों वर्ष का अभाव उनकी दूर हो गया? वह अपने बल पर बढ़ कर जल्दी ही दूसरों की पंक्ति में आ जायेंगे? नव-दीक्षित बौद्धों का विदेशों से सहायता की न संभावना है, और न अपने देश में ही उनके ऐसे धर्मबन्धु

हैं, जो पर्याप्त सहायता पहुँचा सकें। केवल अपने बल पर बहुत समय की आवश्यकता होगी। अब भी वह सरकार की उन सहायताओं के वैसे ही पात्र हैं, क्योंकि उसके बिना उनके आगे बढ़ने में भारी रुकावट होगी। पचासों हजार की तादाद में उनके लड़के जो स्कूलों और कालेजों में पढ़ रहे हैं, आर्थिक सहायता बन्द होने से वह शिक्षा से वंचित हो जायेंगे। बौद्ध होने से आत्म-सम्मान की वृद्धि उनमें जरूर हुई है। लेकिन, उसके कारण आर्थिक साधनों की वृद्धि नहीं हुई है। सरकार का कर्तव्य अब भी इन लोगों के प्रति वैसा ही है। उनके आगे बढ़ने में सहायता करने की बड़ी आवश्यकता है। यदि वह सहायता बन्द की जाती है, तो इसके सिवा इसका कोई अर्थ नहीं हो सकता, कि बौद्ध बनने का उन्हें दण्ड दिया जा रहा है। बौद्ध बनने में पच्चीसवीं शताब्दी के सरकार के काम से भी उन्हें प्रेरणा मिली, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। सरकार क्या अपने किये पर पानी फेरना चाहती है?

इसका एक परिणाम यह हो सकता है, कि शिक्षा और नौकरी में सुभीता पाने के एक इच्छुक नव-दीक्षित बौद्ध अपने को बौद्ध न कहें। हो सकता है, कुछ समय के लिये कितनों ही को ऐसा करना पड़े, पर इसकी जिम्मेवारी सरकार के ऊपर होगी। एक बात और भी देखने की है। सरकार ने अनुसूचित जातियों में केवल हिन्दुओं को ही

नहीं, बल्कि सिक्खों को भी सम्मिलित किया है। नव-दीक्षित बौद्धों की भी वही स्थिति है, जो कि सिक्ख हरिजनों की। सिक्ख-धर्म को हिन्दू-धर्म से जितना पृथक् गिना जाता है। उसी मात्रा में बौद्ध-धर्म को हिन्दू-धर्म से अलग माना जा सकता है। हिन्दू-बौद्ध-सिक्ख सभी एक ही संस्कृति के वारिस हैं। इसी वरासत के कारण उनमें से कुछ को अधिकार-वंचित रहना पड़ा। सरकार अगर न्याय से काम लेना चाहती है, भेद-भाव नहीं करना चाहती, बौद्धों को दण्ड देने की इच्छा नहीं रखती है, तो उसका कर्तव्य है, कि नव-दीक्षित बौद्धों को उसी तरह सारे सुभीते दे, जो कि सिक्खों के उस वर्ग को प्राप्य है। संविधान की दोहाई देकर इस अन्याय को जारी करना कभी उचित नहीं समझा जा सकता। अब्बल तो सांस्कृतिक तौर से सिक्खों की तरह बौद्धों को हिन्दुओं से कोई विभिन्नता नहीं है। इसलिए संविधान में उन्हें अनुसूचित जातियों के सुभीते को देने में कोई रुकावट नहीं हो सकती। और यदि रुकावट है, तो संविधान न्याय करने के लिए बना है, अन्याय करने के लिए नहीं। उसमें परिवर्तन होना चाहिए।

नव-दीक्षित बौद्धों को भी बुद्ध का वचन याद रखना चाहिए—“अत्ता-हि अत्तनो नाथो।” (अपनी मदद आप करो)।

नवदीक्षित बौद्धों से

श्री धर्मरत्न यमि, (भू०पू० उपमंत्री), नेपाल

आधुनिक बोधिसत्त्व भारतीय विधि-विधाता स्वर्गीय डा० अम्बेडकर के दर्शन का अवसर दो बार मिला था। एक बार नेपाल में और दूसरी बार नयी दिल्ली में। नयी दिल्ली की भेंट में पूरे एक घण्टा तक मैंने उनसे बातें की। अम्बेडकर महोदय के हृदय में भारतीय राष्ट्रीयता और संस्कृति की चिन्ता मैंने बड़े पैमाने पर देखी। भेद-भाव मूलक सामन्त पोषक ब्राह्मणी हिन्दू व्यवस्था के अन्याय, अत्याचार और दबाव को देखकर तो बाबा साहब बिल्कुल ऊब गए थे। उनको जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए

उतावले हो गए थे, साथ ही जब वे भारत के साहित्य, सभ्यता, मानवोचित स्वतन्त्र बुद्धिवादिता को पाते थे, तब हर्ष से गद्गद् हो जाते थे।

किन्तु जब उस साहित्य-निधि में ब्राह्मणशाही के पापपूर्ण दबाव और अन्याय को भारत के बहुजन वैश्य और शूद्रों पर लादे हुए पाते थे तो बाबा साहब क्रोधित होते थे। फिर अतीत के भारतीय इतिहास के पन्ने और सुदूर उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पूर्व के बौद्ध देश एवं यूरोपीय, अमेरिकी देशों में भी बौद्ध-धर्म का गौरवपूर्ण प्रभाव देखते थे, तो संतोष से साँस लेते थे।

सिद्धार्थ-जननी महामाया

१२१

एक घंटा के बर्तालाप में मुझे उन्होंने कहा—“मैं और मेरे १६ कोटि अछूत भाई मुसलमान या ईसाई हो जाते, तो भारतीय राष्ट्रीयता और संस्कृति पर कितनी चोट पहुँचती और दूसरा पाकिस्तान या कृशियन लैंड बन जाता, जिसकी कल्पना तक कर लेने से भी रोमाँच हो जाता है। इसी धारणा ने मुझे कृशियन एवं मुसलमान बनने से बचाए रहा, बौद्ध बनने की प्रेरणा मिली। मैं और मेरे अनुयायी बौद्ध बन गए और बन रहे हैं। बौद्ध-धर्म विशुद्ध भारतीय धर्म है। भारतीय राष्ट्रीयता और संस्कृति बौद्ध-धर्म से ही मजबूत बनती हैं। विश्व में फैले हुए ७० कोटि बौद्धों से हम एकताबद्ध होकर जितने भी दुश्मनों से बच सकेंगे। हिन्दू धर्म ऐसा विचित्र धर्म है जो विश्व के सभी जाति से घृणा करता है। अपने भाई से भी लुआ-दूत, जाति-भेद करते अत्याचार को अधुण रखे हुए हैं। इस अमानवीय भेदभाव मूलक सामंत पोपक ब्राह्मणीय धर्म को जब तक भारत वर्ष से जड़ से उखाड़

नहीं फेंकेंगे तब तक भारतीय राष्ट्रीयता की नींव मजबूत नहीं होगी। इसलिए मैं बौद्ध हो गया हूँ। मैं भारतवासी सभी वर्ण, वर्ग से निवेदन करता हूँ कि वे जल्द से जल्द ज्यादा से ज्यादा बौद्ध धर्म में दीक्षित हो जाएँ।

बोधिसत्व बाबा साहब की उक्त बात क्या छिपी है? उसको स्मरण कर दीक्षित और दीक्षित होनेवाले भारतीय भाइयों से मेरा भी निवेदन है कि वे अपना कदम न रोकें, बाधा का शांति और हिंमत से मुकाबला करें। गांधी और नेहरू की भारत सरकार अन्याय और दबाव को कभी बरदास्त नहीं करेगी। ब्राह्मणशाही का अन्त निकट है। विचलित होने का कोई कारण नहीं। भारतीय राष्ट्रीयता की मजबूती को और आगे बढ़ाने में आप सहायक होंगे, बाधक नहीं।

हमारे नेपाल में भी ब्राह्मणशाही का तांडव नृत्य कम नहीं है। हम भी शांति से ही काम कर रहे हैं।

सिद्धार्थ-जननी महामाया

सुश्री विद्या वी० ए०



“अहो! बहुजन हिताय महामाया ने गौतम को जन्म दिया, उन्होंने व्याधि, मृत्यु के त्रास से प्राणियों को मुक्त किया। आज दुःख निरोध-गामी आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग में विचरण करती हुई मैं, बुद्धवीर! तुम्हारी वन्दना करती हूँ” प्रथम भिक्षुणी-संघ की नेत्री महाप्रजापती गौतमी (जिन्होंने सिद्धार्थ का पालन किया था) के ये उद्गार सिद्धार्थ-जननी महामाया के गौरव के अनुकूल हैं। महादेवी महामाया ने सिद्धार्थ जैसा पुत्ररत्न देकर संसृति का महान् मंगल किया। सिद्धार्थ ही बोधगया में ज्ञान प्राप्त कर गौतम बुद्ध के रूप में विश्व-कल्याण का अमर संदेश दिये, जिनकी कहुणा से आज भी धरा का कण-कण प्रभावित है।

हिमालय की तराई में कल-कल नादिनी रोहिणी नदी के एक ओर कोलिय गणतंत्र था और दूसरी ओर शाक्य

गणतंत्र। कोलिय गणतंत्र के यशस्वी नरेश महासुप्रबुद्ध की राजधानी देवदह नगर थी। देवदह के राजभवन में ही महासुप्रबुद्ध की इस गुणवती कन्या महामाया का जन्म हुआ था। इसके जन्म के समय ऋषियों ने भविष्य-वाणी की थी कि इस कन्या की कुक्षि से जन्म लेनेवाला बालक चक्रवर्ती होगा। शैशव को पार करते-करते माता-पिता द्वारा दिलाई गई शिक्षाओं और सद्गुणों से इनका जीवन विभूषित होने लगा। इनकी छोटी बहिन महा-प्रजापती अपनी जीजी के प्रति समुचित आदर-भावना एवं प्रेम रखती थीं, इन्हें भी अपनी अनुजा पर प्राणों से अधिक स्नेह था।

इनके रूप एवं गुणों का सौरभ धीरे-धीरे समीपस्थ गणतंत्रों में सुवासित होने लगा। शाक्य जनपद के प्रसिद्ध नरेश शुद्धोदन ने इन दोनों राजनन्दिनियों को अपनी हृदये-

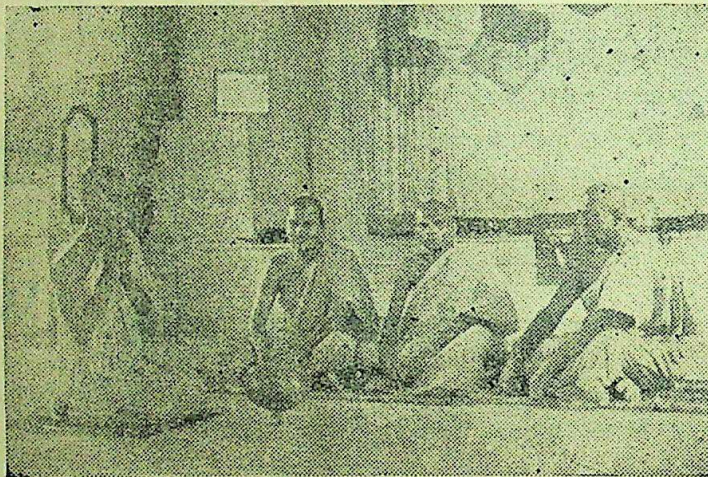
श्वरी बनाने की इच्छा प्रकट की। बड़ी धूम-धाम से दोनों नारीरत्नों का परिणय राजा शुद्धोदन के साथ हुआ। महामाया ने महादेवी अर्थात् प्रधान राजमहिषी का स्थान प्राप्त किया। इस राज्य-लक्ष्मी के पदार्पण से प्रजा को मातृवत् स्नेह की प्राप्ति हुई।

कपिलवस्तु-गणतंत्र में आपादी पूर्णिमा के एक सप्ताह पूर्व से एक महान आन्दोलन मनाया जाता था। शाक्य जनपद की महादेवी महामाया सुन्दर वस्त्राभूषणों से सज्जित होकर इस सप्त दिवसीय उत्सव में सम्मिलित होती थीं जिससे जनमन उल्लासित हो उठता था, फिर भी वे रागरंग से उपेक्षा ही रखती थीं। पूर्णिमा के दिन श्रमण, ब्राह्मणों एवं भिक्षुओं को दान देकर उन्हें बड़ी ही प्रसन्नता का अनुभव होता था।

एक बार उसी पूर्णिमा की रजत रात्रि में उन्हें बड़ा ही दिव्य स्वप्न दिखाई दिया। देवाङ्गनाओं ने उन्हें सुगन्धित जल से स्नान करवाया और सुन्दर वस्त्राभूषणों से सज्जित कर मणि जटित हेम-पर्यङ्क पर पूर्व की ओर सिर कर के लिटा दिया। तत्पश्चात् एक श्वेत हाथी अपनी सूँढ़ में श्वेत कमल लिये हुए आया। वह तीन बार उनकी प्रदक्षिणा कर, उनकी दाहिनी कुक्षि में जा अंतर्ध्यान हो गया। महादेवी ने प्रातः यह स्वप्न राजा को सुनाया। राजा ने ज्योतिषियों से स्वप्न का फल पूछा। ज्योतिषियों एवं विद्वानों ने बताया कि महादेवी एक ऐसे कुमार को जन्म देंगी जो यदि विरक्त होगा तो बुद्ध होकर महान कल्याणकारी बनेगा और यदि गृहस्थाश्रम में रहेगा तो चक्रवर्ती नरेश होगा। इसे सुन कर राजा का स्नेह और प्रजा की आदर-भावना महारानी के प्रति और भी बढ़

गई। इस प्रकार उत्तरापाद नक्षत्र में महादेवी महामाया के गर्भ में बोधिसत्त्व ने प्रवेश किया।

दस मास पूर्ण होते-होते महादेवी के मन में दौहद अर्थात् सगर्भा की इच्छा जागृत हुई। उन्होंने राजा शुद्धोदन से कहा—“देव ! मैं अपने पिता के गृह देवदह जाना चाहती हूँ।” राजा ने सहर्ष उनकी इच्छा-पूर्ति की स्वीकृति दे दी और कपिलवस्तु से देवदह के मार्ग को कदली वृक्ष, ध्वज, तोरण, वंदनवारों आदि से अलंकृत करवा महादेवी को सोने की शिविका पर विदा किया। साथ ही एक सहस्र अधिकारियों, सखियों तथा सेविकाओं को भी भेजा।



दोनों नगरों के मध्य लुम्बिनिवन नामक एक मनोहारी शालवन था। वहाँ पहुँचते ही उसकी सुरम्यशोभा ने महारानी को अपनी ओर आकृष्ट किया। प्रकृति-प्रेमिका महादेवी वहाँ कुछ समय व्यतीत करना चाहें। प्रकृति-सुषमा निरखती प्रफुल्लिता महादेवी ने एक सुन्दर शालतरु की डाल को पकड़ना चाहा। डाल स्वयं झुक गई। उन्होंने उसे अपने कोमल कर से पकड़ लिया, उसी समय उन्हें प्रसव-वेदना हुई। सखियों ने वस्त्रों का घेरा बना दिया। वहीं उनकी कुक्षि से सिद्धार्थ का जन्म हुआ। पालि-ग्रन्थों में वैशाख-पूर्णिमा की उस पावन मंगलमय वेला का बड़ा भव्य एवं विस्तृत वर्णन मिलता है। अवतरित होते ही देवी ने माता एवं पुत्र पर पुष्प-वृष्टि की थी, मधुर वाद्य-ध्वनियों से दिशायें गुञ्जित हो गई थीं। महादेवी के सत्कारार्थ आकाश से दो जल-धाराओं ने गिर कर उन्हें शीतलता प्रदान किया था। बालक रूप सिद्धार्थ ने सद्यः पुष्पित सप्त कमल पर सात पग चल कर

बौद्धधर्म की कुछ विशेषताएँ

१२३

घोषणा की थी—“अगो हमस्सिलोकस्स ।...अयमन्तिमा-
जाति । नत्थिदानि पुनब्भवो ।” अर्थात् मैं लोक में अग्र
हूँ.....। यह अंतिम जन्म है । फिर जन्म नहीं लेना है ।

महादेवी महामाया कृतकृत्य हो गयीं । उन्हें विश्वास
हो गया कि सचमुच उनका पुत्र बुद्ध होगा । फिर वे
देवदह नहीं गयीं । महाराज शुद्धोदन के पास संदेश भेजा
गया और वे आन्दोलस्व के बीच कपिलवस्तु लौट गयीं ।
बुद्ध-माताएँ अधिक दिन तक इस संसार में नहीं रहतीं ।
सिद्धार्थ-जन्म के सात दिन पश्चात् अपने प्राण-प्रिय शिशु
को अपनी स्नेहमयी भगिनी महाप्रजापती गौतमी के हाथों
में सौंप कर वे अमरत्व को प्राप्त हो गयीं ।

उनके महान् शिशु ने बुद्धत्वप्राप्ति के पश्चात् तथागत

के रूप में भी माता को विस्मृत नहीं किया प्रत्युत क्वार
मास की पूर्णमासी अथवा आश्विन पूर्णिमा के दिन
तावत्तिस्स भवन नामक देवलोक में जाकर अपनी जननी
महामाया को उपदेशामृत पान कराया । तीन मास तक
वहाँ धर्मोपदेश देकर वे संकाश्य नगर में अवतीर्ण हुए थे ।
तब से यह पुण्यतिथि प्रवारणोत्सव के नाम से प्रसिद्ध है,
जो प्रतिवर्ष संसारको मानव-भक्ति का अमर संदेश देती है ।

आज भी चार बौद्ध तीर्थों में से एक लुम्बिनी में
सम्राट अशोक द्वारा स्थापित महादेवी महामाया की एक
अति प्राचीन सुन्दर मूर्ति है जिसकी अर्चना कर विश्व के
अनेक यात्री करुणा-मैत्री में विभोर हो अपने को धन्य
मानते हैं ।

(आकाशवाणी केन्द्र इन्दौर के सौजन्य से)

बौद्धधर्म की कुछ विशेषताएँ

भिक्षु अश्वघोष

आज से २५४६ वर्ष पूर्व वाराणसी के पास वर्तमान्
सारनाथ में तथागत ने धर्मचक्र-प्रवर्तन किया था । पीछे
उनका यह प्रगतिशील धर्मचक्र भारत से बाहर लंका,
बर्मा, स्याम, काम्बोडिया, लाओस, जापान, चीन, तिब्बत,
नेपाल आदि देशों तक पहुँच गया । वहाँ से भी आगे
उसकी प्रगति होती गई । एक समय भारत में तो एक
प्रकार से उसका लोप ही हो गया था । इसमें अत्युक्ति नहीं
है । अब फिर इसका नव-जागरण हो रहा है । ऐसा क्यों ?
बौद्धधर्म का मुख्य सिद्धान्त क्या था ? और इसकी मुख्य
विशेषता क्या है ? हम यहाँ इन प्रश्नों पर विचार करेंगे ।

बौद्धधर्म का सिद्धान्त मानव समाज में व्याप्त कलंक
को बाहर निकालना है । मानव समाज का भयंकर कलंक
है अन्धविश्वास ! या यों कहिए कि कट्टरपन । बुद्ध-
कालीन भारतीय समाज की ओर दृष्टिपात करने पर हमें
ज्ञात होता है कि उस समय समाज में अन्धविश्वास और
कट्टरपन का साम्राज्य था । ईश्वर के नामपर प्राणि-हिंसा,
बलि-पूजा आदि प्रथा आजतक चली आ रही हैं । छुआ-
छूत आज भी शेष है, जो कि भारतीय समाज में महान्

कलंक बना हुआ है और जिससे भारतमाता की सन्तान
में एकता नहीं हो रही है ।

शान्तिनायक गौतम बुद्ध नये युग के संस्थापक थे ।
बुद्धकाल में ही क्या, उसके बाद भी समाज में एक वर्ग
द्वारा दूसरे वर्ग को दबाने की पाशविक कुप्रवृत्ति थी ।
आज भी है । आज तो एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को दबाने
में कदम बढ़ा रहा है । इस प्रकार के दानवीय विचार को
नष्ट करने के लिए तथागत ने जबरदस्त आन्दोलन करके
समाज में उथल-पुथल मचा दिया ।

(१) बुद्ध की प्रथम घोषणा थी कि मानव मानव
के बीच कोई भेदभाव नहीं है । सभी समान हैं । जन्म
से कोई नीच नहीं है न ऊँच है । कर्म से ही नीच और ऊँच
होता है । कहा भी है:—

न जच्चा वसलो होति न जच्चा होति ब्राह्मणो ।

कम्मुना वसलो होति कम्मुना होति ब्राह्मणो ॥

(२) दूसरी घोषणा थी कि जीवन को मुक्ति दिलाने
वाला कोई और नहीं है, किसी के भरोसे में रहना या
विश्वास करना व्यर्थ है । अपना स्वामी अपि है । कहा

है—“अत्ताहि अत्तनो नाथो को हि नाथो परोसिया।” अगर कोई व्यक्ति पाप-कर्म से अशुद्ध हो गया हो तो स्वयं सुधार कर सकता है। कोई दूसरा शुद्धि नहीं कर सकता है। कहा भी है—सुद्धि असुद्धि पञ्चत्तं नाञ्जमञ्जं विसोधये।

(३) तीसरी घोषणा थी कि भाग्य अपने हाथ में है, जो कुछ होता है वह कर्म का फल होता है, अर्थात् जो दुःखी या नीच है, वह कर्म का फल समझ कर न बैठे कि क्या करूँ भाग्य में ऐसा लिखा है। स्वयं प्रयत्न करना चाहिए। प्रयत्न करने पर जो भाग्य में नहीं है, वह भी बन जायेगा, अन्यथा भाग्य को दोष देने से सदा दुःखी ही रहेंगे।

(४) चौथी घोषणा थी कि किसी भी ग्रन्थ को स्वतः प्रमाण नहीं मानना चाहिए अन्यथा बुद्धि और अनुभव की प्रामाणिकता जाती रहेगी। उतना ही नहीं, किसी के कहने पर बिना सोचे और स्वतः विचार किये नहीं मान लेना चाहिए, चाहे वह दादा-परदादा से ही चली आई बात क्यों न हो।

(५) मार्गप्रदर्शक गौतम बुद्ध।

गौतम बुद्ध किसी के दुःख के अन्त के लिए जिम्मे-दारी नहीं लेते। उन्होंने कहा है—“तुम्हेहि किञ्चं आतर्पणं अक्खातारो तथागता।”

अर्थात् काम तो तुम्हीं लोगों को करना है। तथागत तो मार्ग प्रदर्शक मात्र हैं। उन्होंने कहा था कि बुरे मार्ग पर चलने से बुरा फल मिलेगा और अच्छे मार्ग पर चलने पर अच्छा फल मिलेगा।

(६) बौद्ध धर्म में अन्धविश्वास के लिए बिल्कुल स्थान नहीं है न ईश्वर के लिए स्थान है, न आत्मा के लिए है। गौतम बुद्ध ने ज्ञानमार्ग पर जोर दिया, न कि भक्ति मार्ग पर। उन्हें यहाँ तक कहना पड़ा कि नाव पार जाने के लिए है कंधे पर ढोकर ले जाने के लिए नहीं, अतः धर्म आचरण करने के लिए है न कि ग्रहण करने मात्र के लिए। कहा भी है—कुल्लुपमं वो भिक्खवे धम्मं देसेमि, अत्थरणत्थाय नो गहणत्थाय। आज धर्म को एक प्रथा के रूप में या परम्परा के रूप में मानने के कारण नाना प्रकार के कलह हो रहे हैं, इसलिए आज हमें उस प्रकार के धर्म नहीं चाहिए, बौद्ध विचार चाहिए। आज के युग के लिए बौद्ध विचार की बड़ी आवश्यकता है, जिससे समाज में शान्ति स्थापित हो सके।

अब सोचें, बौद्धधर्म की आयु २५०० वर्ष से भी अधिक हो गयी है, परन्तु उपरोक्त बातें आज भी नयी हैं और कालोचित हैं। यही कारण है कि भारत में पुनः बौद्धधर्म का नव-जागरण एवं प्रसार हो रहा है तथा विश्व में सर्वत्र इसके प्रति लोगों का झुकाव दिखाई दे रहा है।

महाभिनिष्क्रमण

श्री रामलाल भौतमांगे

देव, आज उदास हैं ?

हाँ, गोपे ! सच्चा सुख एवं आनन्द कहाँ है ? मुक्ति का मार्ग क्या हो सकता है ?

यही चिन्तन का विषय है।

तुम भी तो आज-सी न रहोगी प्रिये ?

कैसी बातें करते हैं नाथ !

आप क्लान्त हैं। विश्राम करें।

×

×

×

राजद्वार पर मंगल-वाद्य-ध्वनि मुखरित हो उठी है एवं

थिरक उठा है, थिरक उठा है संपूर्ण वातावरण हर्षातिरेक से।

सिद्धार्थ से दासी ने आकर कहा—

देव को पुत्र-रत्न लाभ हुआ है।

क्या पुत्र ! राहुल !! बंधन !!!

सिद्धार्थ आवेश में चिल्ला उठे—नहीं, नहीं, मुझे मुक्त होना ही पड़ेगा इस बंधन से; अपने लिए, गोपा के लिए; मानव कल्याण के लिए, प्राणि-मात्र के लिए।

+

+

+

मध्यरात्रि । स्तब्ध वातावरण ।

प्रसूति-गृह में सिद्धार्थ ने देखा—

माँ के पार्श्व में निद्रासग्न शिशु के मुख पर मुस्कान खेल रही है ।

पलायन का उपहास कर रहा है—सिद्धार्थ ने सोचा ।
पर मुझे जाना ही होगा, मैं दृढ़ संकल्प हूँ ।

और सिद्धार्थ घूम पड़े ।

पर,

पुत्र के एक चुम्बन के लिए पिता का प्यार मचल

पड़ा; माया गोपा के लिए रो पड़ी । पिता के दुलार, तथा प्रजापती के प्रेम के लिए बिलख उठी भावना ।

पग बड़े । बन्धन हँस पड़ा सिद्धार्थ की पराजय पर और तभी, कर्त्तव्य ने चाबुक मारा । सिद्धार्थ की चेतना लौटी । कर्त्तव्य ने कहा—भागो, भागो, यही अवसर है ।

और,

सिद्धार्थ राजपथ पर चले जा रहे थे अंधकार को चीरते हुए—

बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय ।

महासमय सुत

श्री मोहनकुमार नाथसिंह तँवर

यह महान् सूत्र उस समय देशित हुआ था, जब कि भगवान् बुद्ध शाक्यदेश के कपिलवस्तु में विहार करते थे । रोहिणी नदी के पानी को लेकर यह सूत्र कहा गया था जिसके कि पानी की ज्येष्ठ मास के बाद से सूखी हुई फसल के लिए अत्यधिक आवश्यकता थी । रोहिणी की दोनों ओर के राजघरानों, कपिलवस्तु और कोलिय के अधिवासी शत्रुता पर डटे हुए थे । धीरे-धीरे लड़ाई पर उतारू हो गए और परिस्थिति यहाँ तक आ पहुँची कि दोनों नरेशों ने अपनी-अपनी सेनाएँ तैयार कर लीं और लड़ाई पर चल निकले । उस दिन उपावेला में भगवान् बुद्ध ने अपनी निस्सीम करुणा में जब संसार को दिव्य-चक्षु से देखा तो दोनों नरेशों को सैनिक सज्जा तत्पर पाया । भगवान् अपनी अलौकिक शक्तियों का प्रदर्शन करते हुए दोनों विरोधी नरेशों के बीच छः रंग की बुद्ध रश्मियाँ छिटकाते आकाश में प्रकट हुए ।

कपिलवस्तु की सेना के राजपुत्रों और सिपाहियों ने जब भगवान् को देखा, तो उन्होंने बुद्ध-सम्मान में अपने शस्त्रास्त्र फेंक दिए और यह कहते हुए उनकी पूजा की—
“यदि ऐसा ही चाहते हैं तो हमें हमारे दुश्मन मार डालें ।”
उसी प्रकार सब के लिए राजकुमारों और सैनिकों ने बुद्ध को देखा तो उन्होंने भी अपने हथियार फेंक दिए और भगवान् की अभ्यर्थना करने लगे ।

भगवान् ने तब उन दोनों राज्यों के एकत्र दल को, उनमें शान्ति लाने के निमित्त फन्दन तथा दहभ जातकों का उपदेश दिया और तदुपरान्त शान्ति के महाफलों पर जोर देते हुए ‘रुक्खधम्म एवं वट्टक’ जातकों को कहा । दोनों राज्यों के राजपुत्रों और सामन्तों ने इस प्रकार शान्ति लाभ करते हुए अपने-अपने राज्य से ढाई-ढाई सौ नवयुवक राजकुमार भगवान् के शिष्य रूप में अर्पण किए । ये पाँच सौ राजकुमार भिक्षु बने और उन्होंने महावन में भगवान् का अनुगमन किया ।

भगवान् तब इन भिक्षुओं को हिमालय के ‘कुणाल’ झील पर ले गए । गृहस्थ जीवन के प्रति जो कि उन्होंने त्याग दिया था, अब कोई कामना शेष न रहे, अतः वहाँ भगवान् ने उन्हें ‘कुणाल जातक’ कहा । और तब वे ‘सोता-पत्ति’ फल में प्रतिष्ठित हुए । उनके साथ महावन को वापस आते हुए भगवान् ने उन्हें ध्यानोत्साहित किया और थोड़े ही समयोपरान्त वे ‘अर्हत्व’ को प्राप्त हो गए । ज्येष्ठ का यह पूर्ण चन्द्र था और शुभ रात्रि में चन्द्रमा सम्पूर्णतः आभासित था । भगवान् बुद्ध और उनकी श्रेष्ठ मण्डली के द्वारा अरूप लोक तथा ध्यानावस्थितों के अतिरिक्त ब्रह्मलोक के सम्पूर्ण देवता एवं सर्व ब्रह्मा आकर्षित हो उठे और देवलोक के सम्पूर्ण देवता भगवान् बुद्ध और उनके पाँच सौ शिष्यों के प्रति सम्मान प्रकट करने के निमित्त महाधन में आए ।

शुद्धावास के चार ब्रह्मा जो कि ध्यानावस्था के कारण देव-दल के साथ नहीं जा सके, अपने ध्यान से जागे, उन्होंने देखा सारा ब्रह्मलोक उन्हें छोड़ भागा है। संसार के चारों ओर देखने पर उन्होंने देखा कि ब्रह्मागण 'महावन' में एकत्र हुए हैं। इस प्रकार उन्होंने भी उनका अनुसरण किया और प्रत्येक ने एक एक गाथा कहते हुए चारों दिशाओं में से आते हुए बुद्ध-अर्चना की।

ब्रह्मा और देवताओं के विशाल दल को देखते हुए बुद्ध ने अपने पाँच सौ शिष्यों का ध्यान आकर्षित करना चाहा और उनकी शक्तियों तथा श्रेणियों का क्रमानुसार बखान करते हुए उन्हें (देवता और ब्रह्माओं को) सामूहिक देशना दी। यह समय सबसे महत्वपूर्ण था और ऐसी महान् घटना प्रत्येक बुद्ध के जीवनकाल में केवल एक बार घटती है।

महासमय दिवस

'महासमय सुत्त' का बौद्धधर्म और बौद्ध देशों में महत्वपूर्ण स्थान है। बर्मा आदि देशों में तो ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा का उत्सव, जिस दिन कि इस महान् सुत्त की भगवान् ने देशना दी थी, बड़े हर्षोल्लास सहित विशाल कार्यक्रम के साथ कई दिनों पहले ही मनाना प्रारम्भ कर दिया जाता है। पूर्णिमा से दो या तीन दिन पहले ही से बुद्ध-शासन के निर्देशानुसार सर्व आपदाओं और विपदाओं के निराकरण हेतु धार्मिक सुत्तों का पाठ प्रारम्भ कर दिया जाता है। जिनमें कि धम्मचक्र, मंगल, रत्न, मेत्त; आठानाटीय पुट्टवन्ह और अन्य सुत्तों का समावेश होता है।

रंगून आदि प्रमुख नगर नौ-दस विभागों में बाँट दिए जाते हैं। संघ के आदेशानुसार वहाँ संयोजक उत्सवादि की व्यवस्था करते हैं। ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा का दिन भगवान् द्वारा देशित "महासमय सुत्त" का पवित्र वार्षिक दिवस है, अतः वह बर्मा के समग्र ग्रामों और नगरों में इसी प्रकार के महोत्सवों के साथ इस सुत्त के पाठ सहित सारी संस्थाओं में मनाया जाता है।

महासमय दिवस की विशेषता

अरूप लोक के अरूपी ब्रह्मा और ध्यानमग्न देवताओं के अतिरिक्त बुद्धधर्म की परिधि के दस सहस्र लोक धातुओं के समस्त ब्रह्मा और देवता महावन में एकत्र हुए।

इन शक्तिशाली देवों की विशाल संख्या और उन्हें वन में अधिक स्थान प्राप्त हो सके, उनमें से १० से ६० भगवान् बुद्ध की प्रत्येक स्थान से जो कि एक डोरे की चौड़ाई के बराबर होता था, अर्चना करते थे।

भगवान् बुद्ध की उपस्थिति में नाग और गरुड, इन्द्र और असुर ये पुराने शत्रु एक दूसरे से शान्ति में थे और मित्रता तथा भद्रता के शब्दोच्चारण कर रहे थे।

शुद्धावास लोक के ४ महाब्रह्मा क्रमशः नील, पीत, लोहित और श्वेत ध्यानों में ओतप्रोत थे और दस सहस्र लोक धातुओं के देवताओं को अपने शरीरसे नीली, पीली, लाल और सफेद रश्मियाँ फेंकते थे, जिससे कि विशाल ज्योत्सना का एक दृश्य पैदा हो गया था।

भगवान् ने समय के अनुकूल स्वयं बुद्ध आकृति के दो रूप बनाए और एक के द्वारा दूसरे से प्रश्न पुछवाए, जिनसे कि उन प्रवचनों पर अधिक प्रकाश पड़े जो कि भगवान् ने उस समय देशित किए थे। जब प्रवचन हुआ तो उनके शरीर की छःरंगी रश्मियाँ ने उनकी जीवित प्रतिमूर्ति को ढँक लिया, जब कि मूर्ति की रंगीन रश्मियाँ ने उनके शरीर को ओत-प्रोत कर दिया। ये रंगीन रश्मियाँ ब्रह्माओं के सर्वोच्च स्वर्गों तक छा गईं और वहाँ से दस सहस्र लोक धातुओं के अन्तिम छोर तक प्रतिबिम्बित हुईं और उसने उन पर एक स्तूप वा स्वर्णवस्त्र से ढँके हुए। किसी निर्माण के समान चमक को फैला दिया। दस सहस्र लोकधातु उस समय के लिए भगवान् के द्वारा महान् भासमान होता और उनकी जीवित प्रतिमूर्ति देखने वालों में आश्चर्य और अभिशंसा पैदा कर रही थी कि उपलक्ष में हमारे अपने संसार से संबंधित हो गये थे।

उत्तम और निकृष्ट आचरण पर उपदेश के पश्चात् कोटि-कोटि ब्रह्मा और देवगण अर्हत्व में प्रतिष्ठित हुए असंख्य अन्य ब्रह्मा और देवतागण स्रोतापत्ति आदि फलों में प्रतिष्ठित हुए।

इस प्रकार प्रत्येक बुद्ध के जीवनकाल में एक बार घटित होने वाला महासमय दिवस उस अवसर को बतलाता है जब कि कपिलवस्तु के महावन में अपने ५०० अर्हत्तों के साथ रहते हुए भगवान् असंख्य ब्रह्मा और देवतागण से सुदर्शित सम्पूजित हुए थे और उन्होंने प्रमुख

धर्म-विजय

१२७

देवताओं के नाम तथा वंशादिका उच्चारण करते हुए उत्तम तथा निकृष्ट आचरण के छः तरीकों पर विभाजित छः प्रवचनों की देशना की थी। ये शक्तिशाली देवता उस अवसर को याद रखते हैं और जो महासमय सुत्त का पाठ करते हैं उनके लिए वे विशेष कृपा रखते हैं।

वे दस सुत्त जो कि उस समय एकत्रित देवगण को देशित किये गये थे सम्मापरिभाजनीय, पुराभेद, कलह-विवाद, चूलव्यूह, तुवटक तथा आटानाटीय हैं।

उस अवसर पर कितने ही ब्रह्मा और देवताओं ने अर्हत्व प्राप्त किया था और इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि दुःखयुक्त संसार से उन्होंने उस दिन मुक्ति प्राप्त की। उसे

वे बड़े आभार सहित याद रखेंगे। बड़ी कृतज्ञता सहित वे उस मानव लोक को भी याद रखेंगे, जिसमें कि छः सूत्रों को श्रवण करने के वे अधिकारी हुए—जिससे कि उन्हें अतुलनीय लाभ प्राप्त हुआ। बुद्ध, धर्म और संघ जैसी तीन महान् शरणों के रहते हुए भी कुशक्तियाँ और कुविचारों के अस्तित्व के कारण आज दुनिया खतरों और अशान्ति से आवृत है, परन्तु बुद्ध के पवित्र धर्म पर विश्वास, इस दुःखी संसार को पुनः शान्ति प्रदान करेगा। आशा है, इसे पूरा करने के लिए भिक्षु और गृहस्थ रात-दिन महासमय सुत्त का उसके सम्मापरिभाजनीय तथा अन्य पाँच महान् सूत्रों का पाठ करेंगे और इस प्रकार दुःखी जगत् शान्ति और आनन्द प्राप्त कर सकेगा।

कहानी

धर्म-विजय

श्रीमती यशोदा देवी कुशवाहा

हुम दड़ाम, हुम दड़ाम। रणभेरी ध्वनित हो उठी। मौर्य-राज अशोक, दिग्विजय को प्रस्थान कर रहे थे। मौर्य-राजनन्दिनी संघमित्रा ने गगनचुम्बी राज-प्रासाद के घातायन से राजपथ पर दृष्टि डाली। टिड्डीदल की तरह मौर्य सेनायें उमड़ रही थीं। राजकुमारी का कोमल हृदय विपाद से बोल उठा। उसने पास खड़ी सखी 'वासवा' से कहा—“सखी, पिता की बढ़ती हुई राज्य-लिप्सा से मेरा मन क्षुब्ध होता जा रहा है। पिता के मन को, अगणित निरपराध मानव के रक्त-बाण बन कर क्यों नहीं बाँधते? सम्राट् के कर्णपटों पर उन वीर सेनानियों की मूक आहें क्यों नहीं लोटतीं? जिनने सम्राट् के यश के लिये जीवन की आहुति दे दी। आह, पिता की शौर्य-गरिमा के लिये अनगिनत माताओं की गोद सूनी हो गयी। कितनी ही नारियों का सुहाग धुल गया, पिता के निर्मम कृत्य पर।”

“राजकुमारी, आप वीर-प्रसविनी की वीर कन्या हैं। आपकी यह उद्विग्नता अशोभनीय है। महाराज को राजनीति का पालन तो करना ही होगा। भारतजननी महाराज-ऐसे शौर्यवान् पुत्र को अंक में पा फूली नहीं

समाती है। ये गगनचुम्बी भवन, ये मनमोहक वाटिकायें, ये रमणीक उपत्यकायें इसके प्रतीक हैं।” वासवा ने मिथ्या दूरदर्शिता प्रदर्शित कर राजकुमारी को बहलाने का प्रयत्न किया।

“वासवे, असत्यवक्ता न बन। कोई माँ अपने एक पुत्र के यश के लिए अन्य की बलि नहीं चाहेगी। तो भारत जननी कैसे प्रसन्न हो पायेगी!” भृकुटी पर बल दे संघमित्रा ने उत्तर दिया।

प्रातः के पश्चात् सायं एवं सायं के पश्चात् प्रातः यही क्रम था। महाराज अशोक की रक्त-पिपासित कृपाण ने अगणित निरपराध मानव-रक्त से धरती की छाती रंजित कर दी। कितने ही आत्मीय-जनों ने आत्म-समर्पण कर जीवन-दान की याचना की, किन्तु सम्राट् ने उन्हें ठोकर से मार तिनके की तरह उड़ा दिया। कहा जाता है कि राज्य-लिप्सा के वशीभूत अशोक इतना निर्मम हो गया था कि उसने अपने निजानबे सौतेले भाइयों को कृपाण की घाट उतार दिया था।

रणस्थली के हृदय-विदारक समाचार सुनते-सुनते, राजकुमारी का मन अशान्त हो उठा। उसने शान्ति

प्राप्ति की इच्छा से पार्श्वती पर्वतिका पर विहार करने का निश्चय किया। शान्त पर्वतिका के मध्य स्थित कुंज में एक स्थविर को देख राजकुमारी का मन आह्लादित हो उठा। उसने साथ में आये आचार्य से पूछा “महामान्य, ये देव-तुल्य कौन हैं ? इन्हें अवलोकन कर आँखें शीतल हो गईं। मन में शान्ति का स्रोत उमड़ पड़ा।”

“राजकुमारी, ये भगवान् बुद्ध के अनुयायी हैं। ये ‘मिश्र’ नाम से सम्बोधित किये जाते हैं। ये आडम्बरहीन, कापाय वस्त्र से सुशोभित शान्ति-चिन्तन में लवलीन रहने के अभिलाषी हैं।”

“सत्य आचार्य ! आज का दिन मैं इन्हीं मिश्रों के मध्य रह, इनकी पवित्र वाणी को श्रवण कर बिताऊंगी।” संघमित्रा ने उल्लासितमन से अपनी इच्छा प्रकट की।

“किन्तु, राजनन्दिनी ! यह उचित नहीं। सम्राट् रण-प्रांगण को गये हैं। मुझ पर राज्यभार अवलम्बित है। इस समय वन-रमण का हठ उपस्थित कर मुझे अपयश का भागी न बनाओ।” राजगुरु ने चेतावनी दी।

राजगुरु की बातों का बिना कुछ उत्तर दिये संघमित्रा स्थविर के पैरों पर झुक कर बोली—“भन्ते, आप सत्य-स्वरूप हैं। हम राज्य-लिप्सा के वशीभूत अन्धकार में पड़े तड़प रहे हैं। हमें सत्य-पथ दिखाइये।”

“शुभे, तेरा कल्याण हो। तृष्णाओं का दमन ही सत्य-पथ का द्योतक है।”

संघमित्रा वन-भाग से वापस हो ज्यों ही राज-प्रासाद के वातायन में खड़ी हुई, सम्राट् अशोक के जय-घोष से धरती-आकाश प्रतिध्वनित हो उठे। राजरानी देवी ने दधि, अक्षत, धूप, दीप एवं पुष्पमाला से पूरित स्वर्ण-थाल ले दिग्विजयी पति की आरती उतारी, किन्तु राज-कुमारी के मुख पर न उल्लास की रेखा थी, न नेत्रों में चक्रवर्ती सम्राट् की पुत्री होने की गर्व-गरिमा।

सम्पूर्ण नगरी दीप-मालाओं से अलोकित हो उठी। घर-घर सम्राट् की मंगल-कामना के हेतु बधाईयाँ गायी जाने लगीं। नर्तकियों के छुम-छनन्, छुम-छनन् से राज्या-गण गुंजायमान होने लगा। ब्राह्मणों के मन्त्रोच्चारण एवं हवन-कुण्ड के सुगन्धित धूमाग्नि से राजप्रासाद का कण-कण सुरभित हो उठा। सम्राट् का ध्यान पुत्री पर गया,

जो अब तक दिखाई न दी। सम्राट् का मन आशंकित हो उठा। राजकुमारी को शीघ्र ही उपस्थित करने के लिये सखियों को आज्ञा हुई।

गन्धर्व कन्याओं के सदृश शृंगारित सखियाँ मधुर क्रीडन करती राजकुमारी के कक्ष में प्रविष्ट हुई, किन्तु क्षुब्ध मन एवं खिन्न तन उसे भूमिशयन करती देख, सभी किंकर्त-व्यविमूढ़ हो उठीं। सम्राट् को सूचना मिली। उसने पुत्री को अंक में भर, उसके दुःख का कारण पूछा।

“तात ! मुझसी भाग्यशालिनी अन्य कोई नहीं। मैंने कभी दुःख की छाया तक न देखी, किन्तु एक अमिट भावना मेरे चित्त को चिन्तित बनाती जा रही है।” उदासीनता से राजकुमारी ने मनःस्थिति प्रकट की।

“पुत्री ! तू अपने दुर्घट भावना को शीघ्र ही व्यक्त कर। मेरे लिये कुछ भी अप्राप्य नहीं।...” संघमित्रा की बातें समाप्त होने के पूर्व ही सम्राट् ने उत्तर दिया।

“व्यग्र न होवें। महायात्रा के समय मानव के साथ क्या जाता है ? इसका समाधान कर दें, यही निवेदन है।”

“अबोध पुत्री ! वस इसी लघु तर्क के लिये तू व्यथित हो रही है। मनुष्य अपने कर्मफल साथ लेकर जाता है।”

“तात्पर्य ?”

“सुकर्मी यशरूपी अलंकारों से अलंकृत होकर और दुष्कर्मों मस्तक पर अमिट कलंक-बिन्दु लगा कर महा-यात्रा को प्रस्थान करता है।”

“तात, हम सब राज्य-भोक्ता क्या लेकर जायेंगे ?”

सम्राट् के पास पुत्री के प्रश्नों का कुछ भी उत्तर न था। वह नतमस्तक शयन-कक्ष में जा चिन्ता में डूब गया। उसके नेत्रों में रणस्थली के भयावह दृश्य चलचित्र की भाँति गतिमान हो उठे। उसके कर्णकुहरों में गत दिवस की रणस्थली में आहत अर्धमृत वीरों की करुण-चीत्कारें, अग्नितपित लौह शलाकों सी चुभने लगीं। हृदय में जन-गिनत पुत्रविहीन माताओं एवं पतिविहीन पत्नियों की हृदय विदारक सिसकियाँ बज्र-सा आघात करने लगीं।

प्रातःकाल सम्पूर्ण नगरी में यह घोषणा सुनाई दी— आज से सम्राट् अशोक राज्य-विजय के स्थान पर धर्म-विजय करेंगे। रक्त-पात के स्थान पर बुद्ध, धर्म और संघ की निर्मल ज्योति का प्रचार करेंगे। यह सुनते ही सबकी

आँखों में हर्ष के आँसू उमड़ आए। अब कृपाण-विहीन चण्डाशोक धर्माशोक बन गया। सम्राट् के मन से तृष्णा रूपी अन्धकार मिट चुका था। दिव्यज्योति में उसे सत्य-पथ दिखाई दिया, जिस पर अग्रसर होकर वह महान् विजेता के नाम से विख्यात हुआ। शताब्दियों बीत गये।

आज भी सम्राट् द्वारा निर्मित शिलालेख अपनी मूक-भाषा में उसका यशोगान कर रहे हैं। जब तक सूर्य प्रकाश देता रहेगा और चन्द्र शीतलता प्रदान करता रहेगा, तब तक अशोक की सुकीर्ति से मानव में नवजीवन का संचार होता रहेगा।

मध्य एशिया से उपलब्ध एक खण्डित बौद्ध नाटक

शारिपुत्र-प्रकरण

डा० सीताराम सहगल

जर्मनी के विख्यात संस्कृतज्ञ डा० ल्यूडर्स को १९१० में मध्य एशिया के तुर्फान नामक स्थान में ताड़पत्र के हस्तलिखित ग्रंथों के कुछ खण्डित अंश मिले। इसका पढ़ना एक परिश्रम-साध्य कार्य था। परन्तु जर्मनी के डा० ल्यूडर्स ने अपनी कड़ी तपस्या से इन पत्रों को पढ़ने में सफलता प्राप्त की। गम्भीर गवेषणा के बाद उक्त डाक्टर ने यह निष्कर्ष निकाला कि ये पत्र संस्कृत के तीन नाटकों के हैं। उनमें से एक का अन्तिम पत्र सुरक्षित रहने से उसकी पुष्पिका में स्वर्णाक्षीपुत्र कृत 'शारिपुत्र प्रकरण' नामक नाटक का नाम मिला। स्वर्णाक्षीपुत्र कौन था, इसका स्पष्टीकरण तिब्बती संस्करण की पुष्पिकाओं में अश्वघोष के नाम से हुआ। यही नहीं, महाकाव्य बुद्ध-चरितम् का श्लोक ज्यों का त्यों खण्डित 'शारिपुत्र प्रकरण' नाटक में मिला, जिससे अनुसंधान शास्त्रियों ने यह निष्कर्ष निकाला कि यह नाटकीय कृति निःसंदेह भदन्त अश्वघोष की है।

अश्वघोष की कृतियों को सुरक्षित रखने में चीन का बड़ा हाथ है। वहाँ के विद्वानों ने उनका चीनी भाषा में अनुवाद करके भारतीय ज्ञान और इतिहास की रक्षा की। सबसे प्रथम सन् १८८३ में सेमुअल वील ने 'बुद्धचरितम्' के चीनी संस्करण का अंग्रेजी में अनुवाद किया। परन्तु डा० ल्यूडर्स की खोजों ने अश्वघोष को विश्व नाटक-साहित्य में अमर स्थान दिया।

प्रकृत 'शारिपुत्र प्रकरण' नामक नाटक में नाटक-शास्त्र के सभी नियमों का पालन किया गया है। इसके नौ अंक

हैं, अंकों के नाम खण्डित प्रति में नहीं मिले। इसका नायक धीरोदात्त है। नायिका गणिका है या साधारण, यह निश्चय पूर्वक कहना कठिन है। भगवान् बुद्ध तथा उनके शिष्य संस्कृत गद्य-पद्य में भाषण करते हैं परन्तु विदूषक प्राकृत में बातचीत करता है। धार्मिक नाटक में भी विदूषक को उचित स्थान देने से स्पष्ट है कि लेखक ने लोकरुचि का सम्मान किया होगा। बौद्ध लेखकों द्वारा इन नियमों का पालन करना इस बात का भी परिचायक है कि संस्कृत नाटक का रूप इस युग में सुस्थिर और सुव्यवस्थित हो चुका था। बौद्ध विद्वानों ने पालि भाषा द्वारा ही अपने धार्मिक मतों का प्रतिपादन किया है परन्तु अश्वघोष ने एक नया कदम बढ़ाया। जिस प्रकार आधुनिक लेखकों ने उपन्यास तथा कहानी द्वारा वैज्ञानिक तत्वों का प्रतिपादन किया उसी तरह आचार्य अश्वघोष ने काव्य और नाटकीय शैली द्वारा बौद्ध मत का संस्कृत भाषा के माध्यम से जनता में प्रचार किया।

इस बौद्ध नाटक में शारिपुत्र और मौद्गल्यायन के भगवान् बुद्ध के उपदेशों द्वारा बौद्ध धर्म में दीक्षित होने का वर्णन है। रंग-मंच पर भगवान् बुद्ध, शारिपुत्र, मौद्गल्यायन तथा एक भिक्षु खड़ा है। यह भिक्षु प्राप्त क्रुद्धियों की एक श्लोक में प्रशंसा करता है :

आत्मेश्वरध्यानवलेन कुर्युर्
न योगिनां दुष्करमस्ति किञ्चित्।

योगी लोग आत्मा और परमेश्वर का ध्यान करके सब कुछ कर सकते हैं। इसके बाद शारिपुत्र उनके उपदेश

को सुनाते हैं और भगवान् भविष्यवाणी करते हुए कहते हैं कि शारिपुत्र धर्म-संघ का नेता होगा। मौद्-गल्यायन भगवान् बुद्ध को अपना गुरु स्वीकार कर कहते हैं—

महान्वस्य जनस्य दर्शनकरं नष्टस्य सत्ताकरम् ।
आपन्नस्य जनस्य निवृत्तिकरं मूढस्य संवित्करम् ॥

मैं उस गुरु को प्रणाम करता हूँ जो मोह के महान्धकूप में गिरे व्यक्ति को आत्म दर्शन कराते हैं, नष्ट हुए की सत्ता बनाते हैं, विपत्ति में फँसे हुए का उद्धार करते और मूर्ख को मार्ग दिखलाते हैं।

भगवान् बुद्ध उन्हें भी स्वधर्म में दीक्षित कर लेते हैं। इसके बाद तीसरा भिक्षु बुद्ध भगवान् की स्तुति करता है। तदनन्तर भगवान् और शारिपुत्र का संवाद है जो कि अत्यन्त खण्डित होने के कारण दुष्पाठ्य है।

भगवान् शिष्यों को समझाते हुए कहते हैं कि शरीर से अलग हुई बुद्धि को ही लोग आत्मा कहने लग जाते हैं और 'मोक्षस्तु परिकल्पते' अर्थात् मोक्ष केवल कल्पना मात्र है। शारिपुत्र अन्त में भगवान् बुद्ध की युक्तियों को स्वीकार कर लेते हैं। उन्हें पता लग जाता है कि आत्मा से मुक्त होने पर ही निर्वाण का अधिकार प्राप्त होता है। वह कहते हैं—

कर्मक्षेत्रं बीजमुत्पत्तिं चेतस्
तृष्णा वलेदच्छादनं चोष्णवन्ध्यम् ।
एवं लोकः सस्यवज्जायमानो
ज्ञानदित्ये पच्यते क्षीयते च ॥

अर्थात् मनुष्य का कर्म एक क्षेत्र के तुल्य है। जीवन पाने की चेतना बीज है। तृष्णा उसे उर्वर करने वाली नदी है। इस प्रकार मनुष्य खेती के समान उत्पन्न हो कर ज्ञान के सूर्य की किरणों से पकता और विलीन हो जाता है।

भगवान् बुद्ध प्रसन्न होकर शिष्यों की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि सत्य का बोध होने से मेरे शिष्यों के सब संशय नष्ट हो गए हैं और वे अब निर्मल चित्त वाले तपस्विजनों के समान पवित्रात्मा हैं। अन्त में नाटक की समाप्ति पर सुप्रसिद्ध 'अतः परम्' शब्दों के साथ एक श्लोक आशीर्वादात्मक मिलता है—

अतः परं ज्ञानमिदं यतेन्द्रियो
निरन्तरं भावयितुं विमुक्तये ।
शिवां सुभिक्षाभखिलाय कम्पिनी
निरामयं पातु विनिविशन्ती ॥

अर्थात् आज से लेकर ज्ञान-प्राप्ति के लिए निरन्तर का विषय बन कर इन दोनों स्वस्थशरीर और स्वस्थचित्त और कल्याणकारी भिक्षा पर निर्वाह करने वाले मेरे शिष्यों की रक्षा करे।





डाक्टर कैलासनाथ काटजू सारनाथ आयेंगे

आगामी ७ नवम्बर को सारनाथ के मूलगन्ध कुटी विहार का २६ वाँ वार्षिकोत्सव मनाया जायेगा। उसके अध्यक्ष-पद के लिए मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री डाक्टर कैलासनाथ काटजू ने अपनी स्वीकृति महाबोधि सभा के पास भेज दी है और सारनाथ आने के लिये अपनी हार्दिक प्रसन्नता प्रकट की है।

गया के लिए १०००) प्राप्त—श्री वाई० पी० विजय-तुंग अप्पुहामी, कुरुनेगल (लंका) ने गया के जैतिका-भवन के पुनः संस्करण के लिये १०००) दान भारतीय महाबोधि सभा को भेजा है।

बुद्धगया में दीक्षा-संस्कार—उड़ीसा के रहने वाले श्री आर० के० साहु तथा उनकी धर्मपत्नी ने बुद्ध-गया में बौद्ध-दीक्षा ग्रहण की। भिक्षु एम० नन्दसार ने उन्हें दीक्षा दी। उक्त अवसर पर वहाँ अनेक भिक्षु और गृहस्थ उपस्थित थे।

अशोक विहार में धर्मचक्र दिवस—दिल्ली के पास मेहरौली के अशोक विहार में 'बौद्ध आनुत्त्व' के तत्वावधान में १३ जुलाई को धर्मचक्र प्रवर्तन दिवस मनाया गया। सायंकाल विहार में प्रदीप जलाये गए तथा कम्बोडिया और स्याम के पाँच भिक्षुओं ने भिक्षु प्रियशील के नेतृत्व में सूत्रपाठ किया। उक्त अवसर पर कम्बोडिया के श्री वट ने श्रामणेरदीक्षा ग्रहण की।

नवबौद्धों को दण्ड नहीं—महाबोधि सभा के प्रधान मंत्री श्री डी० वल्लि सिंह ने भारत के प्रधान मंत्री श्री नेहरू को एक पत्र लिखा था और निवेदन किया था कि नवदीक्षित बौद्धों की पूर्व-प्राप्त सुविधाएँ छीनी नहीं

जानी चाहिए, प्रत्युत उन्हें सभी सुविधायें पूर्ववत् मिलनी चाहिए। उसके उत्तर में जो पत्र प्राप्त हुआ है। उसका सार यहाँ दिया जा रहा है—

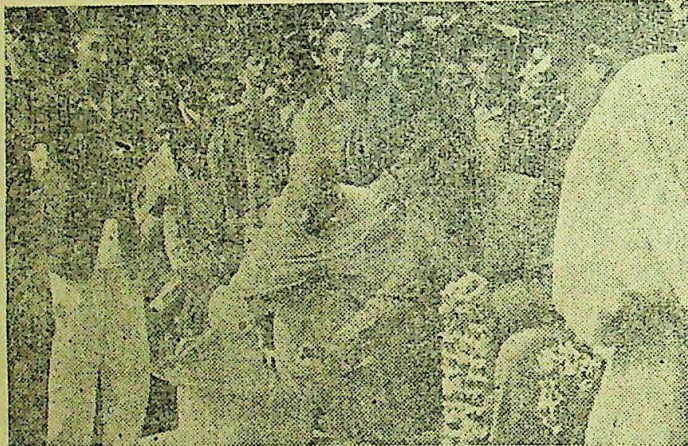
“२७ जुलाई का अपका पत्र मिला। मैंने बड़ी ही उत्सुकता से पत्र को पढ़ा है। जहाँ तक सरकार का सम्बन्ध है वह किसी को भी दण्ड देना नहीं चाहती, चाहे नवबौद्ध ही क्यों न हो। अपितु सरकार संविधान से विवश है। आप सम्भवतः जानते हैं कि संविधान में परिवर्तन करना एक खास ढंग से कर्तव्यवाही करने पर ही हो सकता है। यदि अच्छे कर्तव्यों के निमित्त सरकार संविधान का भी उल्लंघन करती है तो मामला हाई कोर्ट और सुप्रीम कोर्ट में जा सकता है।

परिगणित जाति के उन छात्रों को, जिन्होंने कि बौद्ध-धर्म ग्रहण कर लिया है, संविधान के अनुसार परिगणित जाति के लोगों को दी जाने वाली सुविधाएँ नहीं मिल सकती हैं, किन्तु पिछड़ी जाति के लोगों को दी जाने वाली सुविधाएँ मिलेंगी।”

यदि सरकार चाहे तो सब कुछ कर सकती है, किन्तु जब करने की इच्छा हो तब। देखा जा रहा है कि नव-बौद्धों को नाना प्रकार से कष्ट दिया जा रहा है। बच्चों की फीस माफ नहीं होती हैं, जिनकी फीस माफ भी की जाती है, उनसे एक फार्म पर हस्ताक्षर कराया जा रहा है कि मैं 'अकूत नहीं हूँ।' ऐसा ज्ञात हुआ है कि यह सब कार्यवाही महाराष्ट्र में हो रही है। इन पीड़ित, शोषित तथा पददलित व्यक्तियों का क्या यही अपराध है कि वे हिन्दू से बौद्ध हो गए हैं? एक भारतीय संस्कृति को छोड़ कर दूसरी भार-

तीय संस्कृति को अपना लिए हैं ? क्या इस धर्म-परिवर्तन मात्र से उनकी आर्थिक स्थिति सुधर गई है ? सरकार को संविधान का बहाना न बना कर सहानुभूति पूर्वक इस समस्या पर विचार करना चाहिए और जो व्यक्ति परिगणित जाति से बौद्ध हुए हैं, उन्हें सारी सुविधाएं प्राप्त होनी चाहिए। संविधान में परिवर्तन करने के लिए जनमत बनाना या सम्भाव्य उपाय करना भी सरकार का ही कर्तव्य है।

श्रामणेर-दीक्षा—११ अगस्त को प्रातःकाल सारनाथ के मूलगन्ध कुटी विहार में चाँदा जिले के सावंगी ग्राम निवासी श्री माधवराव नामक एक हिन्दू संन्यासी ने श्रामणेर दीक्षा ग्रहण की। उन्होंने सारनाथ में रहकर तीन महीना तक बौद्ध-धर्म का अध्ययन किया। तदुपरान्त श्रामणेर-दीक्षा ग्रहण करने का निश्चय किया। सन् १९५३ में उन्होंने संन्यास ग्रहण किया था।



दीक्षोपरान्त उनका नाम श्रामणेर मेघङ्कर रखा गया। उन्हें

भदन्त शासनश्री महास्थविर ने दीक्षा दी। भिक्षु संघरत्न ने आचार्यपद ग्रहण किया और भिक्षु धर्मरक्षित ने उपदेश दिया। दीक्षा के समय मूलगन्ध कुटी विहार में सारनाथवासी सभी भिक्षु तथा गृहस्थ उपस्थित थे।

श्रामणेर मेघङ्कर बौद्ध महासभा नागपुर के मंत्री की प्रार्थना पर ४ सितम्बर को धर्म-प्रचारार्थ यहाँ से नागपुर के लिए रवाना हो गए। उनके सारनाथ में रहने आदि की सारी व्यवस्था महाबोधि सभा की ओर से हुई थी।

सुश्री मालविका को ५००) पुरस्कार मिला—मध्य प्रदेश की सरकार द्वारा “१८५७ स्वाधीनता संग्राम शताब्दी समारोह” के अन्तर्गत आयोजित साहित्यिक

प्रतियोगिताओं में १८५७ से सम्बन्धित घटनाओं पर लिखित एकांकी पर ५००) का प्रथम पुरस्कार बौद्धधर्म की सुप्रसिद्ध लेखिका एवं कवयित्री सुश्री विद्यावती ‘मालविका’ को प्राप्त हुआ है।

इस प्रतियोगिता के अन्तर्गत २० एकांकी सम्मिलित हुए थे। प्रतियोगिता का निर्णय करने के लिए सेठ श्री गोविन्ददास, श्री वृन्दालाल वर्मा, डाक्टर नन्ददुलारे वाजपेयी, श्री गुरुप्रसाद टण्डन तथा द्वारकाप्रसाद मिश्र नियुक्त थे।

स्मरण रहे कि उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा भी उनके ‘आदर्श बौद्ध महिलाएँ’ नामक ग्रन्थ पर ३००) पुरस्कार गत जून मास में प्राप्त हुआ था।

अशोक स्तम्भ मिला—ज्ञात हुआ है कि लुम्बिनी के पश्चिम क्षेत्र के निकटवर्ती महम्मपुर नामक ग्राम में एक अशोक-स्तम्भ मिला है। अशोक-स्तम्भ भूमि के अन्दर है और अभी दो फुट ऊपर निकाला जा चुका है।

प्राचीन बुद्ध-मूर्तियाँ मिलीं—बौद्ध महासभा उज्जैन के प्रधान मंत्री श्री राजेश्वर नरांजे ने सूचित किया है कि उज्जैन से ६ मील दूर सौरंग नामक ग्राम में दो हजार वर्ष प्राचीन सात बुद्ध-मूर्तियाँ मिली हैं। जिन्हें देखने के लिए सभा के १४ कार्यकर्त्ता १५ अगस्त को वहाँ गए थे।

महाबोधि अनाथालय के लिए प्राप्त दान—कलकत्ता स्थित महाबोधि अनाथालय के भवन-निर्माणार्थ चीनी बौद्ध समिति, पीकिंग ने ५०००) दान भेजा है। चीन के अन्य दानियों ने १९४३ में ३०,०००) दिया था, जिनमें से ५०००) शरणार्थियों के निमित्त व्यय करने के लिए था और २५,०००) भवन-निर्माणार्थ था।

कलकत्ता के प्रसिद्ध व्यापारी श्री एल० एन० बिरला ने ५०००) तथा मांडले के डा० आर० एल० सोनी ने ५०००) दिया है। दलाई लामा तथा पणछेन लामा ने भी २०००) प्रदान किया। महाबोधि सभा इन सभी दायकों के प्रति कृतज्ञ है।

जापानी विद्वानों का स्वागत—६ अगस्त को कलकत्ता में महाबोधि सभा की ओर से धर्मराजिक विहार में जापान के तीन प्रसिद्ध विद्वानों का स्वागत सायंकाल साढ़े छः बजे किया गया। ये तीनों विद्वान् बुद्धजयन्ती के सिलसिले में भारत आए थे। इनके नाम थे डा० चितोकू मोरिकवा, डा० नागाओ और श्री तनुन कोटानी। ये तीनों विद्वान् प्राध्यापक तथा पत्रकार थे। ये लंका की बुद्धजयन्ती में भी सम्मिलित होने गए थे।

स्वागत समारोह में बहुत काफी संख्या में लोग एकत्र हुए थे। उक्त अवसर पर श्री डो० वलिसिंह, श्री के० सी० गुप्त, श्री के० एस० सीताराम और श्री बी० आर० बरुआ के भाषण हुए। श्री डी० वलिसिंह ने कहा कि तीनों विद्वान् जापानी साहित्य-क्षेत्र के शीर्षस्थ मनीषी हैं, जिनसे मुझे जापान जाने पर मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। जब कोई भारतीय जापान जाता है, तब उसका

जापानी जनता उत्साहपूर्वक स्वागत करती है, क्योंकि वह भगवान् बुद्ध की जन्म-भूमि से वहाँ जाता है।

उत्तर देते हुए डा० मोरिकवा ने महाबोधि सभा को धन्यवाद दिया और बतलाया कि कलकत्ता में ही नहीं, प्रत्युत उनका स्वागत सारनाथ और बुद्धगया में भी किया गया था। उन्होंने अनागारिक धर्मपाल जी के प्रति श्रद्धा प्रगट की और उनके सारनाथ में किए गए कार्यों की महत्ता पर प्रकाश भी डाला।

लामा अंगरूप—लामा अंगरूप तिब्बती साहित्य का विशेष रूप से अध्ययन करने के लिए आजकल तिब्बत गए हुए हैं। वे इस समय श्री पणछेन लामा द्वारा प्रदत्त २५०) मासिक छात्रवृत्ति से दशी लुम्बू में रह कर अध्ययन कर रहे हैं। वहाँ उनका नाम श्री के० नोरुव स्तेरिंग रखा गया है।

नव बौद्ध के लिए छात्रवृत्ति—उड़ीसा के नव-बौद्ध श्री आर० के० साहु ने १०) प्रतिमास की एक छात्रवृत्ति किसी नव बौद्ध छात्र को प्रदान करने के लिए भारतीय महाबोधि सभा को प्रदान किया है। यह छात्रवृत्ति किसी निर्धन छात्र को प्रदान की जावेगी। आशा है कि इस आदर्श छात्रवृत्ति का अन्य लोग भी अनुसरण करेंगे।



अनुवा
कमश
७) अ

हे ।
योगा
सारी
बौद्ध
एक प्र
हे । य
धर्म व
अन्य
यह गु
य
समाधि
पहला
आका

संयुक्त निकाय

दो भागों में

अनुवादक

भिक्षु जगदीश काश्यप

भिक्षु धर्मरक्षित

मुक्त-पिटक के तीसरे ग्रन्थ संयुक्त निकाय का हिन्दी अनुवाद दो भागों में प्रकाशित हो गया है। पृष्ठ संख्या क्रमशः ५२८ तथा ४४२। दोनों भागों का मूल्य क्रमशः ७) और ६) है।

बुद्धघोषकृत बौद्धयोग का उत्कृष्ट ग्रन्थ

विशुद्धि मार्ग

भिक्षु धर्मरक्षित

द्वारा हिन्दी में अनूदित

‘विशुद्धि मार्ग’ पालि-साहित्य का एक अमूल्य ग्रन्थ-रत्न है। इसमें बौद्ध-दर्शन की विवेचनात्मक गवेषणा के साथ योगाभ्यास की प्रारम्भिक अवस्था से लेकर सिद्धि तक की सारी विधियाँ सुन्दर ढंग से समझाई गई हैं। इस ग्रन्थ में बौद्धधर्म का कोई भी ऐसा अंग नहीं है जो अछूता हो। एक प्रकार से इसे बौद्धधर्म का विश्वकोश कहा जा सकता है। यद्यपि विशुद्धिमार्ग प्रधानतः योग-ग्रन्थ है, तथापि बौद्धधर्म का जैसा सुन्दर निरूपण इसमें किया गया है, वैसा अन्य किसी भी ग्रन्थ में प्राप्त नहीं है। योगियों के लिए तो यह गुरु के समान निर्देश करने वाला महोपकारी ग्रन्थ है।

यह दो भागों में मुद्रित हो रहा है। पहले भाग में समाधि-निर्देश पर्यन्त ११ परिच्छेद हैं और दूसरे में शेष। पहला भाग प्रकाशित हो गया है। पृष्ठ संख्या ४३०, आकार रायल, सजिल्द मूल्य १०)।

प्राप्तिस्थान :—

व्यवस्थापक, महाबोधि पुस्तक भण्डार,
सारनाथ, वाराणसी।

धम्मपद

भिक्षु धर्मरक्षित द्वारा अनूदित धम्मपद का गुटका आकार में परिचिद्धित एवं संशोधित द्वितीय संस्करण प्रकाशित हो गया। छपाई बहुत ही आकर्षक एवं मनोहारी है। यही एक ऐसा ग्रन्थ है जिसे जीवन भर साथ रखा जा सकता है। अनुवाद की भाषा सरल एवं सुबोध है। इस नवीन संस्करण का मूल्य केवल १) है।

व्यवस्थापक, भगवताप्रकाशन, कबीरचौरा, वाराणसी

वार्षिक)

५) {

मध्यम मार्ग

{ एक अंक

{ =)

साप्ताहिक

यह बौद्धधर्म का सामाजिक, राजनैतिक एवं उद्बोधक साप्ताहिक पत्र है। इसमें बौद्धजगत् के ताजे समाचारों के साथ धर्म सम्बन्धी लेख भी रहते हैं।

प्राप्तिस्थान—

व्यवस्थापक, बुद्धविहार, गिस्सालदार पार्क, लखनऊ

भारत सरकार से “रजिस्टर्ड”

सफेद दाग का शत्रु

इस रामदाणद्वारा से स्त्री, पुरुष, बालकों के शरीर पर के दाग ऐसे निकल जाते हैं कि वह कहाँ थे इसका पता नहीं लगता। हजारों ने अनुभव करके प्रशंसापत्र भेजे हैं। मूल्य ५) रु०। डा० व्यय १।) रु०। अधिक विवरण मुफ्त मंगवाकर देखिये।

वैद्य के० आर० बोरकर (ध० ६०)

मु० पो० मंगरूलपीर, जि० अकोला (विदर्भ)

सफेद कोढ़ के दाग

यह ऐसे निकल जाते हैं कि वे कहाँ थे इसका पता भी नहीं लगता।

भगवान जी जैन प्राचोरा (खानदेश) की पुत्री का कोढ़ अच्छा हो गया और आपने हमको ५१) रु० इनाम दिया। ऐसे कई इनाम मिले और कोढ़ के हजारों लोग अच्छे हो गये। मू० ५) रु० डा० ख० १५ आ०, विवरणपत्र मुफ्त मंगावे। नक्कालों से सावधान रहें।

वैद्य बी० आर० बोरकर, आयुर्वेद भवन (ध० ६०)

मु० पो० मंगरूलपीर, जि० अकोला (विदर्भ)

हिन्दी में बौद्धधर्म की पुस्तकें

विशुद्धिमार्ग (पहला भाग)—भिक्षु धर्मरक्षित	१०)	बौद्ध-चर्या-विधि—भिक्षु धर्मरक्षित	1=)
दीवनिकाय—राहुल सांकृत्यायन	६)	येरी गाथायें—भरतसिंह उपाध्याय	१॥)
मज्झिम निकाय—	८)	बुद्ध और बौद्ध साधक—	१॥)
विनय पिटक—	८)	धम्मपद—राहुल सांकृत्यायन	१॥)
संयुक्त निकाय—भिक्षु ज० काश्यप और भिक्षु धर्मरक्षित प्रथम भाग ७), द्वितीय भाग	६)	बुद्धधर्म के उपदेश—भिक्षु धर्मरक्षित	२)
बोधिव्याख्यार—शान्तिभिक्षु	१०)	बौद्ध विभूतियाँ—	१)
धम्मपद (कथाओं के साथ)—भिक्षु धर्मरक्षित	२॥)	लंका-यात्रा—	१॥)
धम्मपद (गुटका)—	१)	नेपाल-यात्रा—	४॥)
तथागत-हृदय—	॥)	कुशीनगर का इतिहास—	२॥)
प्रथम बुद्ध-सन्देश—	॥)	पालि-पाठ-माला—	१)
धम्मपद—अवधकिशोर नारायण	१॥)	जातिभेद और बुद्ध—	॥)
सुत्तनिपात—भिक्षु धर्मरक्षित	३)	तेलकटाह गाथा—	1=)
सुद्धकपाठ—भिक्षु धर्मरक्षित	१)	बौद्ध-शिशु-बोध—	१)
पालि महाव्याकरण—भिक्षु जगदीश काश्यप	६)	कुशीनगर-द्विर्दर्शन—	१)
येर गाथा—भिक्षु धर्मरक्षित	३)	तथागत का प्रथम उपदेश—	१)
भगवान् बुद्ध की शिक्षा—देवमित्र धर्मपाल	1=)	सारनाथ-द्विर्दर्शन—	१)
महाकाव्यिक तथागत—चेदराज प्रसाद	॥)	बुद्धकालीन भारत का भौगोलिक परिचय	॥)
बुद्धचर्या—राहुल सांकृत्यायन	८)	पालि जातकावली—बटुकनाथ शर्मा	२॥)
तथागत—आनन्द कौसल्यायन	१॥)	बुद्ध-वचन—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन	॥)
बुद्ध और उनके अनुचर—	१॥)	बुद्धवचनसूत्र—भिक्षु शासनश्री	१)
बौद्धचर्या पद्धति—बोधानन्द महास्थविर	१॥)	नालन्दा विश्वविद्यालय—चन्द्रिका सिंह उपासक	1=)
सरलपालि शिक्षा—भिक्षु सदातिस्स	१॥)	श्रद्धा के फूल—(कहानी-संग्रह) कुमारी विद्या	1=)
बौद्ध कहानियाँ—व्यथित हृदय	१॥)	बुद्ध-अर्चना—(कविता)	॥)
सारनाथ-चाराणसी—भिक्षु धर्मरक्षित	१॥)	पूणिमा—(कविता)	॥)
इतिवृत्तक—भिक्षु धर्मरक्षित	॥)	कामना—(कविता)	॥)
बौद्धयोगी के पत्र—भिक्षु धर्मरक्षित	१)	आदर्श बौद्ध महिलायें	१॥)
भगवान् हमारे गौतम बुद्ध—प्रो० मनोरंजनप्रसाद—	१)	नारी-हृदय	१॥)
कपिलवस्तु-लुम्बिनी-दिग्द०—श्रीविजय श्रीधरस्तव ॥)	१)	बुद्ध-चरितावली—(सचित्र)	॥)
तुलसी के तीन पात—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन	१)	महामानव बुद्ध—राहुल सांकृत्यायन	२॥)

नागरी लिपि में पालि ग्रन्थ

जातकट्टक—भिक्षु धर्मरक्षित	१)	महावंसो—भिक्षु धर्मरक्षित	॥)
विशुद्धिमार्गदीपिका—धर्मानन्द कौशाम्बी	२॥)	धम्मचक्रपंचत्तन सुत्त—	॥)
नवनीत टीका—	२॥)	तेलकटाहगाथा—	॥)
अभिधम्मसंग्रह—	२॥)	सुत्तनिपात—भिक्षु धर्मरक्षित	३)
पालि पाठ माला—भिक्षु धर्मरक्षित	१)	सुद्धकपाठ—	॥)
चरिया-पिटक—	१॥)	सिञ्जाल सुत्त—भिक्षु कित्तिमा	॥)

सूचीपत्र के लिए २) के टिकट के साथ लियें।

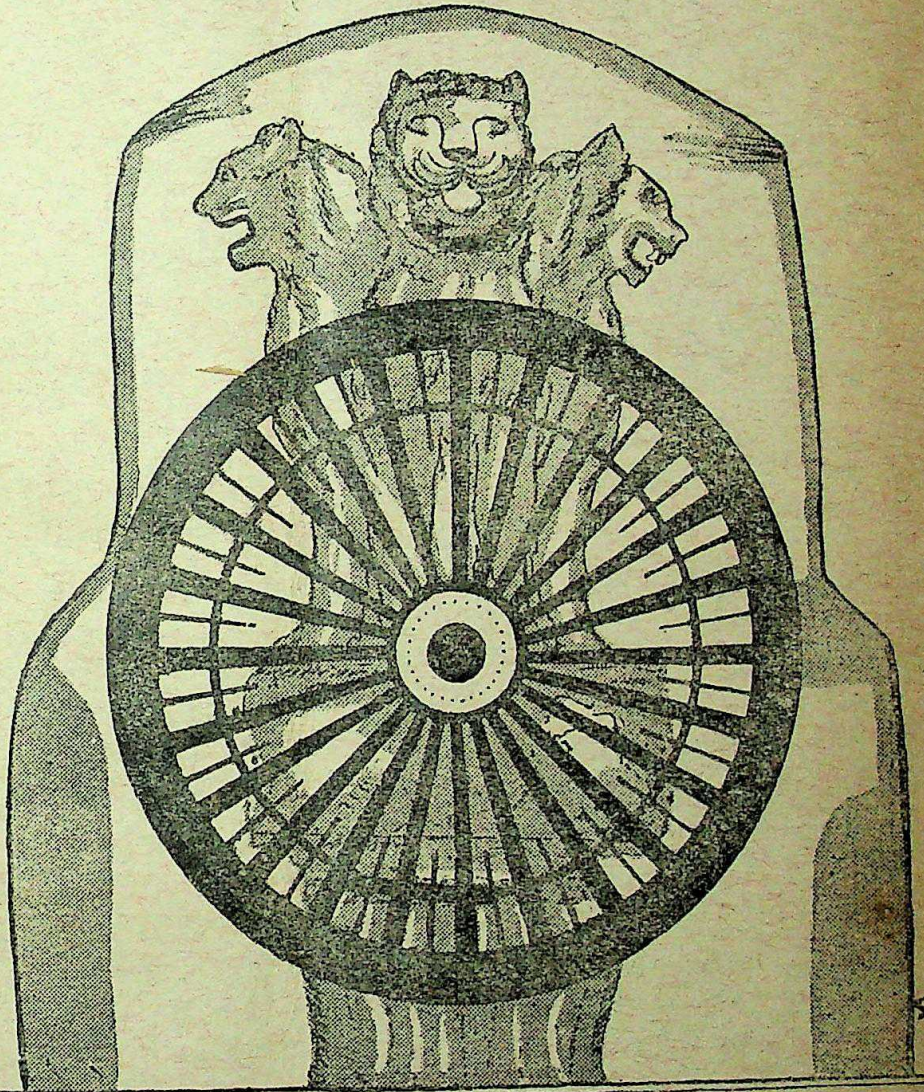
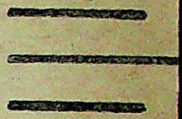
प्राप्ति स्थान :—

महाबोधि पुस्तक भण्डार, सारनाथ, बनारस।

प्रकाशक—भिक्षु एम० संघरत्न, महाबोधि सभा, सारनाथ, वागणसी (बनारस)

मुद्रक—ओम्प्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, कलीकट, बंगाल, (बनारस)। ५२०९-१४

धर्मदूत



महाबोधि सभा का मासिक मुख-पत्र

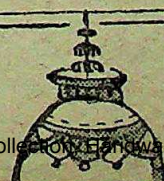
अक्तूबर

वर्ष २२

अंक ६

एक अंक का

वार्षिक ४



विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१. बुद्ध-वचनामृत—'संसार स्वाद में फँसा है'	१२५
२. बौद्धधर्म तथा साम्यवाद—डाक्टर भीमराव अम्बेडकर	१२६
३. कुसुम्हीनारा (कहानी)—भिक्षु धर्मरक्षित	१२८
४. धर्मराजेश्वर (पुरातत्त्व)—श्री नागेश मेहता	१४१
५. गृह-त्याग (कविता)—डाक्टर यू० वी० सिंह तँवर	१४४
६. भरहुत-स्तूप (पुरातत्त्व)—श्री हरिकृष्ण देवसरे	१४४
७. बुद्धानुस्मृति (कविता)—श्री पुरुषोत्तम लाल	१४६
८. तथागत की कुरुजनपद-यात्रा (इतिहास)—श्री अनन्त	१४७
९. सुजाता की खीर (कविता)—सुश्री विद्यावती मालविका, बी० ए०	१४८
१०. बौद्ध-जगत्	१४९
११. नये प्रकाशन	१५६

मूलगन्धकुटी विहार का वार्षिकोत्सव

७ नवम्बर वृहस्पतिवार को सारनाथ के मूलगन्धकुटी विहार का २६ वाँ वार्षिकोत्सव मनाया जायेगा। अध्यक्षपद के लिए मध्यप्रदेश के मुख्यमन्त्री

डा० कैलासनाथ काटजू

—ने अपनी स्वीकृति भेजी है। उक्त अवसर पर एक विराट् अन्तर्राष्ट्रीय बौद्धसम्मेलन भी किया जायेगा, जिसमें भारत तथा बाह्य देशों के प्रतिनिधि सम्मिलित होंगे। सम्मेलन का मुख्य विचारणीय विषय होगा—भारत के नवबौद्ध तथा उनकी विभिन्न समस्याएँ। भारतीय बौद्धों से प्रार्थना है कि वे अधिक से अधिक संख्या में उपस्थित होकर अपने विचार प्रकट करें और उत्सव की शोभा बढ़ायें।

भगवान् बुद्ध की पवित्र अस्थियों का प्रदर्शन भी उक्त अवसर पर होगा। यह प्रदर्शन वर्ष में केवल एक बार इसी अवसर पर होता है। रात्रि में बौद्धधर्म सम्बन्धी चलचित्र भी दिखलाया जायेगा। विभिन्न कार्यक्रमों के साथ ही ८ नवम्बर को महाबोधि कालेज का भी वार्षिकोत्सव सम्पन्न होगा। बौद्ध-उत्सव कैसे मनाये जाते हैं, इसे देखने तथा जानने के लिए भारतीय बौद्धों को उक्त अवसर पर सारनाथ अवश्य जाना चाहिए।

भिक्षु संघरत्न,
मंत्री, महाबोधि सभा
सारनाथ, वाराणसी

धर्मसूत्र

चरथ भिक्षवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं । देसेथ भिक्षवे धम्मं आदिकल्याणं मज्जे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवल परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ । महावग्ग, (विनय-पिटक)

‘भिक्षुओ ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिये, लोक पर दया करने के लिये, देव-ताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो । भिक्षुओ ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्था में कल्याणकारक धर्म का उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो ।’

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष २२

सारनाथ,

अक्तूबर

बु० सं० २५०१

ई० सं० १९५७

अङ्क ६

बुद्ध-वचनामृत

‘संसार स्वाद में फँसा है’

एक देवता ने भगवान् के पास आकर पूछा—‘लोक किस बन्धन में बँधा है?’ भगवान् ने उसे उत्तर देते हुए कहा—‘संसार में स्वाद लेना लोक का बन्धन है, लोक इसी में फँसा है । इसके ही प्रहाण से निर्वाण की प्राप्ति होती है और सभी फाँस कट जाते हैं । लोक मृत्यु से सताया जा रहा है, जरा से घिरा पड़ा है, तृष्णा की तीर से चुभा हुआ है, इच्छा से सदा धुँवा रहा है । इच्छा में ही लोक बँधता है, इच्छा को दबाकर छूट जाता है, इच्छा के प्रहाण से सभी बन्धन कट जाते हैं ।

तण्हाय जायते सोको, तण्हाय जायते भयं ।

तण्हाय विप्पमुत्तस्स, नत्थि सोको कुतो भयं ॥

तृष्णा से शोक उत्पन्न होता है, तृष्णा से भय उत्पन्न होता है, तृष्णा से मुक्त को शोक नहीं, फिर भय कहाँ ?

संसर्गजातस्स भवन्ति स्नेहा, स्नेहान्वयं दुक्खमिदं पवोति ।

आदीनवं स्नेहजं पेक्खमानो, एको चरे खग्गविसाणकण्णो ॥

संसर्ग में रहनेवाले को स्नेह उत्पन्न होते हैं और स्नेह से उत्पन्न होता है यह दुःख । स्नेह के दुष्परिणाम को देखते हुए अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ।

मित्ते सुहज्जे अनुकम्पमानो, हापेति अत्थं पटिबद्धचित्तो ।

एतं भयं सन्धवे पेक्खमानो, एको चरे खग्गविसाणकण्णो ॥

मित्रों तथा सुहृदों पर अनुकम्पा करते हुए आसक्तचित्त वाला अपने अर्थ को खो देता है, मेलजोल में इस भय को देखते हुए अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह । —सुत्तनिपात ३, ३-३ ।

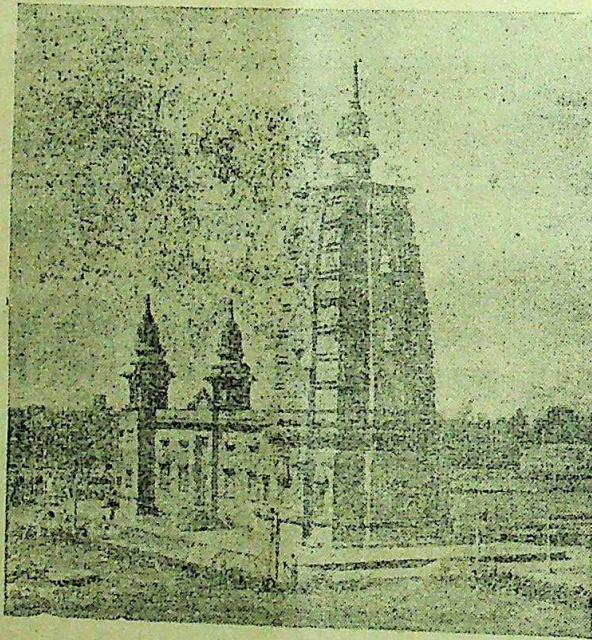
बौद्धधर्म तथा साम्यवाद

डाक्टर भीमराव अम्बेडकर

आज संसार के बुद्धिवादी विचारकों को मानव-जीवन को सुखी तथा समृद्ध बनाने के केवल दो ही मार्ग दिखाई पड़ते हैं। पहला मार्ग साम्यवाद का है और दूसरा बौद्धधर्म का। सुसंगठित रूप से प्रचार होने के कारण अधिकतर नवयुवक साम्यवाद की ओर आकर्षित हो रहे हैं। बौद्धधर्म बुद्धिवादी है, समता प्रधान है तथा परिणाम की दृष्टि से साम्यवाद से अधिक कल्याणप्रद है। यह बात हमारे युवकों के सामने रखना अति-आवश्यक है।

यदि इस कार्य को बौद्ध भिक्षु उचित प्रकार कर न पाएँ तो बौद्धधर्म नष्ट हो जाएगा। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। साम्यवाद की चुनौती को स्वीकार करते हुए बौद्ध भिक्षुओं की अपनी विचारपद्धति में तथा प्रचारकार्य में उचित परिवर्तन करके बुद्ध के विचार शुद्ध रूप में इन नवयुवकों के सामने रखने होंगे। इसी में बौद्ध धर्म का उत्थान है। समस्त संसार को व्याप्त करनेवाले साम्यवाद को

भगवान् बुद्ध की विचारप्रणाली में केवल यही एक उत्तर है। साम्यवाद मानव-जीवन को सुखी बनाने का एक समीप, किन्तु टेढ़ा मार्ग है। बौद्ध धर्म बहुत लम्बा रास्ता है, किन्तु इस समीप और टेढ़े मार्ग पर चलने की अपेक्षा बौद्धधर्म के राजपथ पर चलना ही अधिक लाभप्रद तथा उचित है।



सारनाथ का मूलगन्धकुटी विहार, जिसका २६ वाँ वार्षिकोत्सव ७ नवम्बर को मनाया जायगा

माक्सप्रणीत मार्गमें संकट हैं; विपत्तियाँ हैं, जिस पर उस मार्ग से, हमें जहाँ पहुँचना है, वहाँ पहुँचेंगे या नहीं, इसमें भी सन्देह है।

माक्सप्रणीत साम्यवाद का प्रमुख तत्व यह है कि संसार में आर्थिक लूट तथा विषमता के कारण ही बहु-संख्यक लोग दास बनकर कष्ट उठाते हैं। इस आर्थिक विषमता तथा लूट को रोकने का एक ही रास्ता है, जिसके द्वारा व्यक्तिगत सीमित अधिकार को नष्ट किया जाय और उस स्थान पर राष्ट्रीय सम्पत्ति का अधिष्ठान किया जाय। इसलिए श्रमजीवी वर्ग की तानाशाही स्थापित की जाए।

बौद्ध धर्म का प्रमुख तत्व भी माक्स के तत्वा-नुसार है। इससे भी संसार में दुःख है और उन्हें दूर करना आवश्यक है। भगवान् बुद्ध के मतानुसार भी दुःख का अर्थ ऐहिक दुःख ही होता है, तथा इसके बुद्ध वचनों में कई प्रमाण भी मिलते हैं। अन्य धर्मों के समान बौद्ध-धर्म आत्मा

तथा परमात्मा के सम्बन्ध पर आधारित नहीं है। उसका अधिष्ठान जीवनानुभूति है। दुःख का पार-लौकिक अर्थ लगाकर पुनर्जन्म के समय उसका सम्बन्ध जोड़ना बुद्ध-मत के विरुद्ध है। संसार में दरिद्रता से जन्म लेकर पलनेवाले दुःखों का नाश होना अनिवार्य है। यह सर्व प्रथम मान लेने के पश्चात् इस दुःख को हटाने

के कौन से मार्ग भगवान् बुद्ध ने बतलाए हैं, यह देखना क्रमप्राप्त हो जाता है। आदर्श बौद्ध समाज के तत्व बुद्ध ने संघ संस्था के अन्तर्निहित किये हैं। संघ में व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार के लिए कोई स्थान नहीं है। केवल आठ ही चीजें भिक्षु को अपने पास रखने का आदेश है। उनमें सब से पहला है वस्त्र इसमें भी परिग्रह की भावना निर्माण न होने पाएँ, ऐसा ध्यान रखना प्रधान माना गया है।

सम्पत्ति पर व्यक्ति-विशेषका अधिकार सारे अनर्थ का कारण है। यह बात बुद्ध ने मार्क्स से चौबीस सौ वर्ष पूर्व ही जान ली थी। बुद्ध तथा मार्क्स में जो अन्तर है वह दुःख का परिहार करने के लिए नियुक्त किए गये साधनों में है। मार्क्स के मतानुसार बल ही केवल एकमात्र साधन है, किन्तु इसके विपरीत बुद्ध के विचार में प्रेम, कृपा, मैत्री को साधन की दृष्टि से प्रमुखता प्रदान की गई है। बलपूर्वक सत्ता ग्रहण कर, तानाशाही को प्रस्थापित करते हुए व्यक्तिगत अधिकार को नष्ट करने की मार्क्सप्रणीत प्रणाली थोड़े अवसर में ही यशप्रद जान पड़ती है, लेकिन सच तो यह है कि इस प्रकार प्रतिष्ठित तानाशाही तथा उसके द्वारा आरम्भित हत्याकाण्ड की परिसमाप्ति कब होगी, इसका कोई निश्चित उत्तर नहीं है। और यदि तानाशाही असफल रही, तो अपरिमित रक्तपात से और कोई मार्ग नहीं रह पाता। हिंसा के द्वारा प्रस्थापित समता समाज में दृढ़ नहीं हो पाती, क्योंकि बल का स्थान धीरे-धीरे किस अन्य तत्व के द्वारा ग्रहण किया जायगा, इसका कोई उत्तर मार्क्स की मत-प्रणाली में नहीं है। हिंसाप्रधान साम्यवादी शासन-प्रणाली में शासन-चक्र अपने आप ही धीरे-धीरे नष्टप्राय, होता जायगा, यह एक भ्रममूलक धारणा है। दुःख तथा क्लेश से मुक्ति पाने का बुद्धप्रणीत मार्ग मन परिवर्तन पर आधारित है। मनुष्य के जीवन को सुखी बनाने के लिए नैतिक रूप में उसके मन को सुसंस्कारित करना अनिवार्य है। इस पर बुद्ध ने जितना अधिक ध्यान दिया, शायद ही संसार के किसी धर्म या विचारप्रणाली ने दिया हो।

मनुष्य में विवेक हमेशा जागृत तथा कार्यक्षम बनाए रखते हुए नैतिकतत्त्व को श्रद्धा का अधिष्ठान प्रदान करना यह बुद्ध का हेतु है, क्योंकि नीतितत्त्व को श्रद्धा का स्वरूप प्राप्त होने के उपरान्त दुःख कम करने के लिए अर्थात् आर्थिक लूट रोकने के लिए वश की आवश्यकता नहीं होती है। "State will wither away" लेनिन का यह मधुर स्वप्न यदि प्रत्यक्ष में आयगा, तो वह सामर्थ्य द्वारा स्थापित की हुई तानाशाही से नहीं, वरन् बुद्धप्रणीत नीतितत्त्व से ही।

तानाशाही का बुद्ध ने विरोध किया है। अजातशत्रु के मन्त्री ने उनसे एक बार प्रश्न किया कि वे वज्रियों पर कैसे विजय प्राप्त कर पाएँगे। भगवान् बुद्ध ने उत्तर में कहा कि, जबतक वज्री गणतन्त्र राज्यशासन का संचालन बहुमत के द्वारा करता है, तबतक वह अजेय है, जिस दिन वज्री शासन गणतन्त्र प्रणाली को त्याग देगा, उसी दिन वह पराभूत होगा। बुद्ध का यह नीतिप्रधान जनतन्त्र का मार्ग मार्क्सवाद की अपेक्षा अधिक हितकर तथा चिरस्थायी है। मुझे आशा है कि साम्यवाद का यह कल्याणप्रद प्राचीन मार्ग यदि हम आज की युवापीढ़ी के सामने रखेंगे, तो वह उन्हें अपनी ओर आकर्षित किये बिना नहीं रहेगा।

अपने भिक्षुओं को सर्वप्रथम भगवान् बुद्ध ने यह आदेश दिया था कि संसार की हर दिशा में जाकर धर्म का प्रचार करें। किन्तु वर्तमान युग में हम देखते हैं कि भिक्षु अपने-अपने विहार में रहकर आत्मोन्नति का मार्ग ढूँढ़ रहे हैं, यह कदापि उचित तथा हितप्रद नहीं है। बौद्ध धर्म कोई एकान्त में आचरण किया जानेवाला रहस्यमयी आचार नहीं है। वह तो एक प्रचण्ड सामाजिक शक्ति है। आज भी विनाश की भयानक चोटी पर खड़े संसार को मार्ग दिखाने का सामर्थ्य इस शक्ति में है। मात्र बुद्ध के आदेश का स्मरण रखते हुए, उसका प्रचार चारों ओर करने की भिक्षुओं को चेष्टा करनी चाहिए। (काठमांडू में दिये गये भाषण के आधार पर) .

अनुवादक—श्री तु० धों० गायकवाड़

ऐतिहासिक कहानी

(समय १९ वीं शताब्दी)

कुसुम्हीनारा

भिक्षु धर्मरक्षित

सुखारी छपरा में सन्नाटा छाया हुआ था। सब लोग अपने घरों में कम्बल, रजाई आदि ओढ़कर गहरी निद्रा में सो रहे थे। माघ मास का पूर्ण शीतकर अपनी स्निग्ध शीतलता एवं रजत-चन्द्रिका से निशा-वधू का शृंगार कर रहा था। गाय, बैल धारियों में बंधे विश्राम की नींद ले रहे थे। सेउर की कतरी (= कोल्हू) खुल चुकी थी। कड़ाह के रस को गुड़बल पर पकाकर चाकी के गड्ढे में डाला जा चुका था। थोड़ी-सी महिया बरगद के एक पत्ते में लेकर सेउर अपने कउड़े पर बैठा चाट रहा था। उसी समय शीत से ठिठुरते हुए स्वामी परमानन्द भी आंग तापने आ गये। आज उन्हें बहुत ठंडक लग रही थी। जब से वे बर्मा से लौटकर आये थे, अपने ओढ़ने के लिए कुछ भी नहीं बनवा सके थे। एक पुरानी गुदड़ी-सी दोहर थी, जिसे जयन्ती ओढ़े सो रही थी। उन्होंने आते ही फिरंगी को भी पुकारा। वह कलहुवाड़ के एक कोने में ऊख की सूखी पत्तियों में दबा रात काट रहा था। उसे नींद आ-आकर भी चली जाती थी। स्वामी परमानन्द के पुकारते ही वह उठ बैठा और आँख मलते हुए कउड़े पर आ गया।

“कहो भाई ! आज कितना ऊख बोया गया ?”

“केवल एक बीघा स्वामीजी !” फिरंगी ने कहा।

“बोआई के समय हलवाहे रह-रहकर ‘कुबेर भण्डारी की जै, कुबेर भण्डारी की जै’ बोल उठते थे, इसका क्या अर्थ है भाई ?”

“कुबेर भण्डारी उत्तर दिशा में रहते हैं और वह अन्न-धन के स्वामी हैं, इसीलिए हम लोग उनकी जयकार मनाते हैं।”

“हाँ, इतना तो ठीक है, किन्तु तुम लोग और क्या जानते हो ?”

“हम लोग और कुछ तो नहीं जानते। यदि आप जानते हों तो हमें भी बतलाइये।”

“हाँ, स्वामीजी ! कहिये न !” सेउर भी बोल उठा। तब तक इसकी महिया समाप्त हो चुकी थी। वह खोइया से हाथ पोंछकर पास आ बैठा था।

“अच्छा सुनो। प्राचीन काल में यह सारा प्रदेश मल्लजनपद कहलाता था यहाँ मल्लों का राज्य था वे गणतन्त्र प्रणाली से शासन करते थे। उस समय भगवान् बुद्ध इस जनपद में अनेक बार आये थे। उन्हें मल्ल-जनपद बहुत प्रिय था। वे मल्ल गणतन्त्र के प्रशंसक थे। उनके कुछ ही दिन पश्चात् कुशीनार से भोगनगर तक विहारों की पंक्ति-सी बन गई। जनपद का सारा जनजीवन बौद्ध-संस्कृति से समझीभूत हो गया। यद्यपि कालान्तर में बौद्धधर्म यहाँ से उठ-सा गया, लोगों की उपेक्षा और यवनों के आक्रमण से सभी विहार, स्तूप आदि ध्वस्त हो गये, किन्तु इसकी छाप अमिट बनी रही, क्योंकि वह तो लोकधर्म बन चुका था। उस समाजव्यापी धर्म के ही ये सब अवशेष हैं।” स्वामी परमानन्द ने गम्भीरता-पूर्वक कहा।

“कुबेर भण्डारी से क्या सम्बन्ध है स्वामीजी ?” फिरंगी ने पूछा।

“कुबेर बौद्धधर्म में उत्तर दिशा के राजा माने जाते हैं। राजा अन्नदाता होता ही है। कुबेर ही क्या, हम तुम्हें कुछ और ऐसी बातें बतलायेंगे, जो उसी प्राचीन संस्कृति की सूचना देती हैं।”

“हाँ, सुनाइये स्वामी जी !” सेउर और फिरंगी एक साथ बोल उठे।

“देखो भाई ! यह उसी का प्रभाव है कि कालीमाई के रूप में काली यक्षिणी की पूजा करते हैं और उन्हें ग्राम-देवी मानते हैं। भगवान् ने अन्तिम समय में अपना सिर

कुसुम्हीनारा

१३९

उत्तर की ओर किया था, इसलिए हम भी अपने मृतक का सिर उत्तर की ओर कर देते हैं। अन्तेष्टि-संस्कार के पश्चात् अस्थियों (= फूलों) को लेकर जो समाधि (= स्तूप) में निधान करते हैं, यह भी उसी का रूप है। खेत में नई फसल तैयार होने पर पहले साधुओं को देकर ही अपने उपभोग में लाते हैं या निकट के मठ में उसका कुछ

अंश भेज देते हैं, यह भी भिक्षुओं और विहारों की स्मृति के लिए पर्याप्त है। प्रतिदिन रात्रि में लगभग आठ बजे भण्डार (=वायव्य) कोण से जो शीतल वायु के झोंके चलते हैं, उन्हें 'मौरगी हवा' कहते हैं, यह मौरवी या मौर्य देश की वायु का द्योतक है। मल्ल जनपद के निकट ही पश्चिम में तो मौर्यों का पिप्पलिवन था और सभी मौर्यबौद्ध थे। कुछ ग्रामों में सिद्ध बाबा के चौर बने होते हैं, यह भी सिद्धों (= तांत्रिक भिक्षुओं) के कारण ही हुआ है। उस समय जनता एवं पशु-धन की रक्षा के लिए ग्राम-ग्राम में परित्राण-पाठ हुआ करते थे, सम्प्रति वर्ष में एक बार ग्राम के सम्पूर्ण पशुओं को ग्राम से बाहर एकत्र कर मंत्र पढ़ते हैं और ग्राम क्षेत्र को घेरकर रक्षा-सूत्र तैयार करते हैं। यह कार्य साधुओं द्वारा ही सम्पन्न भी होता है, जो पहले भिक्षुओं द्वारा होता था। भाई! मैं कहाँ तक गिनाऊँ ऐसे पूरे समाज में ही बौद्ध धर्म व्याप्त है।"

"स्वामी जी ! आपने बहुत ज्ञान की बातें सुनाईं।" फिरंगी ने कहा।

"माथाकुँवर (= कुशीनगर) में जो मूर्ति खोदाई में मिली है, वह तो बुद्ध भगवान् की ही है न?" सेउर ने पूछा।

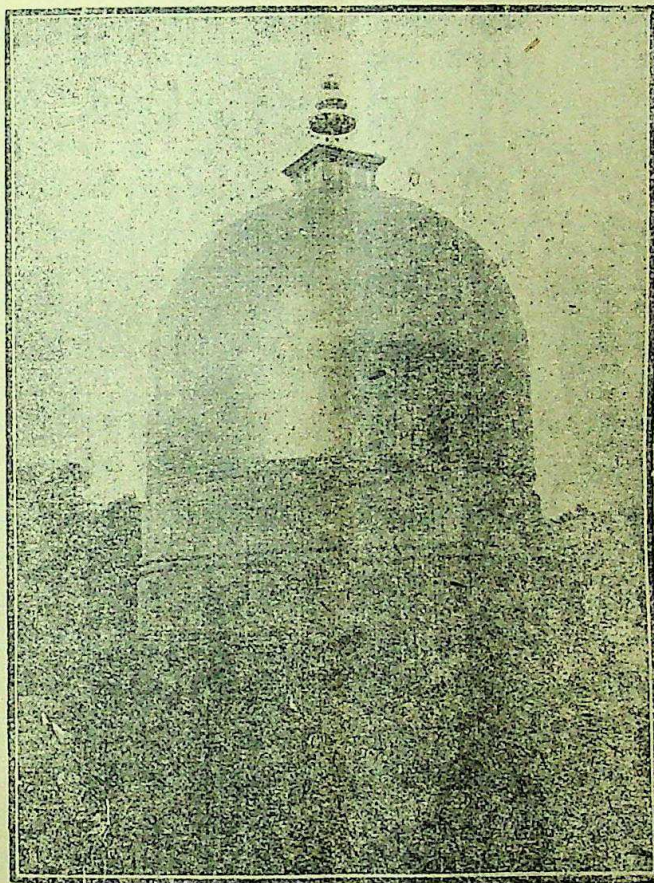
"हाँ, वह भगवान् बुद्ध की ही है। वह जहाँ लेटे पड़े हैं, वहीं पर उन्होंने देह छोड़ी थी।"

"जिस समय इस स्थान की खोदाई हो रही थी उस समय मैंने भी उसमें काम किया था। यह सारा स्थान जंगल-सा पड़ा था। मन्दिर टीला जान पड़ता था, जैसा कि उसके पीछे एक टीला अभी तक है। महावीर बाबा कहते थे कि उसमें भगवान् के फूल (=अस्थि-धातु) हैं।" फिरंगी ने उत्साह के साथ कहा।

"खोदाई में तो मैंने भी काम किया था। उस समय यहाँ महावीर बाबा नहीं आए थे। तब मेरा घर छुगवा (= युग्मवन) में था। उस समय यहाँ से बहुत सी मूर्तियाँ, मिट्टी के

खिलौने और मनुष्यों की हड्डियाँ मिलीं थीं। खोदाई कराने वाले साहब अंग्रेज थे, उनका कहना था कि कभी यह स्थान जला डाला गया था और यहाँ के भिक्षु लोग मार डाले गये थे।" सेउर ने संवेदना प्रगट करते हुए कहा।

"हाँ, हाँ, उन्हीं साहब ने इस मूर्ति के मिलने की



कुशीनगर का स्तूप

प्रसन्नता में माथाकुँवर से रामाभार तक एक सुन्दर जुलूस निकाला था और हम लोगों को पैसे तथा मिठाइयाँ बाँटी थीं।” फिरंगी ने झट कह डाला।

“स्वामी जी ! माथाकुँवर में देवी-देवता भी रहते हैं, मैंने तो कई बार उन्हें घूमते हुए देखा है।” सेउर ने कहा।

“कैसे देवी-देवता भाई !” स्वामी परमानन्द ने पूछा।

“वही, जिन्होंने तीस-चालीस वर्ष पहले लोगों को बचाते हुए अपने प्राण दे दिए थे। वे देवी-देवता होकर यहीं रहते हैं। वे सबकी रक्षा करने वाले हैं। कई बार रात्रि में मेरे सामने से जाते-जाते अदृश्य हो गए हैं।”

“वे कौन थे भाई ?”

“हमारे ही ग्राम में जयसिंह नामक एक विद्वान् रहते थे। उन्होंने काशीजी में जाकर वेद-शास्त्र पढ़ा था। सभी तीर्थों की यात्रा भी की थी। पूरे पन्द्रह वर्ष के पश्चात् जब सब विद्या में निपुण होकर घर लौटे, तो माता-पिता ने बड़े समारोह के साथ उनका विवाह कर दिया। उनकी पत्नी का नाम पद्मादेवी था। वह सचमुच देवी थी। पति के अनुरूप दुलहिन मिली थी। दोनों प्रातः सायं रामाभार जाते थे। वहाँ कुसुम्हीनारा (= हिरण्यवती नदी) में स्नान करते थे। लौटती बार माथाकुँवर के कोट में जाकर घंटों पूजा करते थे। उन्हें पूजापाठ के आगे भोजन-छाजन की भी चिन्ता नहीं रहती थी। विवाह हुए सात-आठ वर्ष व्यतीत हो गए। किन्तु उन्हें कोई सन्तान नहीं हुई। जब लोग उनसे पूछते—“क्या आपको सन्तान नहीं है ?” तब कहा करते—“अरे भाई ! हम तो संसार के दुःखों में आ ही पड़े हैं, फिर दूसरे जीव के दुःख में पड़ने का कारण क्यों बनें ?” उनका उत्तर सुन, सब लोग चुप हो जाते थे। जहाँ कहीं कथा-भागवत होती थी, वहाँ वे अवश्य बुलाये जाते थे। ग्रामवासियों की उनपर बड़ी श्रद्धा थी। लोग उन्हें ब्रह्मचारीजी कहा करते थे। वह भी महिलाओं में सम्मानित थी। कोई भी घर ऐसा न था जहाँ से उसका बुलावा न आता हो, किन्तु वह पतिपरायण पत्नी किसी के घर नहीं जाती थी।”

“आगे क्या हुआ भाई ?” उत्सुकतापूर्वक स्वामी परमानन्द ने पूछा।

“एक दिन प्रातःकाल ब्रह्मचारीजी पद्मादेवी के साथ नदी पर स्नान करने गए थे। वर्षा-ऋतु थी। नदी में बाढ़ आई हुई थी। रामाभार, कुसुम्हीनारा, लसुहा, लसुही सब एक हो गये थे। रकसहवा-नाला भी उमड़ पड़ा था। आजकल कुसुम्हीनारा में वर्षा में भी पानी कम रहता है, अब वह छोटी हो गई है, किन्तु उन दिनों उसमें गर्मी में भी पानी रहता था। वर्षा में तो वह सहानदी का रूप धारण कर लेती थी। कोई भी बिना नाव, इस पार से उस पार नहीं जा सकता था। प्रायः व्यापारी लोग हिमालय की तराई से साखू देवदारु आदि के बेड़े बड़ी और छोटी गण्डक द्वारा लाकर कुसुम्हीनारा से खनुआ (= खाणुका) की धारा में कर देते थे और आगे बढ़ जाते थे। यहाँ से भी सीसम-बाँस आदि बेड़ों में बाँध लेते थे। नाव द्वारा भी अन्न का व्यापार होता था। थरुहट और त्रिवेणी का धान इसी मार्ग से बढ़ा और नवतप्पी में पहुँचता था।

नदी जाने पर पहले पद्मादेवी ही स्नान करती थी। उसके बाहर आनेपर ब्रह्मचारीजी पाँच डुबकियाँ लगाया करते थे। उस दिन ज्यों ही ब्रह्मचारीजी नदी में उतरे, लोगों के रोने-पोटने का तुमुल शब्द सुनाई दिया। “अरे बचाओ ! अरे...!!” पद्मादेवी ने भी सुना। दोनों ने देखा कि सामने बीच धार में लट्टों का एक बेड़ा चक्कर खा रहा था। उसपर तीन-चार स्त्रियाँ और पाँच-छः पुरुष बैठे हुए डूबने के भय से रो-पीट रहे थे। ब्रह्मचारीजी और पद्मादेवी के देखते-देखते ही बेड़ा आँखों से अदृश्य हो गया ! बेड़े पर बैठे सभी स्त्री-पुरुष नदी की धार में विलीन हो गये। करुणाद्रि हो ब्रह्मचारीजी ने छल्ला मारी और पानी की तेजी को हाथों से चीरते बेड़े के पास पहुँच गए। वे आगे बढ़ना ही चाहते थे कि बेड़े ने पानी के वेग से ऐसा उलटा खाया कि उसकी चपेट में आ गए और फिर ऊपर नहीं आ सके ! पद्मादेवी भी अपने पति के “आता हूँ, बचड़ाओ नहीं।” कहकर छल्ला मारते ही नदी में कूद पड़ी। उसने अपने प्राण-प्रिय पति को डूबते हुए देखा और उधर ही बढ़ चली, किन्तु हाय ! बेचारी वह देवी भी बेड़े के पास पहुँचते ही तिरोहित हो गई !” कहते-कहते सेउर की आँखें छलछला आईं।

“अच्छा, मैंने समझा, चार वर्ष पूर्व रामाभार की खोदाई होते समय थोड़ी दूर पर तालाब में तीन हाथ के नीचे साखुओं के लट्टे मिले थे, जो एक ही पास थे, कोई छः लट्टे रहे होंगे। उनके बीच में ही दबे हुए दो नर-कंकाल भी पाए गये थे। यह वही बेड़ा रहा होगा और ब्रह्मचारीजी तथा पद्मादेवी के अस्थि-पञ्जर...।” फिरंगी ने आश्चर्य से कहा।

“तो वही लोग माथाकुँवर में देवी-देवता होकर रहते हैं?” स्वामी परमानन्द ने पूछा।

“हाँ, स्वामीजी, वही लोग हैं। रात्रि में श्वेत-वस्त्र पहने हुए घूमा करते हैं। ब्रह्मचारीजी खड़ाऊँ पर रहते हैं और देवीजी हाथ में पुष्प-माला लिए रहती हैं। धन्य हैं

वे लोग, सदा माथाकुँवर के कोट की रक्षा करते हैं।” सेउर ने कहा।

“ग्राम-महिलाएँ उनके गीत भी तो गाती हैं।” फिरंगी ने कहा।

“अवश्य गाती होंगी, बड़े धर्मात्मा थे। ऐसे लोगों के पुण्य-प्रताप से ही पृथ्वी टिकी है।” स्वामी परमानन्द ने कहा।

पूरब में शुक्र तारा निकल चुका था। मुर्गे शब्द करने लगे थे। ग्राम की महिलाएँ घर से बाहर निकलने लगी थीं। लोगों के उठने के छिटफुट शब्द सुनाई पड़ रहे थे। और इस कहानी के तीनों पात्र कउड़े पर बैठे आग ही ताप रहे थे।

वास्तुकला का उपेक्षित खण्डहर

धर्मराजेश्वर

श्री नागेश मेहता

जब हम वर्तमान से लगभग एक हजार छः सौ वर्ष पूर्व अपनी दृष्टि ले जाकर ‘पग-पग रोटी, डग-डग नीर’ वाले इस मालव गणतंत्र की गौरव-गरिमा को देखते हैं तो बरबस दशपुर-जनपद के प्रति हमारा शिर श्रद्धावनत हो जाता है। इसके विपुल जनसाहस एवं अतुल वैभव की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करने के लिए एकवारगी हमारा मुखमण्डल अपूर्व आशा से आलोकित हो जाता है। धर्म, साहित्य, संस्कृति, कला एवं अपार शस्य-सम्पदा से समृद्ध इस जनपद का विरुदगान मृदुस्वर में अनायास ही प्रस्फुटित हो जाता है। वास्तुकला के जाज्वल्यमान प्रतीक मन्दिर, प्रासाद, गुफा एवं स्तम्भ आज की छिन्न-विच्छिन्न अवस्था में अपना तत्कालीन अस्तित्व बताते हुए हमारी ओर निहार रहे हैं। हमारा मस्तिष्क हमें सोचने को प्रेरित करता है कि कभी निश्चल धर्म की ध्वजा इन मंदिरों द्वारा फहराई गई होगी; कभी एकतंत्रीय अथवा जनतंत्रीय सत्ता के प्रतिनिधि इन राजप्रासादों में जनमानस की गुथियाँ सुलझाने में रत रहे होंगे; कभी इन गुफाओं में विश्व में शान्ति का संदेश प्रसारित करनेवाले ब्रह्मचारी,

भिक्षुगण अपने विद्यार्थी-जीवन में यहाँ रहे होंगे, और कालान्तर में उन्होंने राजनीतिक, धार्मिक जय प्राप्तकर अपने विरुद वर्णन करने के लिए कवियों को उत्साहित किया होगा।

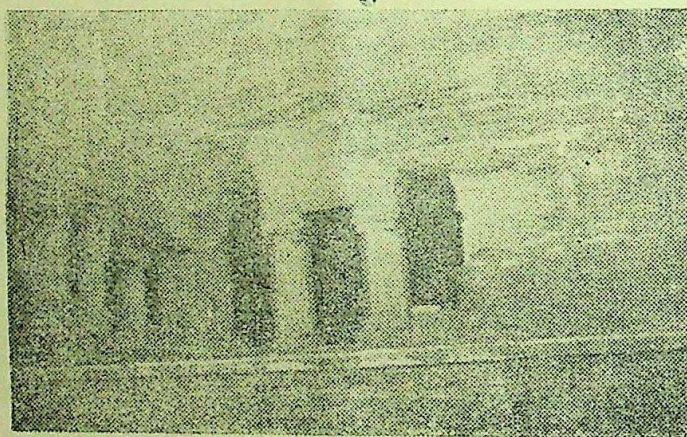
दशपुर जनपद के अन्तर्गत ऐसे कई स्थान हैं जिन पर विशेष रूप से लिखा जा सकता है; आज केवल धर्मराजेश्वर के उस गुफा-विहार पर ही कुछ लिखा जा रहा है। इस गुफा-विहार पर पूर्व में भी कुछ विद्वानों ने विचार किया है और अपने-अपने विचार प्रकाशित किये हैं परन्तु हिन्दी माध्यम से तो बहुत कम विचार ही जन समाज के सामने आ पाये हैं।

सर्वप्रथम एक अंग्रेज विद्वान् कर्नल जेम्स टॉड ने अपने ‘टाड्स राजस्थान’ के लिए सामग्री एकत्रित करने के उद्देश्य से इस विचार का अवलोकन ई० सन् १८२१ में किया था। इसका अवलोकन करने के पश्चात् उन्होंने इसका वर्णन उक्त ग्रंथ के तृतीय भाग में किया है। इसके बाद सर्वश्री अलेग्ज़ेण्डर कनिंघम, फर्गुसन और हेनरी कंजिस ने भी इसके वास्तुवैभव को देखा और अपने ऐतिहासिक तथ्य

निरूपित किये। कर्नल जेम्स टॉड ने जिस प्रकार के तथ्य अपने ग्रंथ में बताये हैं वे अधिकांश में भ्रमोत्पादक दन्त-कथाओं पर आधारित हैं। द्विवेदी अभिनन्दन ग्रंथ में श्री किशनलाल दुबे ने एक लेख द्वारा बहुत कुछ के विषय में 'बौद्ध-विहार' होने का मत व्यक्त किया है। श्री दुबे ने किंवदन्ती का उल्लेख किया है, वह केवल किंवदन्ती मात्र ही है क्योंकि उसकी पुष्टि किसी भी अनुश्रुति से नहीं होती। पाण्डु-पुत्रों के विशाल कथाकोष महाभारत में कहीं भी इस प्रकार का उल्लेख उपलब्ध नहीं है कि जिससे इस स्थान को भीम का बाजार अथवा और कुछ कहा जा सके।

कर्नल टॉड ने इसके लिए जैन गुफा समूह होने का मत व्यक्त किया है। परन्तु वह भी सन्देहास्पद ही है। यहाँ यह उल्लेख कर देना उचित जान पड़ता है कि टॉड साहब ने इसके विषय में जो जानकारी प्राप्त की थी वह उन्हें जैन जगत् के विद्वान् 'यति ज्ञानचन्द्र' ने दी थी।

श्री यति ने जिन पाँच मूर्तियों को जैन तीर्थङ्कर-रूपभदेव, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर—की मूर्तियाँ बताया है वह भी वास्तविकता से परे विदित होता है क्योंकि श्री यति सम्प्रदाय विशेष के आचार्य माने जाते थे और टॉड ने जैसा, यति जी ने बताया वैसा ही लिख दिया। अवश्य श्री यति जी ने अपने विदेशी शिष्य को अपने सम्प्रदाय से अभिभूत कर लिया था और स्वाभाविक भी था कि वे उन्हें परिवर्तित और एकांगी स्वरूप ही बताते। काश! श्री यति अपने शिष्य को यह भी बताने का प्रयास करते कि अमुक व्यक्ति ने इन गुफाओं को खुदवाया और अमुक काल में इनका निर्माण



बाघ की बौद्ध गुफाओं का एक दृश्य

हुआ तो विषय भ्रामक न होकर गवेषणात्मक हो जाता और आगे आनेवाली पीढ़ी को सोचने समझने में सरलता होती। अब प्रश्न रह जाता है कि अन्ततः इस १४ नम्बर की गुफा में जो प्रतिमाएँ हैं वे किन देवताओं की हैं। प्रश्न जटिल और विवादास्पद है परन्तु प्रत्यक्षावलोकन से प्रतीत होता है कि वहाँ पर ५ की अपेक्षा १५ मूर्तियाँ हैं तथा गुफा के मध्य में एक ठोस स्तूप है जिसपर उक्त गुफा का भार अवलम्बित है। गुफा में एक मूर्ति, शयन करती दिखाई गयी है और शेष मूर्तियाँ बैठी और खड़ी हुई हैं। शयनशील मूर्ति की रचना इस प्रकार से की गई है कि यदि उसका नाप शिर से चरणान्त तक लिया जाय और

पुनः चरणान्त से शिर तक, तो एक वालिस्त का अन्तर हो जाता है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि नाप यदि हाथ से किया जायगा तो अवश्य कटिस्थल एवं ग्रीवास्थल की गहराई में हस्तमाप से अन्तर आयेगा। उक्त प्रतिमा की लम्बाई १५ फीट है। इस मूर्ति के आगे और स्तूप के पीछे

११ प्रतिमाएँ हैं जो १४-१५ फीट की लम्बाई लिए हुए हैं। इनमें बैठी, खड़ी और अभय मुद्रांकित प्रतिमाएँ हैं। दो प्रतिमाएँ स्तूप के सम्मुख प्रांगण की दीवारों में आमने-सामने वर्तमान हैं। इनमें से एक मूर्ति तो चट्टान के प्रहार से भग्न हो गयी है और दूसरी यथास्थान सुरक्षित है।

इन मूर्तियों को बौद्ध मूर्तियाँ कहने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती, क्योंकि स्थान-स्थान पर स्तूपों का होना बौद्ध भावना का लक्षण है। वैसे जैन सम्प्रदाय में भी स्तूपों का होना अमान्य नहीं है परन्तु बहुत कम स्थानों पर ऐसा पाया जाता है। इधर इस काल में जैन धर्म का इतना

धर्मराजेश्वर

१४३

व्यापक प्रचार नहीं था। वरन् बौद्ध-धर्म और वैष्णव धर्म का प्रचुर मात्रा में प्रचार था। उस काल में दशपुर जनपद पर गुप्त सम्राट् कुमारगुप्त का आधिपत्य था। वह स्वयं वैष्णव सम्प्रदाय का अनुयायी था परन्तु अन्य सम्प्रदाय-वालों को भी मुक्तहस्त हो दान दिया करता था। अनेक शिव और वैष्णव मन्दिर भी बनवाये थे। उदाहरण के रूप में दशपुर नगर में सूर्य मन्दिर एवं बौद्ध मन्दिर का निर्माण कराया जाना है। अवश्य इस सहृदय सम्राट् ने इन गुफाओं के निर्माण में भी योग दिया होगा। उत्कीर्ण कला भी उस काल की ही और निर्देश करती है। अतः यह कहा जा सकता है कि ईसा की छठीं शताब्दी में इसका निर्माण हुआ होगा।

प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् फर्गुसन जो कि अपनी पुस्तक 'रॉक-कट टेम्पल ऑफ इण्डिया' में इसका निर्माण काल ४०८ से ४७३ ई० मानता है। और यही काल गुप्त काल था जिसे कलावैभव के लिए 'स्वर्ण काल' नाम से सम्बोधित किया जाता है।

लगभग १५० गुफाओं के इस विशाल विहार में कुछ गुफाएँ ही वर्णनीय हैं। अन्य गुफाएँ या तो ढह गई हैं या अधूरी ही बनाकर छोड़ दी गई हैं। ये गुफाएँ जिस पहाड़ी में खोदी गयी हैं, दुर्भाग्यवश उस पहाड़ी का पत्थर लाल रेतीला है जो चिरकाल तक स्थायी नहीं रह सकता और यही कारण है कि गुफाओं की हालत जर्जर हो गयी है और प्रतिमाओं की दशा भी चिन्तनीय है। इतनी गुफाओं में से २ से १४ तक की गुफाएँ आवासयोग्य हैं और विशेषतः ७, १०, ११, १२ और १४ नम्बर की गुफाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें से कुछ गुफाओं में रहने योग्य कमरे हैं, सभागृह हैं, मूर्ति स्थापित करने योग्य मन्दिर हैं।

इस अर्द्ध-चन्द्राकार छोटी सी पहाड़ी में जहाँ १५० गुफाएँ हैं वहाँ मध्य पर्वतिका में एलौरा गुफाके कैलास मन्दिर की प्रतिकृति धर्मराजेश्वर का मन्दिर है। यह मन्दिर पहाड़ी की विशाल चट्टानों को काटकर बनाया गया है। मन्दिर में बचे-खुचे प्लास्टर से विदित होता है कि किसी समयमें 'बाघ' की गुफाओं के समान यहाँ पर चित्रकारी की गई होगी। परन्तु दुर्भाग्यवश

आज चित्रकारी के नाम पर कुछ भी शेष नहीं है। मन्दिर के ईर्द-गिर्द ७ छोटी-छोटी मंदिरियाँ हैं जो कि मन्दिर की ही नाई चट्टानों में से ही बनाई गई हैं। इन मंदिरियों में विविध देवी-देवता अधिष्ठित हैं परन्तु अधिकांश देवता आस-पास के क्षेत्र से खोदाई में ही प्राप्त हुए स्थापित किये गये हैं। आसपास के क्षेत्र से जो भी प्रतिमाएँ उपलब्ध होती रहीं वे यहाँ आकर देव रूप प्राप्त कर गईं और यह स्थल क्षेत्र का एक प्रकार से संग्रहालय हो गया। मन्दिर के मुख्य द्वार पर भैरव और भवानी की दो अपूर्व और महत्त्वपूर्ण प्रतिमाएँ हैं जिन्हें हिन्दू लोगों ने सिन्दूर पोत पोत कर बे-डोल कर दी है। परन्तु गौर से देखने पर विदित होता है कि ये प्रतिमाएँ मूर्ति-तक्षण कला की सुन्दर प्रतीक हैं और आसपास के क्षेत्र में ऐसी प्रतिमाएँ प्रायः अनुपलब्ध हैं।

मुख्य मन्दिर में भगवान् शिव का लिंग प्रतिष्ठापित है और ठीक पृष्ठभाग में एक उच्चासन पर भगवान् विष्णु की भव्य प्रतिमा प्रतिष्ठित है। यह प्रतिमा भी पड़ोसी क्षेत्र से प्राप्त हुई है और सुरक्षा की दृष्टि से यहाँ स्थापित कर दी गई है।

इस मुख्य मन्दिर के पास ही एक अन्धकारपूर्ण गुफा है जिसे बन्द कर दिया गया है परन्तु अनुमान होता है कि यह गुफा अन्य गुफाओं से लम्बी, विशाल और विचित्र होगी! प्रकाश और वायुप्रवाह से हीन होने के कारण इसमें प्रवेश पाना बहुत ही कठिन है।

इस पहाड़ी के पास में दो बड़े-बड़े जलाशय हैं जो किसी समय में सुवासित कमल-पुष्पों से सुशोभित रहे होंगे। आज इन जलाशयों की भी वही स्थिति है जो कि गुफाओं की है।

इस प्रकार ईसा की ५-६ वीं शताब्दी का यह बौद्ध विहार आज हासोन्मुख हो रहा है। बौद्धजगत् का ध्यान भी आज इसकी ओर नहीं है। इसका एकमात्र कारण शायद इसकी ज्ञातय्यता बौद्ध वाङ्मय के इतिहासकारों को नहीं होना ही है। क्योंकि बौद्ध साहित्य में इसका उल्लेख न कुछ ही हुआ जान पड़ता है। यदि बौद्ध जगत् इस ओर ध्यान देकर इसके विषय में अनुशीलन एवं अनुसंधान करे तो दशपुर-जनपद में बौद्ध-परम्परा पर उचित प्रकाश पड़ने की संभावना है। इत्यलम्।

गृह-त्याग

डाक्टर यू० वी० सिंह तँवर

चन्दा के शुभ्र उजाले में गौतम का महल चमकता था नयनों का तारा यशोधरा का हाथ पसारे सोता था जब आधी रात व्यतीत हुई गौतम की निद्रा टूट पड़ी दुःखमय मनुष्य के जीवन की यह कठिन कहानी फूट पड़ी "हा! मानव जीवन भी कितना संक्षिप्त और दुःख भरा है यह जो आज हमें अति प्यारा है कल होता हम से विदा है वह जीवन का जो पल जाता है मृत्यु को निकट बुलाता है मानव जीवन अति अस्थिर पल-पल में रंग बदलता है। जो आज राज परिवार सुखी और सुखसे महल में सोता है और अपने को जो हर प्रकार से चिंता रहित समझता है कल ही उस पर सुख के बदले दुःख की बिजली गिर सकती है सुख से सोने वाली रानी कल चिंता से जल सकती है।" वह रात महल में सोने की अन्तिम थी त्यागी गौतम की मखमल के कोमल गद्दे पर वह नींद थी अन्तिम गौतम की अन्तिम दुलार से यशोधरा को देख के राजकुमार चले परिवार की ममता त्याग तपस्वी बनने को सिद्धार्थ चले। सिर के अति सुन्दर केश कटा सब वस्त्र राजसी त्याग दिये कापाय वस्त्र धारण कर प्रिय परिवार के नाते तोड़ दिये

जो महल के रहने वाले थे वे आज महल को छोड़ चले ले हाथ में भिक्षापात्र छोड़ कर राजपाट सिद्धार्थ चले। दुःखों का कारण क्या है: इस जग में दुःखों से भरे हुए? क्यों मानव दुःख पा रहे सभी माया के जाल में फँसे हुए? सुख का सोता है कहाँ, उसे पाने का क्या हम यत्न करें? भवसागर पार करें कैसे दुःखों का कैसे अन्त करें? इस उलझन को सुलझाने को सिद्धार्थ समाधी में बैठे दुःखों की दवा ढूँढ़ने को महलों को तज वन में पड़े एकाग्र चित्त होकर गौतम पीपल के नीचे बैठ गये औ, भूख प्यास की सुधि बिसरी मन में जागे तब भाव नये। काँटा हो गये सूख कर वे महलों में सुख से पले हुए फिर भी थीं आँखें बन्द ध्यान में गौतम ऐसे लगे हुए अपने अन्दर प्रकाश देखा तप सार्थक हुआ तपस्वी का जगमगा उठा जिससे जग यह जग उठा प्रकाश मनस्वी का जब गौतम ने आँखें खोलीं नभ में तारेश चमकता था था हृदय प्रकाशित उनका अति सुखमण्डल भव्य दमकता था अपने प्रकाश से आलोकित जग को करने तब बुद्ध चले जग से तमसा को दूर भगाने को तब वे हो शुद्ध चले।

भरहुत-स्तूप

श्री हरिकृष्ण देवसरे

मध्य रेलवे के प्रयाग-जबलपुर लाइन पर लगरगाँवा स्टेशन से दो मील पर भरहुत एक छोटा-सा गाँव है। वहीं प्राचीनकाल में एक प्रसिद्ध स्तूप था। इस समय वहाँ स्तूप के नष्टावशेष मात्र रह गये हैं। पूर्व में यह बौद्ध-धर्म का एक महान् केन्द्र होने के साथ-साथ बहुत बड़ा व्यापारिक नगर भी था। कहा जाता है कि वहाँ तमोलियों के ही ५४५ घर थे। उज्जयिनी और भेलसा से पाटलिपुत्र जानेवाली सड़क भरहुत होकर जाती थी।

यातायात के अच्छे साधन होने के कारण भरहुत उस समय एक बहुत बड़ा व्यावसायिक केन्द्र था।

सर्वप्रथम यहाँ पर ईंटों का एक स्तूप बना था। उसकी रक्षा के लिए साधारण पत्थरों की वेदिकाएँ भी बनवाई गई थीं। धीरे-धीरे इसमें उन्नति होती रही और नई-नई वेदिकाओं आदि का निर्माण होता रहा। अपने अन्तिम काल अर्थात् शुंगकाल में यह पूर्ण रूप से अलंकृत हो गया। पूर्वी तोरण पर जो लेख था, उससे सिद्ध होता

भरहुत-स्तूप

१४५

हे कि स्तूप शुंगवंशी नरेशों के अधीन रहा और उन्हीं के द्वारा कलामय मूर्तियों, तोरणों और वेदिकाओं का भी निर्माण हुआ। इसीलिए भरहुत की कला 'शुंग कालीन कला' कहलाती है। वेदिका के एक लेख पर धनभूति का नाम आया है। धनभूति सम्भवतः मथुरा का राजा था, उसे भरहुत स्तूप के प्रति विशेष श्रद्धा थी, इसीलिए शायद उसका नाम अंकित है। उसने कुछ आर्थिक सहायता स्तूप के निर्माण के लिए अवश्य दी होगी।

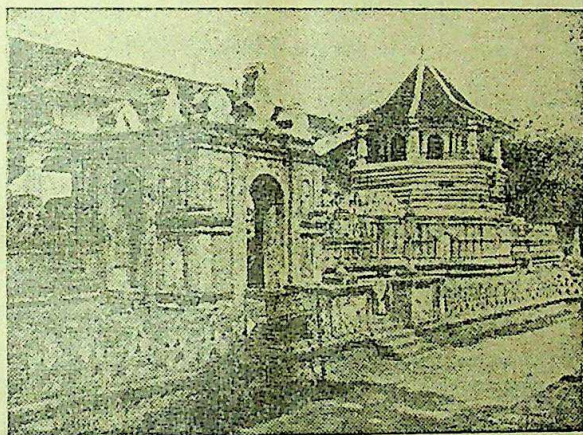
सन् १८७३ ई० में जनरल कनिंघम को इस स्थान का पता लगा। उस समय यह एक टीले के रूप में था। वेदिकाएँ आदि सब नीचे दबी पड़ी थीं। ऊपर पड़े हुए कुछ पत्थर ही उस स्थान पर छिपे हुए कला के रहस्य की ओर इंगित करते थे। सन् १८७४ में कनिंघम ने उसकी खोदाई करायी और जो कुछ भी तोरण, स्तम्भ, वेदिकाएँ आदि प्राप्त हुईं, उन सब को कलकत्ता के संग्रहालय में भेज दिया, जहाँ वे आज भी एक विशेष कक्ष में सुरक्षित हैं। कनिंघम के अनुसार भरहुतका निर्माण-काल १२५ वर्ष ईसा के पूर्व का माना जाता है।

भरहुत-स्तूप का व्यास प्राप्त अवशेषों के अनुसार लगभग ६८ फुट है। इसकी चारों ओर वेदिकाएँ थीं। स्तूप और वेदिकाओं के मध्य में चारों ओर दस फुट चार इंच चौड़ी पक्के फर्श की एक परिक्रमा बनी थी। स्तूप का मण्डलाकर वृत्त बारह इंच लम्बी और साढ़े तीन इंच मोटी ईंटों का बना था। स्तूप में प्रवेश करने के लिए चारों दिशाओं में चार तोरण बने थे। ये तोरण बीस फुट से अधिक ऊँचे थे। इनका प्रत्येक खम्भा एक पत्थर का बना था जो सात फुट एक इंच ऊँचा, एक फुट एक इंच चौड़ा और एक फुट ढाई इंच मोटा था। एक तोरण से दूसरे तोरण के बीच १६ खम्भे थे। इन खम्भों पर

देवताओं, यक्ष, नाग, धर्मचक्र और भगवान् बुद्ध के पूर्व-जन्म सम्बन्धी जातक-कथाएँ अंकित थीं।

वेदिकाएँ लगभग नौ फुट ऊँची थीं। इन पर बहुत-से लेख भी खुदे थे। उसके निर्माण में योग देनेवाले विभिन्न दाताओं के नाम और जातक कथाएँ खुदी थीं।

भरहुत का स्तूप शिल्पकला की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यहाँ की कला में काष्ठ-निर्माण शैली का अधिक पुट मिलता है। वेदिकाओं, स्तम्भों आदि में बने अलंकरणों से ऐसा जान पड़ता है कि शिल्पकार ने काष्ठ को प्रस्तर में बदल दिया है। लतिकाएँ, पुष्प, फल इत्यादि सब अत्यन्त कुशलता से चित्रित किये गये हैं।



लंका के कैण्डी शहर का दन्त-मन्दिर, इसमें पुरी से गया तथागत का दाँत सुरक्षित है

भरहुत की कला में लाक्षणिक पद्धति का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। लक्षण वास्तविक वस्तु के स्थान पर प्रयोग किये जाते थे। दृश्य में एक ओर 'धर्मचक्र' के सामने राजा प्रसेनजित की मूर्ति रथ पर बैठी प्रस्तर पर खुदी है। इससे राजा प्रसेनजित के भगवान् बुद्ध से मिलने की घटना प्रदर्शित की गई है। एक दृश्य में अजातशत्रु सपरिवार भगवान् बुद्ध के प्रति भक्ति-

भावना प्रकट कर रहा है। इसी तरह एक अन्य दृश्य में बोधिवृक्ष की पूजा दिखाई गई है।

भरहुत स्तूप के शिल्पियों ने लोकधर्म के जिन देवी-देवताओं की मूर्तियों का अंकन किया है, वे भारतीय शिल्पकला में अपना विशेष महत्व रखते हैं। उन शिल्पकारों ने लोकधर्म के देवताओं, यक्ष-यक्षी और नागों की मूर्तियों को भरहुत के वेदिका-स्तम्भों पर अंकित करके जनपद में धार्मिक चेतना उत्पन्न करने का महान् कार्य किया था। स्तूप के चारों तोरणों पर प्राचीन नियमानुसार चारों दिशाओं के रक्षकों की मूर्तियाँ बनी थीं। उत्तरी तोरण पर यक्षों के स्वामी कुबेर, पूर्वी तोरण पर

१४६

धर्मदूत

गंधर्वों के स्वामी धृतराष्ट्र; दक्षिणी तोरण पर कुम्भाण्डों के स्वामी विरूपाक्ष और पश्चिमी तोरण पर नागों के स्वामी विरूपाक्ष की मूर्तियाँ थीं। इसके अतिरिक्त बहुत-सी यक्ष-प्रतिमाएँ भी मिलती हैं। पश्चिम के तोरण पर लगी वेदिकाओं में बहुत-से यक्षों की प्रतिमाएँ थीं। इनमें लोम यक्ष और सुपावस यक्ष की प्रमुख थीं। पूर्वी तोरण की वेदिका पर सुदर्शना यक्षी की मूर्ति अंकित है। इस तरह न जाने कितने यक्ष-यक्षियों की मूर्तियाँ बनी थीं, जिनमें से अधिकांश अब नष्ट हो गई हैं।

भरहुत स्तूप में देवी-देवताओं, यक्षों आदि के अतिरिक्त दृश्य-अंकन में जो कुशलता दिखाई गई है, वह भी ध्यान देने योग्य है। दृश्यों की रचना का विधान एक निश्चित

सीमा के अन्दर बना है। उनकी रचना बहुत घनी है। एक छोटे पत्थर में समूचे दृश्य का भावांकन करना कलाकार की अपनी विशेषता है। इनमें दृश्यों के भावों को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक वस्तुओं का ही समावेश मिलता है। जहाँ बहुत से मनुष्यों की प्रतिमाएँ बनानी थीं वहाँ या तो उन्हें एक समानान्तर पंक्ति में दर्शाया गया है या एक के ऊपर एक के रूप में।

भरहुत की कला में अलंकार होने के कारण उत्तमता आ गई है, इसी से यह इतनी श्रेष्ठ बन पड़ी है। ऐसी अलंकृत शिल्पमूर्तियाँ अधिकतर पूर्ण मुद्राओं के रूप में हैं, किन्तु यह सब एक ही कला-विधान के अनुसार नहीं बनीं।

बुद्धानुस्मृति

श्री पुरुषोत्तमलाल

जगत का करने को कल्याण।

जगत में आए तुम भगवान् ॥

वेद पंथ अनुयायी जब हो गए अहं मद पूर्ण।

सरल युक्तियों से तुमने कर दिया उसे तब चूर्ण ॥

बुद्धि को गौरव किया प्रदान।

विषय वासना तृप्ति हेतु रच रच कर यज्ञ विशाल।

दे दे बलि निरीह पशुओं की धरती कर दी लाल ॥

यही क्या ब्राह्मण कर्म महान् ?

दुख जर्जर धरणी की तुमने सुन ली करुण पुकार।

द्रवित हो गया हृदय, वह चली करुणामृत की धार ॥

धरा को दिया अभय वरदान।

दे उपदेश महान् अहिंसा करुणा का हे बुद्ध !

दिखलाया जगती को तुमने आर्यधर्म पथ शुद्ध ॥

नमो हे पावन ज्योति महान् !

तथागत की कुरुजनपद-यात्रा

श्री अनन्त

आधुनिक दिल्ली नगर प्राचीन कुरु जनपद में पड़ता है। ऋग्वेद में वर्णित कुरु सम्भवतः उत्तरकुरु है। इस कुरुजनपद का स्पष्ट वर्णन पालि साहित्य में मिलता है। कुरुजनपद के राजाओं को कौरव्य कहा जाता था। पालि साहित्य के अनुसार ऐसा जान पड़ता है कि भगवान् बुद्ध ने मथुरा के पास यमुना नदी को पार किया था और वहाँ से कुरुजनपद अर्थात् वर्तमान दिल्ली-प्रदेश की यात्रा की थी। प्राचीन काल में कुरुजनपद की राजधानी इन्द्रपत्तन (इन्द्रप्रस्थ) नगर था। (कुरुरट्टेइन्द्रपत्तनगरे कौरव्यस्स रज्जो)। किन्तु बुद्धकाल में उसकी गणना बड़े नगरों में नहीं थी। बुद्धकाल के बड़े नगर थे चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी और वाराणसी। कुरुजनपद के थुल्लकोट्टित तथा कम्मासदम्म नामक नगर प्रसिद्ध थे। और इन नगरों में बुद्धभक्तों की एक बहुत बड़ी संख्या रहती थी। भगवान् बुद्ध ने कम्मासदम्म में ही निदान, सति-पट्ठान, आनंजसप्पाय, मागन्दिद्य आदि सूत्रों का उपदेश दिया था। नन्दुत्तरा और मित्रकाली भिक्षुणियाँ भी इसी नगर की रहने वाली थीं। भदन्त मागन्दिद्य भी यहाँ से ही प्रव्रजित हुए थे। थुल्लकोट्टित में कुरु जनपद का अग्र-कुलिक रहता था और सम्भवतः यही नगर उस समय द्वितीय राजधानी के रूप में था। भिक्षु राष्ट्रपाल इसी नगर के अग्रकुलिक के पुत्र थे। इन्होंने ही कौरव्य को बौद्ध बनाया था। राष्ट्रपाल सुत्त से जान पड़ता है कि कुरु-जनपद की राजधानी (इन्द्रप्रस्थ) थुल्लकोट्टित से बहुत दूर नहीं थी।

पालि साहित्य में लिच्छवी-गणतंत्र के संगठन एवं श्रीसम्पन्नता, श्रावस्ती की श्रद्धा, राजगृह की समृद्धि, वाराणसी के वस्त्र तथा चन्दन, कुशीनारा की प्राचीनता, उरुवेला, ऋषिपत्तन और जेतवन की महत्ता का जिस प्रकार उल्लेख मिलता है, उसी प्रकार कुरुजनपद के लोगों की बुद्धिमत्ता एवं श्रद्धा-भक्ति का वर्णन उपलब्ध है।

वर्तमान सोनपत, अमिन, कर्नाल और पानीपत के जिले प्राचीन कुरुजनपद में ही पड़ते हैं। यहाँ के लोग तीक्ष्ण बुद्धि तथा प्रज्ञावान् होते थे। कहा जाता है कि इसी कारण तथागत ने इस प्रदेश में गम्भीर एवं दार्शनिक सूत्रों का उपदेश दिया था। अट्टकथा में कहा गया है—
“भगवान् ने क्यों इस सूत्र का उपदेश वहाँ दिया? कुरुराष्ट्र वासियों की गम्भीर-देशना को ग्रहण करने के सामर्थ्य के कारण। कुरुराष्ट्रवासी भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक-उपासिकाएँ जलवायु की अनुकूलता के कारण सदा स्वस्थ-शरीर, स्वस्थ-चित्त होते हैं। वे चित्त और शरीर के स्वस्थ होने से प्रज्ञाबल-युक्त हो गम्भीर देशना को ग्रहण करने में समर्थ होते हैं। इसीलिये भगवान् ने उन्हें इस गम्भीर धर्म-देशना को कहा। जैसे कोई पुरुष सोने की डलिया पाकर उसमें नाना प्रकार के पुष्पों को रखे अथवा स्वर्णमंजूषा पाकर उसमें सात रत्नों को रखे, ऐसे ही भगवान् ने कुरुराष्ट्रवासियों की परिपद् को पाकर गम्भीर धर्मोपदेश दिया।”

कुरुजनपदवासी ध्यान-भावना में भी बहुत मन लगाते थे। यौगिक-क्रियाओं में उनकी प्रगति ५ वीं शताब्दी ईस्वी तक प्रसिद्ध रही है। आचार्य बुद्धघोष ने उनकी साधना का वर्णन करते हुए पंचसूदनी तथा सुमंगलविलासिनी में लिखा है—“उस जनपद की चारों परिपद् स्वभावतः ही स्मृति प्रस्थान-भावना में निरत रहती हैं। अन्ततोगत्वा दासकर्मकर भी स्मृति-प्रस्थान से सम्बन्धित वार्तालाप ही करते हैं, पनघट, सूत कातने के स्थान आदि में भी निरर्थक बातें नहीं होती हैं। यदि कोई स्त्री—“अम्म, तुम किस कर्मस्थान की भावना में लगी हो?” पूछने पर—“किसी में नहीं,” कहती है, तो उसकी निन्दा करते हैं—“तुम्हारे जीने को धिक्कार है, तुम जीते हुए भी मृत सदृश हो। फिर ऐसा न करना।”

१४८

धर्मदूत

कह कर उसे भावना-विधि सिखलाते हैं; किन्तु जो भावना में लगी होती है, उसकी प्रसंसा करते हैं ।”

बुद्धबोध ने दिल्ली प्रदेश के एक भिक्षुणी-आश्रम के तोते का वर्णन किया है कि वह भी भिक्षुणियों से सीख कर “अट्टी, अट्टी” कहा करता था । अन्त में उन्होंने यहाँ तक कह डाला है कि “उस प्रदेश के केवल स्त्री-पुरुष ही नहीं, प्रत्युत, पशु-पक्षी भी योग-भावना में लगे रहते थे । (तत्थ तिरच्छानगतापि सतिपट्टानमनसिकारयुत्ता ।)

बुद्धकाल में कुरुजनपद में किसी विहार के निर्माण नहीं हुआ था । तथागत मथुरा के गुन्दावन (वृन्दावन ?) विहार से यमुना के किनारे-किनारे चलकर कुरुजनपद में पहुँचे थे । और जहाँ कहीं भी निवास किया था, नगर से बाहर उद्यानों या वृक्षों के नीचे ही । कम्मासदम्म नगर में मागन्दिश ब्राह्मण रहता था । उसने अपनी रूपवती कन्या का विवाह भगवान् बुद्ध से करना चाहा था, जिसे उपदेश देते हुए तथागत ने कहा था :—

दिस्वान तण्हं अरतिं रगं च,
नाहोसि छन्दो अपि मेथुनस्मि ।

किमेविदं मुत्तकरीसपुण्णं,
पादापि नं सम्फुसितुं न इच्छे ॥

अर्थात् तृष्णा, अरति और रगा को देखकर भी मैथुन की इच्छा नहीं हुई । मल-मूत्र से भरा हुआ यह शरीर क्या है ? इसे पैरों से भी छूना नहीं चाहता ।

पीछे मागन्दिश की कन्या का विवाह वत्स-नरेश उदयन से हुआ और उसने अन्त समय तक तथागत तथा उनके भक्तों की अवहेलना करने का प्रयत्न किया था, जिसे उदयन ने मृत्यु-दण्ड दिया था ।

कालान्तर में दिल्ली प्रदेश में बौद्ध धर्म की बड़ी उन्नति हुई । वहाँ सहस्रों विहारों का निर्माण हुआ और कापाय वस्त्रों की ज्योति से वह प्रदेश एक दीर्घकाल तक प्रभासित रहा । उस प्रदेश से होकर गुजरनेवाले चीनी यात्रियों ने हमारी जानकारी के लिये सुन्दर वर्णन छोड़ा है । उनसे इस प्रदेश के सम्बन्ध में काफी जानकारी प्राप्त होती है । तथागत की कुरुजनपद की यात्रा बहुत ही प्रभावशाली थी, उसका उल्लेख आज भी पालि साहित्य में बड़े गौरव तथा सम्मान के साथ विद्यमान है । तथागत की करुणा दिल्लीवासियों पर सदा बनी रहे ।

सुजाता की खीर

सुश्री विद्यावती मालविका बी० ए०

तरुतल एक विरागी,

दूर भई छल बल अन्तक की,

मंजु ज्योत्सना जागी ।

स्नेहिल करुणा पा गौतम की,

जग की विपदा भागी ॥

धन्य हुए लख करुणामय को,

युगल नयन अनुरागी ।

हेम थाल में पायस लाई,

कुँवरि सुजात सुभागी ॥

शत शत वन्दन तव चरणों में,

राज विभव के त्यागी ॥



भारतीय जनजीवन में बौद्ध धर्म व्याप्त

१७ सितम्बर को सारनाथ के मूलगन्धकुटी विहार में अनागारिक धर्मपालजी की जन्म-जयन्ती महाबोधि कालेज के प्रिंसिपल श्री बालेश्वर प्रसाद के सभापतित्व में मनायी गयी। भिक्षु संघरत्न के स्वागत भाषण तथा छात्रों के मंगलगान के उपरान्त भिक्षु धर्मरक्षित, श्री जगन्नाथ उपाध्याय, भदन्त सोमश्री महास्थविर और श्री भास्करनाथ मिश्र के भाषण हुए।

वक्ताओं ने अनागारिक धर्मपाल के कार्यों पर प्रकाश डालते हुए उन्हें तथा उनकी शिष्या श्रीमती मेरी फोस्टर को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

इन दोनों व्यक्तियों का जन्म १७ सितम्बर को ही हुआ था, जिनके सहयोग एवं प्रयत्न से महाबोधि सभा की स्थापना हुई तथा विभिन्न देशों में इसके केन्द्र स्थापित हुए।

भिक्षु धर्मरक्षित ने भाषण में कहा कि सम्प्रति भारतीय-जन-जीवन में बौद्ध धर्म व्याप्त है। वह हमारे जीवन में इस प्रकार परिव्याप्त है, जिसे हम अलग करके नहीं बता सकते। ग्रामों में देवी-देवताओं की मूर्तियाँ तक इससे अछूती नहीं। बौद्ध धर्म पड़ोसी देशों के साथ मैत्री बन्धन का एक बड़ा महत्वपूर्ण साधन है। इसी के बल पर एशिया का पूर्वार्द्ध भाग भारत का परम मित्र है और सदा मित्र बना रहेगा। भारत तो उन देशों के महागुरु बुद्ध की जन्मभूमि है।

आपने कहा कि भारत सरकार की ओर से २५०० वीं बुद्ध जयन्ती के अवसर पर जो कार्य किये गये उनका प्रभाव बौद्ध देशों पर बहुत पड़ा है। इस महत्वपूर्ण कार्य को पड़ोसी बौद्ध देश कभी विस्मृत नहीं कर सकते।

छात्रों के प्रतियोगितात्मक भाषणोपरान्त सभापति का भाषण हुआ। तदुपरान्त श्री शासनश्री महास्थविर ने धन्यवाद दिया।

दिन में सारनाथ तथा वाराणसी के सभी भिक्षुओं को महाबोधि सभा की ओर से भोजन-दान दिया गया। रात्रि में सूत्रपाठ तथा प्रदीप जलाये गये।

सारनाथ में राज्यपाल—गत ७ सितम्बर को सायंकाल ४॥ बजे उत्तरप्रदेश के राज्यपाल श्री वी० वी० गिरि अपने परिवार के साथ सारनाथ आए। महाबोधि सभा की ओर से आपका स्वागत किया गया। भिक्षु संघरत्न ने आपको कुछ ग्रन्थ भेंट किए और भदन्त शासनश्री महास्थविर ने एक बुद्धमूर्ति आपकी माता को प्रदान किया। श्री गिरि ने मूलगन्ध-कुटी विहार में धूप-दीप से बुद्ध-पूजा की और सारनाथ के सभी दर्शनीय स्थानों को देखा।

प्रवारणोत्सव—८ अक्टूबर को वाराणसी के मल-दहिया स्थित नवीन बर्मी बौद्ध विहार में वर्षावास की समाप्ति पर भिक्षुओं ने प्रवारणा की। सारनाथ और वाराणसी के १५ भिक्षु उसमें सम्मिलित हुए थे। सारनाथ से सम्मिलित होने के लिए भदन्त शासनश्री महास्थविर और भिक्षु धर्मरक्षित गए थे। विहाराध्यक्ष भदन्त नन्दवंश महास्थविर ने सारी व्यवस्था की थी। इस विहार में चार वर्ष से प्रवारणोत्सव होता आता है।

प्रातःकाल बुद्ध-पूजा हुई। दोपहर में भिक्षुओं को भोजन-दान दिया गया और सायंकाल प्रवारणा के पश्चात् प्रदीप-पूजा की गई।

बुद्धगया में प्रवारणा—बुद्धगया में भी महाबोधि सभा की ओर से ८ अक्टूबर को प्रवारणा हुई। भिक्षु

नन्दसार ने सारा प्रबन्ध किया था। उस दिन भिक्षुओं को भोजन-दान, बुद्ध-पूजा, धर्मोपदेश आदि कार्यक्रम विधिवत् सम्पन्न हुए। रात्रि में प्रदीप जलाये गए।

चन्द्रकेतु में बौद्ध अवशेष प्राप्त—कलकत्ते से २३ मील दूर २४ परगना के जिला में बेराचम्पा के पास चन्द्रकेतुगढ़ की खोदाई में अनेक महत्वपूर्ण प्राचीन बौद्ध अवशेष मिले हैं, जो मौर्य तथा गुप्त शासन काल के मध्य के बताये जाते हैं।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के आशुतोष संग्रहालय की ओर से जो खोज की गयी है, उससे पता चलता है कि दो हजार वर्ष पहले बंगाल के तटवर्ती प्रदेश में अनेक शहर और बन्दरगाह थे। संग्रहालय की ओर से पिछले दो-तीन वर्षों में काफी खोदाई की गयी। इस खोदाई में कलकत्ता शहर के आसपास पचास मील के घेरे में कोई आधा दर्जन शहर के अवशेष मिले हैं।

सबसे पहले १९४८ में और बाद में १९५० में चन्द्रकेतुगढ़ के पास खोदाई की गयी और इससे पता चला कि वहाँ पर कोई प्राचीन गढ़ था, जिसकी दीवार कहीं-कहीं ३० फुट ऊँची थीं। इस स्थान पर जो अवशेष मिले हैं, उनमें चाँदी के अति प्राचीन सिक्के, मिट्टी के सिक्के, जिनपर ब्राह्मी लिपि में कुछ लिखा हुआ है, चीनी मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े, शराब के प्याले, मौर्य, शुंग और कुशन काल की मिट्टी की सुन्दर मूर्तियाँ, जिनमें हाथी, घोड़े तथा बकरे जाते हैं, ऐसे छोटे-छोटे रथ, शुंग काल के छोटे-छोटे रथ, शुंग काल के छोटे-छोटे पथरों पर खुदे स्त्री-पुरुषों के चित्र आदि मुख्य हैं। इसके अलावा गुप्त काल की एक दुर्लभ सुवर्णमुद्रा भी मिली है, जिस पर चन्द्रगुप्त प्रथम तथा कुमारदेवी के विवाह का चित्र खुदा हुआ है। इसी खोदाई में ईसापूर्व दूसरी शताब्दी का मिट्टी का एक अद्वितीय सूर्य-रथ भी मिला है।

इन वस्तुओं के साथ ही लाल बलुआ पत्थर की बुद्ध की एक बैठी हुई प्रतिमा मिली है, जो ईसापूर्व दूसरी शताब्दी की प्रतीत होती है। इस प्रकार की प्रतिमाएँ उस समय मथुरा के शिल्पकार बनाते थे।

वहाँ पर मिट्टी की एक स्त्री-मूर्ति मिली है जिसकी रचना एकदम आधुनिक है। इस प्रकार की केश-रचना-

वाली मौर्यकालीन मूर्तियाँ पटना, हस्तिनापुर और ताम्रलुक की खोदाई में मिली थीं। इन सब चीजों के अलावा असंख्य सिक्के मिले हैं। इन सिक्कों पर खुदे लेख पढ़े जाने के बाद उस समय बंगाल में ईसा के पहले और बाद में विद्याधरी नदी के तीर पर जो सभ्यता फली-फूली थी, उसका पता लगाया जा सकेगा।

रूस में बौद्ध मन्दिर—सोवियत संघ के एक एशियाई गणराज्य में एक बौद्ध मन्दिर की खोदाई करने पर वहाँ भगवान् बुद्ध तथा बोधिसत्व की पूर्णाकार मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। यह सूचना एक वक्तव्य में दी गई, जो ११ सितम्बर को डा० रामसुभग सिंह के एक प्रश्न के उत्तर में लोकसभा में सदन के पटल पर प्रस्तुत किया गया।

उस वक्तव्य में, जो सास्को स्थित भारतीय हूतावास द्वारा प्रेषित सूचना पर आधारित है, कहा गया—कि गिज गणराज्य के युद्धस्थल क्षेत्र में दो बौद्ध मन्दिर प्राप्त हुए हैं जो ७ वीं एवं ८ वीं शताब्दी के हैं। पहले मन्दिर की खोदाई १९५३ में सास्को विश्वविद्यालय के पुरातत्व विभाग के रीडर श्री एल० आर० बवाले सोव ने की थी। दूसरा मन्दिर जो बहुत संक्षिप्त काल तक रहा, और ८ वीं शताब्दी में नष्ट कर दिया गया था, श्री एल० एफ ज़्यावलिन के नेतृत्व में खोदाया गया। यह खोदाई-कार्य इस वर्ष के अन्त तक समाप्त हो जाने की सम्भावना है। यह मन्दिर कच्ची ईंटों तथा लोदों का बना हुआ है, जो स्थानीय तौर पर पस्खा कहलाता है। ये मन्दिर विलकुल उसी ढंग के बने हैं, जिस प्रकार के अफगानिस्तान और पूर्वी तुर्किस्तान में बने हुए हैं। दूसरे मन्दिर में बुद्ध और बोधिसत्व की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। मूर्तियों के चेहरे लाल-नीले रंग से रंगे हैं।

महाबोधि विद्यापरिषद् की बैठक—६ अक्टूबर को प्रातःकाल सारनाथ के मूलगन्धकुटी विहार पुस्तकालय में महाबोधि विद्यापरिषद् की प्रबन्धकारिणी समिति की बैठक श्री जी० सी० लाल संयुक्त सचिव, नियोजन विभाग, उत्तर प्रदेश के सभापतित्व में हुई। महाबोधि सभा के प्रधान मंत्री श्री देवप्रियवलि सिंह भी उक्त बैठक में सम्मिलित हुए थे।

श्री थेराट सारनाथ में—पूर्वी मण्डल के केन्द्रीय

बौद्ध-जगत

१५१

ताम-
अलावा
व पदे
र बाद
ली थी,
एशि-
ने पर
ूर्तियाँ
ो ११
उत्तर
।

गावास
गिज
हुए हैं
र की
रातत्व
थी।
८ वीं
याव-
इस
यह
, जो
कुल
और
और
हाल-

तूबर
तका-
मेति
ोजन
मेधि
वैठक

दीय

प्रधान सैनिक कमांडर श्री एस० पी०पी० थेराट सपरिवार ७ अक्टूबर को सारनाथ आए। आपने सारनाथ के दर्शनीय स्थानों का निरीक्षण कर लोक सहायक सेना के शिक्षण शिविरका भी निरीक्षण किया। भदन्त शासनश्री महास्थविर तथा भिक्षु धर्मरक्षित से थोड़ी देर तक बातें कर यहाँ से रवाना हो गए। उक्त अवसर पर जिले के सभी कर्मचारी उपस्थित थे।

मूलगन्ध कुटी विहार का वार्षिकोत्सव—
आगामी ७ नवम्बर को मूलगन्ध कुटी विहार सारनाथ का २६ वाँ वार्षिकोत्सव मध्यप्रदेश के मुख्य मंत्री डा० कैलास नाथ काटजू के सभापतित्व में मनाया जायेगा।

८ नवम्बर को महाबोधि कालेज का वार्षिकोत्सव भी सायं-काल सम्पन्न होगा। उक्त अवसर पर विभिन्न कार्य-क्रम रखे गए हैं।

महाबोधि सभा की बैठक-आगामी १ दिसम्बर को कलकत्ता में भारतीय महाबोधि सभा की संचालिका समिति की बैठक होगी।

कोरिया और चीन की अलभ्य वस्तुएँ प्राप्त—

कोरिया और चीन की लगभग एक लाख मूल्य की अलभ्य वस्तुएँ महाबोधि सभा को प्राप्त हुई हैं। इनमें दुर्लभ चित्र, ग्रन्थ और कलाकृतियाँ हैं। ये वस्तुएँ बुद्ध जयन्ती के अवसर पर प्रदर्शनी के निमित्त उक्त देशों से भारत आई थीं। इस समय बम्बई के बहुजन विहार में सारी वस्तुएँ रखी गई हैं, जो यथाशीघ्र सारनाथ लाई जायेंगी।

आगरा में अशोक विजयादशमी—आगरा के बौद्धों ने ३ अक्टूबर को बाबा साहब डा० अम्बेडकर का

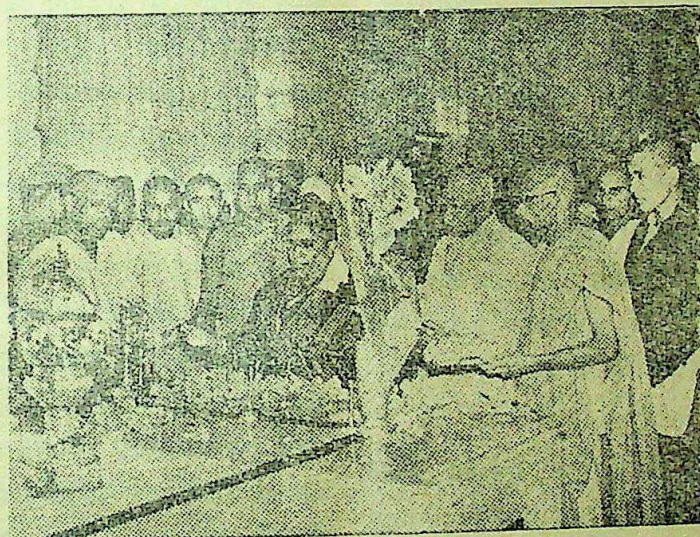
दीक्षा-दिवस तथा अशोक विजयादशमी बड़ी धूमधाम से मनाया। समारोह में लगभग ५० हजार नर-नारियों ने भाग लिया।

समारोह का सभापतित्व श्रीमणेर कौण्डिन्य ने किया। उक्त अवसर पर श्री सोहनलाल शास्त्री अध्यक्ष, भारतीय बौद्ध महासभा (दिल्ली) एवं श्री शंकरानन्द शास्त्री के प्रभावशाली भाषण हुए। आगरा कालेज के दर्शन-शास्त्र के अध्यक्ष डा० वृजगोपाल तिवारी का मधुर कविता-पाठ हुआ। तत्पश्चात् आगरा के प्रमुख कीर्तन मण्डली का कीर्तन, गायन तथा स्थानीय बौद्ध-नाटक-मण्डल द्वारा शिक्षा-प्रद धर्म सम्बन्धी नाटक का प्रदर्शन किया गया,

जिसको उपस्थित नर-नारियों ने सारी रात जागकर उत्साहपूर्वक देखा।

कार्यवाहिका समिति की पाँचों उप समितियों के अध्यक्षों का प्रबन्ध तथा समाज सेवा-दल का सेवाकार्य भी अत्यन्त सराहनीय रहा।

बौद्ध नगर, चक्की-पाट आगरा में सायं-काल ५ बजे से ८ बजे तक शरदपूर्णिमा दिवस (भिक्षुओं का



राज्यपाल श्री गिरि मूलगन्ध कुटी विहार में पूजा करते हुए।
दायें से—लामा थुस्तोव, भिक्षु संघरत्न, राज्यपाल श्री गिरि, श्रीमती गिरि, भिक्षु सोमश्री, लामा छेवांग, भिक्षु धर्मरक्षित और श्री शासनश्री महास्थविर।

वर्षावास समाप्ति दिवस) मनाया गया। समारोह का सभापतित्व श्रीमणेर कौण्डिन्य ने किया। ७॥ बजे से ८॥ बजे तक धम्मपद का पाठ हुआ, जिसको सुनने के लिए लगभग ५०० स्त्री-पुरुष आए थे। धर्म-देशना के अन्दर भन्ते ने बुद्ध-समाज के दान एवं शील पर प्रकाश डाला। इसके उपरान्त पूजनीय भन्ते को भारतीय बौद्ध महासभा, आगरा की ओर से एक चीवर दान दिया गया और सभी उपासकों ने सामूहिक भोजन किया, जो धर्म एवं समाज की एकता

का द्योतक है। तत्पश्चात् पंचशील ग्रहण के साथ आयोजन की समाप्ति हुई।

बुद्धगया में ८ लाख से बुद्ध मन्दिर बनेगा— ज्ञात हुआ है कि स्याम सरकार शीघ्र ही बुद्धगया में ८ लाख रुपये की लागत से एक बुद्ध मन्दिर बनवाने का विचार कर रही है। इसी मास स्याम से दो इञ्जीनियर यहाँ आए थे और उन्होंने सर्वेक्षण-कार्य समाप्त करके स्वदेश के लिए प्रस्थान किया। यह भी ज्ञात हुआ है कि स्याम सरकार कुशीनगर में भी एक भिक्षु-आवास बनाने के सम्बन्ध में योजना बना रही है।

बुद्धगया में धर्मपाल जयन्ती— १७ सितम्बर को बुद्धगया में महाबोधि सभा की ओर से अनागारिक धर्मपालजी की जन्मजयन्ती मनाई गई। भिक्षु एम० नन्दसार ने भिक्षुओं को भोजन-दान दिया। सायंकाल मन्दिर में प्रदीप-पूजा की और लोगों को धर्मपालजी का जीवन-चरित बतलाया।

नागपुर प्रदेश में धर्मप्रचार—श्रामणेर मेधङ्कर सारनाथ से नागपुर जाने के पश्चात् ग्राम-ग्राम में घूमकर धर्मप्रचार कर रहे हैं। लोगों में फैले अन्धविश्वासों एवं अनुचित कार्यों में परिवर्तन कराने के लिए वे प्रयत्नशील हैं।

समाचार प्राप्त हुआ है कि उधर कुछ धूर्तलोग बौद्धों को बहकाने का कार्य कर रहे हैं, उन्हें श्रामणेर मेधङ्कर ठीक कर रहे हैं और लोगों को उनसे दूर रहने के लिए सतर्क कर रहे हैं।

मेरठ जिले में धर्म प्रचार—१८ सितम्बर को मेरठ जिलान्तर्गत सीकरी खुर्द ग्राम में श्रामणेर कात्यायन के सभापतित्व में एक बौद्ध धर्म-प्रचार सभा हुई। पञ्चशील ग्रहण के उपरान्त 'श्रमजीवी आर्थिक सुधार संघ' का चौथा वार्षिकोत्सव भी मनाया गया। उ० अवसर पर श्रामणेर कात्यायन के धर्मोपदेश सुनने के लिए काफी संख्या में लोग आए थे। मिष्टान्न वितरण के उपरान्त सभा समाप्त हुई।

लंका के लिए रवाना—गतमास में भारतीय बौद्ध-महासभा सोलापुर की ओर से भिक्षु परमशान्ति और श्राम-

णेर उपाली लंका के लिए रवाना हो गए। आप लोग लंका में रहकर बुद्ध-वचन त्रिपिटक का अध्ययन करेंगे।

लखनऊ-निवासी श्रामणेर विमलतिष्ठ भी इस समय लंका गए हुए हैं और कोलम्बो में रहकर त्रिपिटक का अध्ययन कर रहे हैं।

नागपुर में बौद्ध परिषद् की बैठक—२ अक्टूबर को नागपुर में दीक्षा मैदान में बौद्धपरिषद् की बैठक हुई।

इस वर्ष दीक्षामैदान में भीड़ पिछले वर्ष से कई गुना अधिक बढ़ गई थी। महिलाओं के बैठने का मैदान पूर्ण रूप से भरा हुआ था। भीड़ के कारण लोग धूप, गर्मी और प्यास से आकुल हो रहे थे। जनता उत्साहवश बाबा साहब और भगवान् बुद्ध के नारों से आकाश को गुंजित कर रही थी। मंच पर जो बौद्ध रंग (पँच रँगें वस्त्रों) से सुसज्जित था, सबसे आगे भिक्षुगण जिसमें प्रमुख वृद्धतम श्री चन्द्रमणि महास्थविर, जिनके द्वारा ही गतवर्ष बाबा साहब दीक्षित हुए थे, भिक्षु आनन्द कौसल्यायन, भिक्षु प्रज्ञानन्द, भिक्षु पञ्जासिरी, भिक्षु धर्मधर तथा अन्य भिक्षुगण विराजमान थे। महाबोधि सभा के मंत्री श्री देवप्रिय वल्लिंह भी उपस्थित थे।

सर्वप्रथम श्री यशवंत राव अम्बेडकर ने भगवान् बुद्ध और बाबा साहब के चित्रों पर पुष्पमालायें अर्पित करते हुए नतमस्तक हो वंदना की। पुनः भिक्षुओं तथा नेताओं को नागपुर की अनेक संस्थाओं द्वारा पुष्पमालायें भेंट की गईं।

वालिकाओं द्वारा प्रार्थना के पश्चात् ज्यों ही ८३ वर्ष के वृद्ध श्री चन्द्रमणि महास्थविर उस अपार जन-समूह को त्रिशरण एवं पंचशील देने के लिए उठे कि जनता के हर्ष का ठिकाना न रहा। पाँच मिनट के जयजयकार के पश्चात् जनता निस्तब्ध हो गई। वातावरण समुद्र के समान बिल्कुल शांत हो गया। त्रिशरण और पंचशील के मंत्रों का एक साथ ही सम्पूर्ण नर-नारियों ने उच्चारण किया।

त्रिशरण एवं पंचशील के पश्चात् सर्वसम्मति से श्री यशवन्त राव अम्बेडकर भारतीय बौद्ध महासभा के अध्यक्ष निर्वाचित किए गए। अध्यक्ष पद से बोलते हुए उन्होंने कहा कि हमारी लड़ाई स्वाभिमान की रक्षा की

बौद्ध-जगत्

१५३

लड़ाई है। नव बौद्धों पर जो कुछ हो रहा है, उसका उत्तर उन्हें सदाचरण से देना चाहिए।

बौद्धों की ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहा, जो बौद्ध राजनीति में भाग लेना चाहते हैं, मगर उसमें मानवीय अधिकारों की लड़ाई और मनुष्यता का ध्यान रखें।

धर्मप्रचार का कार्य करनेवाले अपने में मिशनरी स्प्रिट की भावना रखते हुए कार्य करें।

एक प्रस्ताव द्वारा सरकार से माँग की गई कि जहाँ बाबा साहब डा० अम्बेडकर ने अपने लाखों साथियों के साथ दीक्षा ली थी, उसे भा० बौद्ध महासभा को डा० अम्बेडकर का स्मारक बनवाने के लिए दान कर दिया जाय।

परिषद ने एक प्रस्ताव में नव-बौद्धों पर सवणों द्वारा अत्याचार होने की शिकायत करते हुए भारत सरकार से एक जाँच आयोग नियुक्त करने की माँग की।

एक अन्य प्रस्ताव में नव-बौद्धों की शैक्षणिक एवं आर्थिक सुविधायें वापस ले लेने पर (जो उन्हें परिगणित जाति के होने से मिलती थीं) भारत सरकार तथा राज्य सरकारों की निन्दा करते हुए माँग की गई कि ये सुविधाएँ चालू रखने के लिए संविधान में संशोधन किया जाय।

परिगणित जाति संघ को भंग कर 'भारतीय लोकसत्ता' (रिपब्लिकन पार्टी आफ इण्डिया) की स्थापना की गई, जिसके अध्यक्ष श्री एन० शिवराज एम० पी० निर्वाचित हुए। इस पार्टी में सभी लोग सम्मिलित हो सकते हैं।

बौद्ध धर्म का प्रचार करुणा के बल पर—भारतीय बौद्ध महासभा, आगरा के तत्वावधान में श्री राहुल सांकृत्यायन का सार्वजनिक प्रवचन, बुद्ध विहार, (बौद्ध नगर आगरा) में हुआ। प्रारम्भ में उन्होंने देश एवं विदेश के विहारों के सुन्दर-सुन्दर स्थानों पर होने का वर्णन करते हुए, इस बुद्ध विहार के रमणीक स्थान की सराहना की। उन्होंने बतलाया कि देश में बौद्धों की सामग्री हीरे और जवाहरातों से भी बहुमूल्य भरी पड़ी है। गौतम बुद्ध को भी लोग पहले एक जापानी देवता समझते थे। अजन्ता की विश्वविख्यात गुफाओं को भी

पहले जापानवालों की गुफाएँ समझते थे। आज तक बौद्धों की असंख्य सामग्री को कोई अपना कहनेवाला भारत में नहीं था। अब तक जो लोग बौद्ध हुए उनके वस्त्र उनके साथ बौद्ध नहीं हुए, और उनके मरने के बाद बौद्ध धर्म भी समाप्त हो जाता था। बौद्ध संस्कृति को एक ऐसी जाति की जरूरत थी जो उसे अपना कह कर पुकारती। 'बाबा साहब चतुर निकले' उन्होंने बौद्धधर्म का नाद फूँक कर बौद्धों को सहज ही में उन हीरों और जवाहरातों का अधिकारी बना दिया जिसका अब तक मूर्खता से तिरस्कार किया जाता था। आज अजन्ता, साँची और ऐलौरा सब कुछ बौद्धों की हैं, जिसका उन्हें गर्व होना चाहिए। बाबा साहब की स्मृति करते हुए उन्होंने कहा कि उन्होंने सिर्फ दो वर्ष जीने की कामना की थी। "दो वर्ष में मैं भारत में, पाँच करोड़ बौद्ध बना दूँगा।" किन्तु वे अपने धर्मपरिवर्तन के उपरान्त दो माह से अधिक न जी सके। फिर भी यह सब उनके व्यक्तित्व का प्रभाव है कि आज बौद्ध धर्म जनधर्म बनता जा रहा है।

बौद्धधर्म की विशेषताओं को बतलाते हुए उन्होंने कहा कि यही एक धर्म है जो प्रेम और करुणा पर आधारित है। बाबा साहब ने बाईस वर्ष तक यही सोचा था। बौद्धधर्म ही भारतीय संस्कृति में प्रमुख स्थान रखता है, इसमें ऊँच नीच का भेद नहीं है। जो संघ में ज्येष्ठ होता है वही पूजनीय है, यह विश्व के समस्त धर्मों में बुद्धिवादी है, अर्थात् मानवधर्म है। विदेशों में भगवान् बुद्ध के लिए कितनी श्रद्धा है इसका वर्णन करते हुए—राहुल जी ने बतलाया कि कुछ दिन पूर्व मैं लद्दाख गया था। वहाँ पर एक मरणोन्मुख वृद्धा ने बोध-गया में अगला जन्म लेने की कामना की थी। जापान का वर्णन करते हुए उन्होंने बतलाया कि जहाँ हम ठहरे थे, एक तरुणी ने अपने लम्बे-लम्बे बालों को काट कर हमें यह कहते हुए दिया था कि उन्हें 'बुद्धगया की भूमि में गाड़ देना। यही हाल तिब्बत, चीन और लंका का है। यह सब इसलिए कि विदेशों में 'बौद्धधर्म का प्रचार विशाल करुणा और प्रेम के बल पर हुआ था।

ईश्वर के सम्बन्ध में राहुल जी ने बतलाया कि हम लोगों ने बचपन से ही ईश्वर का नाम सुना है इस-

लिए ईश्वर पर हमें विश्वास हो जाता है। लेकिन जिन्होंने कभी ईश्वर को सुना ही नहीं उन्हें पता तक नहीं है। जिस प्रकार कि हम बचपन में यह सुन लेते हैं कि अमुक स्थान पर भूत है, फिर हम कितने ही बड़े क्यों न हो जायें अंधेरे में उस स्थान पर अवश्य भूत का ध्यान आ जाता है। फिर भगवान् से अच्छा तो भूत है, जिसे देखने और बतानेवाले मिल जाते हैं। अन्त में बाबा साहब की असाधारण प्रतिभा का वर्णन करते हुए उन्होंने बतलाया कि यह हर्ष का विषय है, कि आज २५०० वर्ष पुराना बौद्ध-धर्म अपनी जन्मभूमि में फिर उन्नति कर रहा है।

बौद्धों को मिटाना सहज नहीं—७ अक्टूबर को लखनऊ में आश्विन पूर्णिमा के अवसर पर मनाये जाने वाले उत्सव में, गौतम बुद्ध मार्ग पर स्थित बौद्ध मन्दिर में भाषण करते हुए महाबोधि सभा के प्रधान मंत्री श्री देवप्रिय बलिसिंह ने कहा—

“बौद्धों के लिए यह दिन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसी दिन से बौद्ध कालीन युग में बौद्ध-भिक्षु वर्षावास समाप्त करके, जनसाधारण में धर्मप्रचारार्थ निकल पड़ते थे।

भगवान् बुद्ध ने जो शिक्षायें दी हैं उन पर चलना-उनका पालन करना और दूसरों को उनपर चलने का उपदेश करना हमारा परम कर्तव्य है।

हम सारे बौद्ध समाज को एक कुटुम्ब की भाँति मिल-जुल कर रहना चाहिए। एक दूसरे के दुख-सुख में शामिल होना, एक दूसरे की सहायता करना चाहिए। मैत्री, करुणा, समता और वन्द्यत्व पर अपने जीवन को आधारित रखने और पंचशील का पालन करने से, हम बहुजनहिताय और बहुजनसुखाय के उद्देश्य को आसानी से पूर्ण कर सकते हैं। जैसा कि भगवान् बुद्ध ने वज्रियों को उपदेश करके कहा था। उसी प्रकार यदि लोगों ने शील का पालन किया, बराबर एक जगह इकट्ठे होते रहे, अपनी ध्येयपूर्ति के काम में आलस नहीं किया, परस्पर विरोधी नहीं बने, भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं को अपने में धारण करते रहे, तो उनकी सफलता निश्चय होकर रहेगी।”

बरेली में धर्म-दीक्षा—१८ सितम्बर को बरेली के

कटरा चाँद खाँ में नयी दिल्ली के ग्रामणेर राष्ट्रपाल द्वारा १८ व्यक्तियों ने बौद्धधर्म की दीक्षा ली।

वर्धा में चन्द्रमणि महास्थविर का प्रवचन— ५ अक्टूबर को वर्धा के बौद्धों की ओर से आयोजित लगभग आठ हजार नर-नारियों को उपदेश देते हुए भदन्त चन्द्रमणि महास्थविर ने कहा—

“हमारे शास्ता अगर आज दिन आँखों के सामने जीवित अवस्था में नहीं हैं तो क्या हुआ? उनके उपदेश ही हमारे शास्ता हैं और पाँच हजार वर्ष तक रहेंगे। आगे आनेवाले इन ढाई हजार वर्षों में बौद्ध-धर्म ही संसार का महान् धर्म होगा और इसी से दुनिया के कल्याण की सम्भावना की आशा है।

दुनिया के कल्याण के लिए ही बुद्ध पैदा होते हैं, उनका सुना जाना अति दुर्लभ है। पंचशील पालनकारी बौद्धों का होना भी कठिन है और अब तो मनुष्य का होना भी कठिन है।

भगवान् बुद्ध ने अनेकानेक जन्मों में बोधिसत्त्व बनने के बाद संसार की सुख भलाई और कल्याण के लिये जितना चिंतन किया, कष्ट सहे, त्याग और बलिदान किया, उतना हर कोई नहीं कर सकता। जितना सर्वश्रेष्ठ महा-पुरुष ने बोधिसत्त्व के रूप में अपने वदन के टुकड़े-टुकड़े काट दिये जाने पर भी अपने उद्देश्य को नहीं छोड़ा। जिसने संसार की उन्नति, भलाई और सुख के लिये अपने जीवन को ही दे दिया वह बुद्धावतार नहीं हो सकता।

पंचशील के रट लेने, त्रिशरण का पाठ मात्र करने से कोई सच्चा बौद्ध नहीं बन सकता। इसके लिये आवश्यकता है शील के पालन करने की और उस शील पालन में अगर जान भी चली जाय तो खुशी-खुशी उसे अर्पण कर देने की।

बाबा साहब के साथ पाँच लाख लोगों ने दीक्षा ली और अब तक बौद्धों की संख्या २ करोड़ की हो गई है। मगर इन २ करोड़ में से कितने लोग ऐसे तय्यार हुए हैं जिन्होंने कुछ समय के लिये या आजीवन गृह-त्याग कर धर्म-प्रचार के कार्य की जिम्मेदारी ली है। आवश्यकता तो इस बात की थी कि प्रति एक हजार पर एक होता, अगर ऐसा नहीं है तो एक लाख पर एक होना ही चाहिये।

तभी आपके कार्य में अच्छी गति आ सकती है। देखना यह है कितनी मातायें इस धर्म प्रचार के कार्य में अपने बच्चों को खुशी-खुशी देने के लिये तय्यार हैं।

बौद्ध दीक्षा लेने के बाद आपत्तियों से घबराना नहीं। उद्देश्य से विचलित होने की बात कभी भी मन में नहीं लानी चाहिये। यदि आपने शील का पालन किया, भगवान् बुद्ध के बताये मार्ग पर चलते रहे, आपके हृदय में उनकी सच्चाई का विश्वास जम गया, तो आपकी विजय अवश्य होगी; क्योंकि सूत के दिखावटी जनेऊ से तो आपके सूत्र में इतनी ताकत है कि न तो वह टूट सकता है न तोड़ा ही जा सकता है। इसलिये उस पाँच सूत्र (पंचशील) के जनेऊ को अपने हृदय में सच्चाई और मजबूती से धारण करके देखें, आपका अपना और सबका कल्याण होगा।

इस प्रकार बहुत ही सुन्दर उपदेशों द्वारा उन्होंने अपने भाषण को समाप्त किया। अन्त में भा० बौ० महा सभा, समता सैनिक दल इत्यादि की ओर से पुष्पमालायें भेंट की गईं एवं चीवर-दान दिया गया।

अनिच्छा वत संखारा !

यह लिखते हुए हमें दुःख का अनुभव हो रहा है कि निम्नलिखित तीन श्रद्धालु उपासक-उपासिकाएँ अब हमारे बीच नहीं रहीं। हम उनके परिवार के वियोग से सन्तप्त लोगों के प्रति अपनी संवेदना प्रकट करते हैं तथा उनके मंगल की कामना करते हैं—

श्रीमती सावित्री ठाकुर—इनका देहान्त ११ सितम्बर को दिल्ली में हो गया। ये वहाँ कस्तूरबा बालिका आश्रम में अध्यापन-कार्य करती थीं और सदा ही दिल्ली में होनेवाले बौद्ध उत्सवों में भाग लेती थीं। जिस समय

श्रीमती विजयालक्ष्मी मौद्गलिपुत्रा त्रिप्य की अस्थियाँ लेकर लन्दन से आई थीं, उस समय इन्होंने बहुत ही सराहनीय कार्य किया था।

सावित्री ठाकुर का जन्म १९२५ में पूर्वी पंजाब के एक क्षत्रिय परिवार में हुआ था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा कुलू में हुई थी, हाई स्कूल बड़ौदा महिला विद्यालय से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया था और जालन्धर के कन्या महाविद्यालय से बी. ए.। ये ६ वर्षों से दिल्ली में अध्यापन कार्य करती थीं। इनका विवाह बौद्धपद्धति से लाहुल के एक श्रद्धालु बौद्ध उपासक से बुद्धजयन्ती के ही दिन हुआ था। इनकी भगवान् बुद्ध एवं बौद्धधर्म के प्रति अगाध श्रद्धा थी।

श्रीमती शुभलक्ष्मी—आप का देहावसान २३ सितम्बर को ७३ वर्ष की अवस्था में पूर्वी नेपाल के भोजपुर नामक कस्बे में हो गया। आप बहुत श्रद्धालु उपासिका थीं। भिक्षुओं तथा अनागारिकाओं पर आप की बहुत श्रद्धा थी। अनागारिका सुशीला आप की ही पुत्री हैं और पुत्र हैं श्री छत्रमान। आप के देहावसान से नेपाल की एक महिला-विभूति उठ गई है।

बौद्धकप्तान—किन्नर (हिमाचल) प्रदेश के बौद्ध एस. पी. (कप्तान) की हृदयगति बन्द हो जाने से गत मास ३४ वर्ष की अवस्था में देहान्त हो गया। आप चिनी की सुश्री तारा कुमारी की बड़ी बहिन के पुत्र थे। आप कैलास की परिक्रमा करने गए थे। वहाँ से वापस आते समय मार्ग में अचानक हृदयगति बन्द हो गई! आप हिमाचल प्रदेश के बौद्धों के एकमात्र रक्षक और धार्मिक कार्यकर्ता भी थे। आप के देहावसान से वहाँ के बौद्ध अनाथ-से हो गए हैं।



नये प्रकाशन

बुद्ध-वचन (काव्य)—अनुवादक—सियारामशरण गुप्त । प्रकाशक—साहित्य-सदन, चिरगाँव, झाँसी । पृष्ठ संख्या १६०, सजिल्द मूल्य २॥) ।

यह धम्मपद का समश्लोकी हिन्दी अनुवाद है । इसका प्रकाशन भगवान् बुद्ध की २५०० वीं महापरिनिर्वाण-जयन्ती के शुभावसर पर हुआ है । हमें यहाँ धम्मपद का परिचय नहीं देना है । पाठक धम्मपद से भली प्रकार परिचित ही नहीं, प्रत्युत उसके अध्येता हैं । यह धम्मपद का ठीक वैसा ही अनुवाद है, जैसा कि पालि धम्मपद गाथाओं में है । यही कारण है कि गाथाओं के अनुवाद में तुकों का विचार न कर प्राचीन गाथाओं का ही अनुसरण किया गया है और इसे अष्टुप् आदि छन्दों की भाँति अनुक्रान्त समश्लोकी ढंग से प्रस्तुत किया गया है । कहीं-कहीं पालि के शब्द भी ज्यों के त्यों दे दिये गये हैं, जिससे मूल अर्थ छूटने न पाये । पालि से हिन्दी में अनुवाद-कार्य उतना सरल नहीं है । ढाई हजार वर्ष प्राचीन भाषा में व्यक्त भावों को तब तक ठीक-ठीक नहीं स्पष्ट किया जा सकता, जब तक कि मूलपाठों एवं शब्दों का अनुसरण न किया जाय, इसलिए विद्वान् एवं सम्मान्य कवि श्री गुप्तजी ने अपने इस अनुवाद-कार्य में उक्त पद्धति को अपनाया है । यथा—

मनःपूर्वग हैं धर्म, मनःश्रेष्ठ, मनोमय ।

सदोष-मन बोले वा करे जो, दुःख हैं लगे—

गाड़ी के बैल के पीछे चलते चक्र-से उसे ॥१॥

मनःपूर्वग हैं धर्म, मनःश्रेष्ठ, मनोमय ।

प्रसन्न-मन बोले वा करे जो, सुख सर्वदा—

उसके अनुगामी हैं, छाया ज्यों अनपायिनी ॥२॥

यहाँ मनःपूर्वग, मनःश्रेष्ठ, मनोमय और अनपायिनी पालि के मनोपुद्बङ्गमा, मनोसेट्ठा, मनोमया, और अनपायिनी के संस्कृत रूप मात्र कर दिए गए हैं, क्योंकि ऐसा किए बिना मूलअर्थ स्पष्ट नहीं किया जा सकता था । किन्तु पाठकों को ऐसा न समझना चाहिए कि ऐसे शब्दों को यों ही दुरुह रूप में रखकर पिंड लुड़ा लिया गया है, गुप्त जी ने ग्रन्थ के अन्त में परिशिष्ट में उन सभी शब्दों की सरल व्याख्या कर दी है और अर्थ तथा व्याख्या में बौद्ध दृष्टिकोण को ही अपनाया है ।

मैंने प्रारम्भ से अन्त तक बुद्ध-वचन को इस दृष्टि से भी पढ़ लिया है कि कहीं कोई पारिभाषिक अथवा अर्थ-सम्बन्धी भूल तो नहीं रह गई है, श्री गुप्त जी का ऐसा आग्रह भी था, किन्तु आश्चर्य की बात है कि मुझे ऐसा एक भी शब्द या पद नहीं मिला, जहाँ मैं चिह्न लगा सकूँ । ऐसी उपयोगी कृति के लिए बौद्ध-जगत् श्री गुप्त जी का आभार मानता है और मैं बौद्धों की ओर से ही नहीं, प्रत्युत हिन्दी जगत् की ओर से भी उन्हें साधुवाद देता हूँ । बुद्ध-वचन का सर्वत्र प्रचार होना चाहिए ।

बुद्ध-वचन के पढ़ने से वही आनन्द प्राप्त होता है, जो किसी पालि भाषा के जानकार को पालिधम्मपद के पढ़ने से प्राप्त होता है । इस ग्रन्थ में सम्बन्धित व्यक्तियों एवं स्थानों के नाम भी दे दिए गए हैं । साथ ही गाथा-संख्याएँ भी । अनुवादक का वक्तव्य भी—जो १९ पृष्ठ है—पढ़ने योग्य है । यहाँ कुछ गाथाओं के समश्लोकी अनुवाद दिए जा रहे हैं—

न जटाहि न गोत्तेहि न जच्चा होति ब्राह्मणो ।
यस्मि सच्चञ्च धम्मो च सो सुची सो च ब्राह्मणो ॥

[नहीं ब्राह्मण है कोई जटा से जाति-गोत्र से ।

सत्य को धर्म को धारे शुचि ब्राह्मण है वही ॥]

सव्वपापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा ।
सच्चित्तपरियोदपनं एतं बुद्धान सासनं ॥

[व्याग सम्पूर्ण पापों का, पुण्यों की उपसम्पदा ।

सर्वदा चित्त-संशुद्धि बुद्धों का यह धर्म है ॥]

अत्ता हि अत्तनो नाथो को हि नाथो परो सिया ।
अत्तनाव सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं ॥

[अपना नाथ आत्मा ही, अन्य नाथ कहाँ भला ।

निज की दान्ति के द्वारा लभ्य दुर्लभ नाथ है ॥]

नहि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं ।

अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो ॥

[वैर से वैर की शान्ति होती नहीं कदापि है ।

शान्ति निर्वैर से ही है, यही धर्म सनातन ॥]

ग्रन्थ का मुद्रण आदि सब सुन्दर है ।

—भिक्षु धर्मरक्षित

संस्कृतान्ध्र हिन्दी बोधिनी (प्रथम भाग) —

लेखक—श्री कर्ण वीरनागेश्वर राव । प्रकाशक—आन्ध्र भारती प्रकाशन मंदिर, वेटपालेम (गुण्टूर) आन्ध्र प्रदेश । पृष्ठ संख्या १६०, मूल्य १॥) ।

इस पुस्तक में आन्ध्र भाषा के माध्यम से संस्कृत और हिन्दी के शिक्षण का प्रयत्न किया गया है । लेखक ने बहुत ही परिश्रम करके तीनों भाषाओं के सन्निवेश से इस पुस्तक को लिखा है । जो लोग हिन्दी से संस्कृत और आन्ध्र भाषा (तेलुगु) पढ़ना चाहें अथवा आन्ध्र के माध्यम से अन्य भाषाओं को, उनके लिए इससे सुन्दर पुस्तक अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है । यह पुस्तक अपने ढङ्ग की निराली है । यदि ऐसी पुस्तकें सभी प्रान्तीय भाषाओं की प्रस्तुत कर दी जायें तो हिन्दी और संस्कृत का ही नहीं, उन प्रान्तीय भाषाओं का भी बहुत कल्याण हो । विद्वान् लेखक हिन्दी, संस्कृत और आन्ध्र के मर्मज्ञ हैं । उनकी इस कृति का सब लोग स्वागत करेंगे ही । यह सभी भारतीय पुस्तकालयों में रखने योग्य है और इसकी आवश्यकता है कि हिन्दी भाषा-भाषी इसके माध्यम से आन्ध्र भी सीखें, जिससे पारस्परिक मैत्री बड़े और आन्ध्र भाषा के प्राचीन ग्रन्थों के अध्ययन की ओर अभिरुचि उत्पन्न हो ।

इस पुस्तक में वर्णमाला और अकारादि के उपरान्त २१ पाठ दिए गये हैं । प्रत्येक पाठ में संस्कृत, हिन्दी और आन्ध्र भाषा के शब्द एवं वाक्य दिये गये हैं । अन्त में अभ्यास भी दिए गए हैं । अभ्यास तीनों भाषाओं में अलग-अलग हैं । इस पुस्तक में पाठ-सूची का अभाव मात्र खटकता है । ग्रन्थ के अन्त में यदि एक शब्द-सूची भी दी गई होती, तो बहुत उत्तम होता । —भिन्नु धर्मरक्षित

बुद्धिज्म फॉर एवेरी वॉडी (अंग्रेजी)—लेखक—भिन्नु जगदीश काश्यप । प्रकाशक—याज्ञवल्क्य, ममता प्रेस, कबीरचौरा, वाराणसी । पृष्ठसंख्या ११३, सजिल्द मूल्य १॥) ।

यह पुस्तक छः परिच्छेदों में विभक्त है । पहले परिच्छेद में अनित्य, दुःख, अनात्म का सुन्दर ढंग से वर्णन है । दूसरे में चार आर्य-सत्य पर प्रकाश डाला गया है और प्रज्ञा, शील, समाधि को बतलाया गया है । तीसरे परिच्छेद

में आर्य अष्टांगिक मार्ग का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है । चौथे परिच्छेद में कर्म और पुनर्जन्म पर बौद्ध दृष्टिकोण से प्रकाश डाला गया है । पाँचवें परिच्छेद में प्रतीत्य समुत्पाद और छठे परिच्छेद में बौद्धधर्म के विभिन्न विषयों पर चर्चा की गई है । यह पुस्तक एक प्रकार से बौद्धधर्म की सार-पुस्तिका के रूप में प्रस्तुत की गई है । इसके विद्वान् लेखक का नाममात्र ही पुस्तक-परिचय के लिए पर्याप्त है । अंग्रेजी जाननेवाले सभी लोगों को इसे पढ़ना चाहिए और अपने पास रखना चाहिए । विद्वान् लेखक की यह अमूल्य कृति बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसी आशा है ।

वाजे पायलिया के बुँधरू—लेखक—कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' । प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी । पृष्ठ २६६, सजिल्द मूल्य ४) ।

इस ग्रन्थ में लेखक के समय-समय पर लिखे ३८ लेखों का संग्रह है । जिस प्रकार ये लेख विभिन्न समयों में लिखे गए हैं, वैसे ही इनके विषय भी भिन्न-भिन्न हैं । लेखों के शीर्षक आकर्षक और भाषा फड़कती हुई है । ग्रन्थ को हाथ में लेने के पश्चात् इसे बिना समाप्त किए छोड़ने का मन नहीं होता । लेखक की लेखनी में वह शक्ति है, जो पाठक को अपने में भुला लेती है । यह ग्रन्थ मनबहलाव के लिए कहानी सदृश आनन्ददायक है । छपाई-सफाई सब सुन्दर है ।

शरत् की सूक्तियाँ—संकलनकर्ता—रामप्रकाश जैन । प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी । पृष्ठसंख्या ११२, सजिल्द मूल्य २) ।

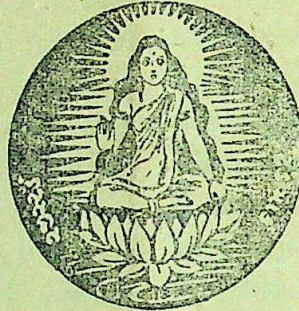
इस ग्रन्थ में शरत् साहित्य से संकलित सूक्तियाँ दी गई हैं । उन्हें १९ भागों में विषयानुसार विभक्त किया गया है । कुछ सूक्तियाँ स्फुट तौर पर भी दी गई हैं, जिनके विषय विभिन्न हैं । ये सूक्तियाँ धर्म, समाज, साहित्य आदि के सम्बन्ध में हैं और इनका चयन शरत् की बहुरूपी रचनाओं से हुआ है । संकलनकर्ता ने बड़े ही मनोयोग एवं परिश्रम से इन सूक्तियों को एकत्र किया है । और विषयानुकूल उनका सम्पादन किया है । संकलनकर्ता श्री रामप्रकाश जैन का उत्साह सराहनीय है । ग्रन्थ संग्रहणीय एवं मननीय है ।

—अनन्त

रामतीर्थ ब्राह्मी तैल

(रजिस्टर्ड) स्पेशल नं० १ (औषधिगुक्त)

इसके इस्तेमाल से दिमाग में वृद्धि होती है। इससे बाल घुँघराले तथा काले होकर चमकीले होते हैं। गंजापन दूर कर नये बालों की वृद्धि होती है। स्मरण शक्ति तथा नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। गाढ़ी निद्रा आती है। प्रत्येक ऋतु में स्त्री-पुरुषों तथा बालकों को अपूर्व लाभ मिलता है।



बड़ी शीशी के लिए मय डाकखर्च और पैकिंग ५॥॥ का मनिआर्डर भेजें और ३॥॥ का छोटी के लिए। वी० पी० नहीं भेजी जाती।

श्री रामतीर्थ योगाश्रम

उमेशधाम, विन्सेन्ट, स्ट्रीट नं० २

दादर (सेण्ट्रल रेलवे) बम्बई १४

टेलिग्राम-प्राणायाम, दादर, बम्बई

फोन—६२८९९

BOOKS ON BUDDHISM

PALI TEXTS IN ROMAN SCRIPT

	Rs.	As.		Rs.	As.
Madhurattha Vilasni	14	2	Kankavitarani Vol. VII by		
The Digha Nikaya Vol. I by Davids and			D. Maskell	25	14
Carpenter.	17	2	Manoratha-Purani by H. Krpp,	16	9
Do. Vol. II Do.	17	2	Hatthavanagallaviharavamsa by		
Do. Vol. III by J. E.			E, E. Godakumbura	7	0
Carpenter	17	2	Udana by Paul Steithal	7	0
The Majjima-Nikaya I by V. Trenckner	21	14	Visuddhijanavilasini name		
Do. II by Lord Chalmers	21	14	Apadanatthakatha by C.E.		
Do. III Do.	24	6	Godakumbura	42	8
Sutta Nipatta by D. Anderson			Paramattha Dipani Theragatha		
H. Smith	12	0	Atthakatha by F.L. Woddward		
Itivuttaka by Ernest Windisch	9	6	Vol. II	30	0
The Anguttara Nikaya by Rev.			Saddhammappakasini by C.V.		
R. Morris	18	6	Joshi	14	0
Culvamsa Voi. II by W. Geiger	20	0	Petakopadesa by Arabinda		
Samanrtapasadika py Takakusu			Barua	15	0
& M. Nagai	14	0	Namarupapapiccheda by A. P.		
			Buddhadatta	5	3
			The Padas of Thera and Theri		
			Gatho	5	0

Apply:—

Maha Bodhi Book Agency,

4-A, Bankim Chatterjee street, Calcutta—12

संयुक्त निकाय

दो भागों में

अनुवादक

भिक्षु जगदीश काश्यप

भिक्षु धर्मरक्षित

सुत्त-पिटक के तीसरे ग्रन्थ संयुक्त निकाय का हिन्दी अनुवाद दो भागों में प्रकाशित हो गया है। पृष्ठ संख्या क्रमशः ५२८ तथा ४४२। दोनों भागों का मूल्य क्रमशः ७) और ६) है।

बुद्धघोषकृत बौद्धयोग का उत्कृष्ट ग्रन्थ

विशुद्धि मार्ग

भिक्षु धर्मरक्षित

द्वारा हिन्दी में अनूदित

‘विशुद्धि मार्ग’ पालि-साहित्य का एक अमूल्य ग्रन्थ-रत्न है। इसमें बौद्ध-दर्शन की विवेचनात्मक गवेषणा के साथ योगाभ्यास की प्रारम्भिक अवस्था से लेकर सिद्धि तक की सारी विधियाँ सुन्दर ढंग से समझाई गई हैं। इस ग्रन्थ में बौद्धधर्म का कोई भी ऐसा अंग नहीं है जो अछूता हो। एक प्रकार से इसे बौद्धधर्म का विश्वकोश कहा जा सकता है। यद्यपि विशुद्धिमार्ग प्रधानतः योग-ग्रन्थ है, तथापि बौद्धधर्म का जैसा सुन्दर निरूपण इसमें किया गया है, वैसा अन्य किसी भी ग्रन्थ में प्राप्त नहीं है। योगियों के लिए तो यह गुरु के समान निर्देश करने वाला महोपकारी ग्रन्थ है।

यह दो भागों में मुद्रित हो गया है। पहले भाग में समाधि निर्देश पर्यन्त ११ परिच्छेद हैं और दूसरे में शेष। पहला भाग ४३० पृष्ठों का है और दूसरा ३५०। दोनों के मूल्य क्रमशः १०) और ८) हैं। ग्रन्थ का आकार रायल है।

प्राप्तिस्थान :—

व्यवस्थापक, महाबोधि पुस्तक भण्डार,
सारनाथ, वाराणसी।

धम्मपद

भिक्षु धर्मरक्षित द्वारा अनूदित धम्मपद का गुटका आकार में परिवर्द्धित एवं संशोधित द्वितीय संस्करण प्रकाशित हो गया। छपाई बहुत ही आकर्षक एवं मनोहारी है। यही एक ऐसा ग्रन्थ है जिसे जीवन भर साथ रखा जा सकता है। अनुवाद की भाषा सरल एवं सुबोध है। इस नवीन संस्करण का मूल्य केवल १) है।

व्यवस्थापक, ममताप्रकाशन, कवीरचौरा, वाराणसी

वार्षिक)

५)

मध्यम मार्ग

{ एक अंक
=)

साप्ताहिक

यह बौद्धधर्म का सामाजिक, राजनैतिक एवं उद्बोधक साप्ताहिक पत्र है। इसमें बौद्धजगत् के ताजे समाचारों के साथ धर्म सम्बन्धी लेख भी रहते हैं।

प्राप्तिस्थान—

व्यवस्थापक, बुद्धविहार, रिसालदार पार्क, लखनऊ

भारत सरकार से “रजिस्टर्ड”

सफेद दाग का शत्रु

इस रामबाण दवा से स्त्री, पुरुष, बालकों के शरीर पर के दाग ऐसे निकल जाते हैं कि वह कहाँ थे इसका पता नहीं लगता। हजारों ने अनुभव करके प्रशंसापत्र भेजे हैं। मूल्य ५) रु०। डा० व्यय १।) रु०। अधिक विवरण मुफ्त मँगवाकर देखिये।

वैद्य के० आर० बोरकर (ध० दू०)

मु० पो० मंगरूलपीर, जि० अकोला (विदर्भ)

सफेद कोढ़ के दाग

यह ऐसे निकल जाते हैं कि वे कहाँ थे इसका पता भी नहीं लगता।

भगवान जी जैन पाचोरा (खानदेश) की पुत्री का कोढ़ अच्छा हो गया और आपने हमको ५१) रु० इनाम दिया। ऐसे कई इनाम मिले और कोढ़ के हजारों लोग अच्छे हो गये। मू० ५) रु० डा० ख० १५ आ०, व्यवस्थापक मुफ्त मंगावें। नक्कालों से सावधान रहें।

वैद्य वी० आर० बोरकर, आयुर्वेद भवन (ध० दू०)

मु० पो० मंगरूलपीर, जि० अकोला (विदर्भ)

हिन्दी में बौद्धधर्म की पुस्तकें

विशुद्धिमार्ग (पहला भाग)—भिक्षु धर्मरक्षित	१०)	तुलसी के तीन पात—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन	१)
विशुद्धिमार्ग (दूसरा भाग) "	८)	बौद्ध-चर्या-विधि—भिक्षु धर्मरक्षित	1=)
दीधनिकाय—राहुल सांकृत्यायन	६)	थेरी गाथायें—भरतसिंह उपाध्याय	१11)
मज्झिम निकाय—"	८)	बुद्ध और बौद्ध साधक—"	१11)
विनय पिटक "	८)	धम्मपद—राहुल सांकृत्यायन	१11)
संयुक्त निकाय—भिक्षु ज० काश्यप और भिक्षु धर्मरक्षित प्रथम भाग ७), द्वितीय भाग	६)	बुद्धधर्म के उपदेश—भिक्षु धर्मरक्षित	२)
बोधिचर्यावतार—शान्तिभिक्षु	१०)	बौद्ध विभूतियाँ—"	१)
धम्मपद (कथाओं के साथ)—भिक्षु धर्मरक्षित	२11)	लंका-यात्रा—"	१11)
धम्मपद (गुटका)—"	१)	नेपाल-यात्रा—"	४11)
तथागत-हृदय "	111)	कुशीनगर का इतिहास "	२11)
प्रथम बुद्ध-सन्देश "	11)	पालि-पाठ-माला—"	१)
धम्मपद—अवधकिशोर नारायण	१11)	जातिभेद और बुद्ध—"	11)
सुत्तनिपात—भिक्षु धर्मरत्न	३)	तेलकटाह गाथा—"	1=)
सुद्धकपाठ—भिक्षु धर्मरत्न	1)	बौद्ध-शिशु-बोध—"	1)
पालि महाव्याकरण—भिक्षु जगदीश काश्यप	६)	कुशीनगर-दिग्दर्शन—"	1)
थेर गाथा—भिक्षु धर्मरत्न	३)	तथागत का प्रथम उपदेश—"	1)
भगवान् बुद्ध की शिक्षा—देवमिन्न धर्मपाल	1=)	सारनाथ-दिग्दर्शन—"	1)
महाकारुणिक तथागत—वेदराज प्रसाद	111)	बुद्धकालीन भारत का भौगोलिक परिचय	11)
बुद्धचर्या—राहुल सांकृत्यायन	८)	पालि जातकावली—बटुकनाथ शर्मा	२1)
तथागत—आनन्द कौसल्यायन	१11)	बुद्ध-वचन—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन	11)
बुद्ध और उनके अनुचर—"	१111)	बुद्धवचनमृत—भिक्षु शासनश्री	१)
बौद्धचर्या पद्धति—बोधानन्द महास्थविर	१111)	नालन्दा विश्वविद्यालय—चन्द्रिका सिंह उपासक	1=)
सरलपालि शिक्षा—भिक्षु सद्भातिस्स	१11)	श्रद्धा के फूल—(कहानी-संग्रह) कुमारी विद्या	1=)
बौद्ध कहानियाँ—व्यथित हृदय	१11)	बुद्ध-अर्चना—(कविता)	1=)
सारनाथ-वाराणसी—भिक्षु धर्मरक्षित	१11)	पूर्णमा—(कविता)	1=)
इतिवृत्तक—भिक्षु धर्मरक्षित	111)	कामना—(कविता)	1=)
बौद्धयोगी के पत्र—भिक्षु धर्मरक्षित	१)	आदर्श बौद्ध महिलायें	१11)
भगवान् हमारे गौतम बुद्ध—प्रो० मनोरंजनप्रसाद-	१)	नारी-हृदय	१11)
कपिलवस्तु-लुम्बिनी-दिग्द०—श्रीविजय श्रीवास्तव	111)	बुद्ध-चरितावली—(सचित्र)	111)
		महामानव बुद्ध—राहुल सांकृत्यायन	२11)

नागरी लिपि में पालि ग्रन्थ

जातकट्टक—भिक्षु धर्मरक्षित	९)	महावंसो—भिक्षु धर्मरक्षित	111)
विसुद्धिमगदीपिका—धर्मानन्द कौशाम्बी	३11)	धम्मचक्कपवत्तन सुत्त—"	111)
नवनीत टीका—"	२11)	तेलकटाहगाथा—"	111)
अभिधम्मसत्थसंग्रहो—"	२11)	सुत्तनिपात—भिक्षु धर्मरत्न	३11)
पालि पाठ माला—भिक्षु धर्मरक्षित	१)	सुद्धकपाठ—"	111)
चरिया-पिटक—"	१1)	सिङ्गल सुत्त—भिक्षु कित्तिमा	111)

सूचीपत्र के लिए ३) के टिकट के साथ लिखें।

प्राप्ति स्थान :—

महाबोधि पुस्तक भण्डार, सारनाथ, बनारस।

प्रकाशक—भिक्षु एम० संघरत्न, महाबोधि सभा, सारनाथ, वाराणसी (बनारस)

मुद्रक—ओमप्रकाश कपूर, जैनमण्डल लिमिटेड, कबीरचौग, वाराणसी (बनारस)। ५२२०-१४

धर्मदूत



महाबोधि सभा का मासिक मुख-पत्र

नवम्बर

वर्ष २२

अंक

एक अंक का

वार्षिक ४

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१. बुद्ध-वचनामृत—'निन्दा करनेवाले पर कोप न करें'	१५९
२. डाक्टर भीमराव अम्बेडकर—श्री शंकरानन्द शास्त्री	१६०
३. शुद्धि—बोधिसत्त्व	१६४
४. उरुवेला (कविता)—सुश्री विद्यावती मालविका	१६५
५. बुद्ध-सन्देश—भिक्षु राष्ट्रपाल	१६६
६. सिद्धार्थ का हंसप्रेम (कविता)—श्री मधुकर साहित्यरत्न	१६८
७. मद्यपान (एकांकी)—श्री कृष्णचन्द्र शेंदरे 'हृदयेश'	१६९
८. बुद्ध-दूत (कविता)—श्री श्री० एस्० 'विकल'	१७२
९. गांधीजी पर बौद्ध-दर्शन का प्रभाव—श्री अनन्त	१७३
१०. आचार्य धर्मगुप्त—श्री सुमन चारुधायन	१७५
११. नये प्रकाशन	१७६
१२. बौद्ध-जगत्	१७९

'धर्मदूत' के नियम—

- १—"धर्मदूत" भारतीय महाबोधि सभा का हिन्दी मासिक मुखपत्र है। "धर्मदूत" प्रति पूर्णिमा को प्रकाशित होता है।
- २—"धर्मदूत" के ग्राहक किसी भी मास से बनाये जा सकेंगे।
- ३—पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक-संख्या एवं पूरा पता लिखना चाहिये, ताकि पत्रिका के पहुँचने में गड़बड़ी न हो।
- ४—लेख, कविता, समालोचनार्थ पुस्तकें (दो प्रतियाँ) और बदले के पत्र सम्पादक के नाम तथा प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र और चन्दा व्यवस्थापक के नाम पर भेजना चाहिये।
- ५—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने या न करने, घटाने-बढ़ाने या संशोधन करने का अधिकार सम्पादक को है। बिना डाकखर्च भेजे अप्रकाशित कविता या लेख लौटाये न जा सकेंगे। जिस अङ्क में जिनका लेख या कविता छपेगी वह अङ्क उनके पास भेज दिया जायगा।
- ६—"धर्मदूत" में केवल बौद्धधर्म, कला, संस्कृति, साहित्य, पुरातत्त्व आदि सम्बन्धी लेख ही प्रकाशित किये जा सकेंगे।
- ७—किसी लेखक द्वारा प्रकटित मत के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।
- ८—"धर्मदूत" का वार्षिक मूल्य ४) और भाजीवन ५०) है।

व्यवस्थापक

"धर्मदूत" सारनाथ, वाराणसी

धर्मदूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सार्तं । देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्जे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवल परिपुणं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ । महावग्ग, (विनय-पिटक)

‘भिक्खुओ ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिये, लोक पर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो । भिक्खुओ ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्था में कल्याणकारक धर्म का उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो ।’

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष २२

सारनाथ,

नवम्बर

बु० सं० २५०१

ई० सं० १९५७

अङ्क ७

बुद्ध-वचनानामृत

‘निन्दा करनेवाले पर कोप न करें’

एक समय भगवान् पाँच सौ भिक्षुओं के बड़े संघ के साथ राजगृह और नालन्दा के बीच लम्बे रास्ते पर जा रहे थे । सुप्रिय परिव्राजक भी अपने शिष्य ब्रह्मदत्त माणवक के साथ जा रहा था । उस समय सुप्रिय अनेक प्रकार से बुद्ध, धर्म और संघ की निन्दा कर रहा था, किन्तु ब्रह्मदत्त अनेक प्रकार से बुद्ध, धर्म और संघ की प्रशंसा कर रहा था । इस प्रकार वे आचार्य और शिष्य दोनों परस्पर अत्यन्त विरुद्ध पक्ष का प्रतिपादन करते भगवान् और भिक्षुसंघके पीछे पीछे जा रहे थे । भिक्षुओं ने दूसरे दिन भगवान् से यह बात कही । भगवान् बोले—“भिक्खुओ ! यदि कोई मेरी निन्दा करे या धर्म की निन्दा करे या संघ की निन्दा करे तो तुम लोगों को न उससे वैर, न असंतोष और न चित्त में कोप करना चाहिए । यदि तुम लोग उससे कुपित या खिन्न हो जाओगे तो इसमें तुम्हारी ही हानि है । तुम लोगों को सच और झूठ बात का पूरा पता लगाना चाहिए—क्या यह ठीक नहीं है, यह असत् है, यह बात हम लोगों में नहीं है, बिल्कुल नहीं है । ऐसे ही अपनी प्रशंसा से भी तुम लोगों को न आनन्दित, न प्रसन्न और न हर्षोत्फुल्ल हो जाना चाहिए । आनन्दित, प्रसन्न, और हर्षोत्फुल्ल होने में तुम्हारी ही हानि है । तुम लोगों को सच और झूठ बात का पता लगाना चाहिए—यह बात ठीक है, सत्य और यथार्थ है, यह बात हम लोगों में है ।”

—दीघ निकाय १. १

डाक्टर भीमराव अम्बेडकर

श्री शंकरानन्द शास्त्री

हम गरीबों, निहत्थों और मजदूरों के जीवनदाता परम पूज्य बाबा साहब अम्बेडकर जी ६ दिसम्बर ५६ को हमें बिलखते हुए छोड़कर सदा के लिए हमसे ओझल हो गए। अभी-अभी की बात है। कुछ ही महीनों की कहानी है। ऐसा मालूम पड़ता है कि बाबा साहब का ४० वर्षों का तूफानी ऐतिहासिक जीवन स्वप्न बनता जा रहा है। वे बोलते कम थे। साल में एक बार भारत के किसी कोने से उनकी सिंह गर्जना सुनाई देती थी। उससे सभी का ढाढ़स बँधा रहता था और सोचते थे कि हमारा प्यारा बाबा कहीं भी रहे, कैसे भी रहे परन्तु हमारे निर्जीव जीवन में सदा ही स्फूर्ति देता रहे। युय-युग जीता रहे। “होनी” को कोई “अनहोनी” नहीं कर सकता। यह एक जीता-जागता हुआ और रुढ़ि सत्य है। जन्म मरण शरीर का धर्म है। जो इस जगत में एक बार आया है वह एक न एक दिन जायगा भी। यह अटल सत्य है। अकाव्य तर्क है। इसलिए हमारे सर्वप्रिय बाबा इसके अपवाद कैसे हो सकते थे। इसलिए हम पतितों का उद्धारक, दुखितों का तारणहार, हम निर्जीवों का जीवन-दाता, हम अंधों का मार्गदर्शक, हम भूलों का भूल सुधारने वाले, दिन रात अथक हमारी भलाई की चिन्ता करनेवाले महान् कर्मयोगी, महान् वर्मठ तपस्वी, महान् न्यायपुजारी, समानता और भ्रातृत्व का महान् प्रचारक, मानवता का प्रेमी, करोड़ों अछूतों सत्तों की उम्मीदों का समुद्र, बाबा साहब आज से बारह माह पूर्व दिल्ली में अपने निवासस्थान पर सदा के लिए चिरनिद्रा में सो गये। इस महान् यात्रा करने के पूर्व का उनका सारा ही जीवन महत्वपूर्ण इतिहास है। उनके जीवन का हर क्षण घटनाओं से भरपूर है। उनका हर वह स्थान जहाँ से वे गुजरे हमारे लिए पवित्र तीर्थस्थान है। पूजनीय है। वैसा प्रकांड

पंडित और धुरंधर सदाचारी भगवान् बुद्ध के बाद न सुनने में आया और न पढ़ने में आया। आज से २५०० वर्ष पूर्व इसी धरती पर स्वार्थ, अन्याय और असमानता पर आधारित और राक्षसी प्रवृत्तिवाले ब्राह्मण धर्म से मानवता को छुटकारा दिलाने के लिए भगवान् तथागत का महान् पवित्र जन्म हुआ था और मानवमात्र के सुख के लिए चार आर्य सत्तों का प्रचार कर मनुष्य को अपना उद्धार अपने आप करने के लिए कहा था। उसी प्रकार बाबा साहब ने हम करोड़ों अछूतों और पिछड़ी जातियों के दुःख-दर्द की गहराई पर प्रकाश डालते हुए कहा कि जब तक हम में आत्म चिंतन, आत्म विश्वास, आत्म सम्मान, और आत्म संभय की भावना पैदा न होगी तब तक हमारा उद्धार न होगा। बाबा साहब का सारा जीवन-संघर्ष इन्हीं चार सत्तों के आचरण में गुजरा। उनका आत्मचिंतन महान् था। जो कुछ वे थे उसी प्रकार अपने सारे समाज को देखना चाहते थे। इसलिए उनका आत्मचिंतन समाज-चिंतन बन गया था। वे सोते-जागते, चलते-फिरते, खाते-पीते हर समय करोड़ों अछूतों-सत्तों के उद्धार के चिंतन में तल्लीन रहा करते थे। जन्म से अछूत होने के कारण उन्हें अपने बाल्यकाल में जो अमान-वीय अपमान सहना पड़ा था उसे वे जीवन भर नहीं भूले। बल्कि उसी अपने अपमान को सारे समाज का अपमान समझ कर उसे दूर करने के लिए सदा ही जूझते रहे। हमारी बीमारियों का इलाज जिस अनुपम ढंग से उन्होंने बतलाया उसीको स्वर्गीय महात्मा गांधी जी जैसे महान् संत राजनीतिज्ञ को भी मानना पड़ा। बाबा के चिंतन में जो गम्भीरता थी, वजन था, उसके सामने सभी को झुकना पड़ा। उनके चिन्तन का ढंग अनोखा था। उसमें पवित्रता थी। उसमें आत्मीयता थी। इसलिये

डा० भीमराव अम्बेडकर

१६१

क्या उनके शत्रु या मित्र सभी देर अवेर में उनके इस चिंतन के प्रशंसक बन गये थे। सभी धर्मों के गहरे परिशीलन और चिंतन के बाद लाखों अछूतों के साथ १४-१०-५६ को नागपुर में हिन्दू धर्म को त्यागकर भगवान् तथागत की शरण को अपनाते समय सभी अछूतों को आदेश दिया कि उस महान धर्म को वे अपनाकर अपना और आनेवाली संतानों का उद्धार करें। उनके इस महान और उनके जीवन की आखिरी घटना की सभी मुक्त कंठ से प्रशंसा कर रहे हैं। क्योंकि बौद्ध धर्म है जिसमें दूसरे के सहारे पर जीने की भावना नहीं है। आत्मोन्नति का सबसे बड़ा और सैकड़ों सालों से देश विदेशों में परखा हुआ यह धर्म है। उनकी इस पवित्र धर्म परिवर्तन के आदेश का पालन अछूत लाखों की संख्या में बौद्ध बनकर कर रहे हैं। उनके आत्म-चिन्तन का परिणाम है कि आज हम उन्नति की राह पर हैं। अत्मोद्धार के दरवाजे पर हैं। जब तक हम उनके पवित्र आत्म-चिन्तन की ज्वाला को जलाते रहेंगे तब तक आगे आगे बढ़ेंगे। हमारी राह को रोकने वालों को भुँह की खानी पड़ेगी और दुबारा हमें कोई भी गुलाम न बना सकेगा।

हमारे महान नेता का दूसरा सत्य था 'आत्म विश्वास'। हमारी गरीबी, दरिद्रता और हमारी असहायता का गहरा अनुभव और ज्ञान उन्हें था। यही कारण था कि जीवन में हिमालय पहाड़ जैसी विपत्तियों को हँसते-हँसते मुकाबला करते थे। अपने कर्तव्य पथ से एक रत्ती भर भी डिगना उन्हें ज्ञात न था। 'भय' उनके शब्द कोश में था ही नहीं। १७ दिसम्बर १९३२ की बात है। इस दिन ब्रिटिश प्रधान मंत्री ने तीन राउंडटेबल कान्फरेन्सों के परिणाम स्वरूप 'साम्प्रदायिक बटवारा' के नाम से एक ऐतिहासिक घोषणा की। इस घोषणानुसार अछूतों को

पृथक् राजनैतिक सत्ता मान कर उन्हें दो महत्वपूर्ण वोट देनेके अधिकार मिले। एक से स्वतंत्ररूप से अछूत प्रतिनिधि को चुनना और दूसरे से हिन्दुओं के प्रतिनिधियों को चुनना। ये अधिकार ऐसे थे कि अगर इन पर आचरण होता तो न आज अछूतपन रहता और न ही ब्राह्मणीराज्य ही रहता। आज यह तथागत की पवित्र भूमि अन्याय और शोषण से दूर रहती। फिर भी इसके विरुद्ध स्वर्गीय महात्मा गाँधी जी ने अपना आमरणव्रत १८ दिसम्बर १९३२ को यरवदा जेल में प्रारम्भ किया। गाँधी जी के इस उपवास से हिन्दुओं में



डा० भीमराव अम्बेडकर जिनका प्रथम वार्षिक स्मृति-दिवस ६ दिसम्बर को मनाया जायगा

बाबा साहब के न्याययुक्त संघर्षों के विरुद्ध काफी खलबली मची। इस तथाकथित उपवास के नाम पर हिन्दुओं के हर अखबार ने बाबा को कोसा। गाँधी जी अछूतों को हिन्दू धर्म से अलग मानकर राजनैतिक सत्ता देने के लिए तैयार न थे जबकि बाबा साहब के संघर्ष का मूल मंत्र था अछूतों का राजनैतिक पृथक् अस्तित्व गाँधी जी की भावनाओं से प्रेरित होकर हिन्दुओं के कई नव-जवानों ने बाबा को मार डालने की हजारों धमकियों के पत्र अपने खून से लिखकर भेजे। कइयों ने यहाँ तक लिखा कि अगर गाँधी जी मर गये तो बाबा को भी गाँधी जी की चिता पर ही जिन्दा जलायेंगे। इन धमकियों का उनपर कोई असर नहीं पड़ा। उनके

गम्भीर चिंतन और आत्म विश्वास में कोई भेद नहीं आया। गाँधी जी जैसे कट्टर संत-राजनीतिज्ञ को भी बाबा के आत्म विश्वास की दृढ़ता के सामने झुकना पड़ा और अछूतों के हित के लिए पूना पवट में अछूतों के राजनैतिक पृथक् अस्तित्व को माना, अछूतपन को १० साल में दूर करने का वायदा किया।

उनके संघर्ष का तीसरा सत्य था 'आत्म सम्मान'। अछूतों के अपमानित और तिरस्कृत जीवन पर बोलते

हुए रजागिरी में १९२४ में कहा 'आप लोगों की मुझाई हुई इन शक्लों को देखकर, और आपकी दर्दभरी कहा-नियों को सुनकर मेरा दिल रोता है। सदियों से, न जाने कब से इस अपमानपूर्ण और निर्लज्जपूर्ण जीवन को बिता रहे हैं। फिर भी इस असहायपूर्ण जीवन को बिताते हुए आप लोगों को लज्जा तक नहीं आती। गर्भ में ही क्यों नहीं मर गये। दुख, गरीबी और गुलामी के चित्र भी आप लोगों की इस दुरवस्था को देखकर शर्माते हैं। पृथ्वी के ऊपर भार क्यों बने हुए हैं। अच्छा होगा अगर सभी एक बार में जहर खाकर मर जायँ। अगर आप एक नये जीवन को अपना नहीं सकते और अपना पुनरुद्धार स्वयं नहीं कर सकते। हर एक का यह जन्म-सिद्ध अधिकार है कि उसे अच्छा खाना, पहिनने के लिए अच्छा कपड़ा और रहने के लिए जगह मिले। मन को पवित्र रखने के लिए अपने बौद्ध धर्म के नियमों का पालन करें। अगर सम्मानपूर्ण जीवन को बिताना चाहते हैं तो अपनी सहायता अपने आप करें। इसी में हम सबकी भलाई है।'।

यह था हमारे बाबा का कोमल हृदय और उनकी आत्म-सम्मान-भावना का प्रदर्शन। हमारी दीन-हीन अवस्था को देखकर उनका दिल रो उठता था। इस नार-कीय और अपमानित जीवन से ऊपर उठाने के लिए हममें आत्मसम्मान की भावनाओं को कूट-कूट कर भरने के लिए उस महान कर्मयोगी ने क्या कुछ नहीं किया। मानव का प्रफुल्लित जीवन का मूल मन्त्र है 'इज्जत या सम्मान'। जिसमें यह सम्मानपूर्वक रहने की भावना नहीं है उसे न नर कहते हैं न पशु। इसीलिए हमारे बाबा ने इस आत्मसम्मान की भावना को दुबारा जागृत कर हमारी खोई हुई सत्ता को वापस दिलाया।

चौथा महान सत्य था 'आत्म संयम'। 'संयम' बाबा के जीवन का महामन्त्र था। मनसा, वचसा और कर्म से वे महासंयमी थे। गम्भीर अध्ययनशील और प्रकाण्ड पण्डित होने पर भी वे मितभाषी थे। मृदु बोलते थे। जिस किसी को भी उन्मत्त ऐतिहासिक भाषणों को या उनके चरणों के समीप बैठकर उनके मुखारविन्द से कुछ सुनने का अवसर मिला है वे जानते हैं कि उनका हर

वाक्य किस प्रकार गम्भीरता से और संयम से ओतप्रोत होता था। इन्द्रिय निग्रह या ब्रह्मचर्य जीवन के वे जीते-जागते उदाहरण थे। इसी 'आत्म संयम' का परिणाम था कि केन्द्रीय सरकार में दो बार मन्त्री पदों पर रहने पर भी उनके संयम में कोई भेद न आया। १९४३ दिसम्बर की बात है। उस समय बाबा साहब केन्द्रीय सरकार में मजदूर मन्त्री थे। उनका एक मात्र पुत्र है, उनका नाम यशवन्त है। इन्हें कुछ ठेकेदारों ने फुसलाया और कहा कि ठेकेदारी में पचास प्रतिशत लाभ का भागी बने। यह बात बाबा से कही गई। इस पर आत्म संयम के देवता ने कहा 'यशवन्त भीमराव अम्बेडकर का लड़का है। वह मजदूर मन्त्री का लड़का नहीं है। अम्बेडकर के पास अपने लड़के के खाने के लिए काफी पैसा है।' इतनी बात कह कर तुरन्त भाई यशवन्त को अपने पास बुलाकर कहा कि वे ठेकेदारों के चक्कर में न पड़ें बल्कि तुरन्त ही दिल्ली छोड़ कर चले जाएँ। दूसरी ऐतिहासिक घटना है कि १९३५ में यवला (नासिक) में घोषणा की कि वे हिन्दू अवश्य पैदा हुए हैं परन्तु इस धर्म में कभी नहीं मरेंगे। इस घोषणा से मुसलमानों, इसाईयों और सिक्खों के मुँह में पानी भर आया। फिर क्या था सभी ने उन्हें खरीदने के लिए अपना जाल फैलाया। तब निजाम हैदराबाद ने करोड़ों साथियों के साथ मुसलमान बन जाने पर करोड़ों रुपयों देने का प्रलोभन दिया। इसके बाद महाराजा पटियाला ने सिक्ख बन जाने पर पटियाला स्टेट का प्रधान मंत्री बनाने के लिए कहा। इन दोनों प्रलोभनों का जवाब देते हुए बाबा ने कहा कि उनका संघर्ष निरीह और गरीब अछूतों को बेचकर अपना पेट भरने के लिए नहीं है बल्कि इन अछूतों को ऊँचा उठाकर हैदराबाद और पटियाला जैसी रियासतों के मालिक बनाना है। १६-४-१९४८ को लखनऊ में अपने ऐतिहासिक भाषण में कहा कि मैं कांग्रेसी मंत्रिमंडल में मन्त्री इसलिए नहीं बना हूँ कि मुझे कोई अपना स्वार्थ पूरा करना है अपितु अपने लोगों की स्वार्थ पूर्ति के लिए कांग्रेसी मंत्रिमंडल में शामिल हुआ हूँ। मन्त्री बनने से मैं अपने पथ से डिग नहीं सकता। मैं वह पत्थर हूँ, समुद्र के पानी में रहूँ या तालाब में कहीं गल नहीं

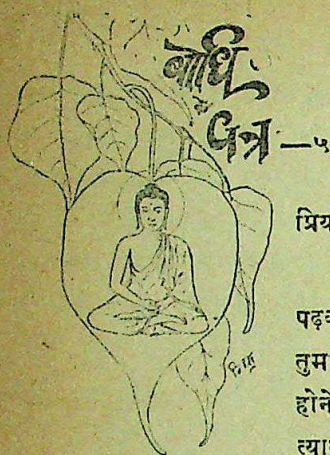
सकता। मैं अपने ध्येय की पूर्ति के लिए संघर्ष करता रहूँगा। इसलिए कोई भी मुझे गलत न समझे और न ही कोई अछूत कांग्रेस में शामिल हो।

१९५३ में कोलंबिया यूनिवर्सिटी ने अपने पुराने छात्र को सम्मानित करने के लिए बुलाया। क्योंकि यूनिवर्सिटी के अधिकारी अपने पुराने छात्र को दुनिया के आकाश में अछूतों के नेता और स्वतन्त्र भारत के संविधान के रचयिता के रूप में देखकर फूले नहीं समाते थे। बम्बई में जुहू हवाई अड्डे पर पत्रकारों के पूछने पर कि क्या वे अमेरिका में श्री नेहरू की विदेश नीति की समालोचना करेंगे? इस पर बाबा ने कहा कि वे पार्लियामेंटरिन हैं। इसलिए वे श्री नेहरू की विदेशनीति की निन्दा अपने देश में ही करेंगे। कोलंबिया पहुँचते ही अमेरिका यूनिवर्सिटी के तत्कालीन प्रधान ट्रूमैन ने बाबा को बुलाया। लेकिन इस पर बाबा ने ट्रूमैन को जवाब दिया कि वे अमेरिका यूनिवर्सिटी के निमन्त्रण पर आये हैं इसलिए अपने देश की नीति पर समालोचना करने नहीं आए हैं। १९४२ जुलाई की बात है। तब इस देश के वाइसराय लार्ड लिनलिथगो थे। बाबा साहब को एक्जेक्यूटिव कौन्सिलर बने हुए एक सप्ताह भी गुजरा न था। महात्मा गाँधी जी के नेतृत्व में देश अंग्रेजों को 'भारत छोड़ो' का अलिटमेटम दे चुका था। ४ अगस्त १९४२ को यह ऐतिहासिक आन्दोलन प्रारम्भ होना था। अगस्त के प्रथम सप्ताह में एक्जेक्यूटिव कौन्सिलरों की सभा में लार्ड लिनलिथगो ने चर्चिल के आदेश पर प्रस्ताव रखा कि महात्मा गाँधी जी आदि सभी नेताओं को पकड़ कर अंडमान भेज दिया

जाय। सर्वसम्मति की मुहर लगाने से पहले अन्याय और खतरनाक प्रस्ताव का विरोध करते हुए बाबा साहब ने कहा कि—महात्मा गाँधी जी, श्री नेहरू और इतर नेताओं ने जो 'भारत छोड़ो' का आन्दोलन प्रारम्भ किया है वह न्याययुक्त आन्दोलन है। हर गुलाम को विदेशी सत्ता से छुटकारा पाने का जन्मसिद्ध अधिकार है। इसलिए विदेशी राज्य से छुटकारा दिलाने के लिए संघर्ष करने वाले इन नेताओं को गिरफ्तारी के बाद अंडमान भेजने का विचार भी ब्रिटिश के नाम पर महान कलंक होगा। ब्रिटिश जनता पार्लियामेंटेरिन ढंग के राज्य की जननी है। इसलिए ऐसा कोई पग वे न उठाये जिससे पार्लियामेंटेरिन ढंग को धक्का लगे। इसी विरोध के स्वरूप चर्चिल सरकार ने मजबूरन गाँधी जी आदि देश के नेताओं को पूने में आगा खॉ भवन में और अहमदनगर के किले में रखा। बाबा साहब इस विरोध के फलस्वरूप चर्चिल सरकार के कोप-भाजन बने रहे। लेकिन इस कर्मठयोगी ने देश के हित को अपने समाज के हित से भी सबसे ऊँचा रखा।

इसी सर्वश्रेष्ठ देशभक्त, अछूतों के उद्धारक, बोधिसत्व की प्रथम वर्षी ६ दिसम्बर को है। हमारे बाबा साहब हमारे बीच में नहीं हैं। उन्हें सदा ही याद रखने का यही साधन है कि उनके महान गुणों को यानी आत्म चिन्तन, आत्म विश्वास, आत्म सम्मान और आत्म संयम की भावनाओं को हम सदा ही जीता-जागता हुआ रखें और उन पर आचरण करते रहें। इसीमें इस महान् देश, बौद्ध समाज और अछूतों-सछूतों की भलाई है।





शुद्धि

प्रिय उपासक,

तुम्हारा पत्र मिला।

पढ़कर प्रसन्नता हुई कि तुमने बाह्य-शुद्धि में पुण्य होने की मिथ्या-धारणा को त्याग दिया है। वास्तव में

मनुष्य अज्ञानवश बाह्य-शुद्धि से पुण्य मानते हैं। शुद्धि तो आध्यात्मिक होती है और उस शुद्धि का आधार केवल मानव चेतना है। हम बाहर से चाहे गन्दे क्यों न हों, यदि मन, राग, द्वेष और मोह से शुद्ध है, तो परम परिशुद्ध हैं। और यदि ऐसी बात नहीं, तो बाह्य-शुद्धि से आन्तरिक-शुद्धि अथवा पुण्य-प्राप्ति की धारणा निरी मूर्खता है। देखा जाता है कि हमारे देश में स्नान-शुद्धि, आहार-शुद्धि, जाति-शुद्धि, रक्त-शुद्धि आदि न जाने कितनी प्रकार की बाह्य-शुद्धियों में लोग पड़कर, उसी को परमधर्म मानकर मूलतत्त्व से अनभिज्ञ ही रह जाते हैं। उनका यह अन्धविश्वास उन्हें सदा संसार-चक्र में ही डाले रहता है।

क्या प्रातः-सायं अथवा सदा ही नदी में स्नान करने से पुण्य-प्राप्ति हो सकती है? गंगा, यमुना, सरस्वती आदि सरिताओं का जल मनुष्य-शरीर के बाह्य मल मात्र को शुद्ध कर सकता है, किन्तु राग, द्वेष और मोह के आन्तरिक मल को धोने की उसमें सामर्थ्य नहीं। जो लोग स्नान-शुद्धि में पुण्य मानते हैं उनकी अज्ञानता के प्रति हमें बड़ी दया आती है। वे बेचारे कितने भोले अन्ध-विश्वासी हैं जो ऐसी तर्क-विहीन, थोथी कल्पना के सहारे पंडे-पुजारियों के चक्कर में पड़कर एक डुबकी मात्र से ही अपने सारे पापों को धो डालने के जाल में फँस गये हैं। काशी, प्रयाग, गया, गंगासागर, हरिद्वार आदि स्थानों में जाकर नदी-स्नान करने से लेश मात्र भी पुण्य नहीं होता, पंडे-पुजारियों की पेट पूजा तथा पर्यटन भाग ही सिद्ध होता है। जो लोग त्रिकाल स्नान कर सदा पवित्र होने की भावना रखते हैं, यह भी उनकी अज्ञानता ही है। स्नान

करना उत्तम कार्य है, व्यक्ति को यथा-साध्य स्नान करना चाहिये, किन्तु स्नान करने से पुण्य होता है, ऐसी भावना मन में कभी नहीं आने देनी चाहिये।

कुछ लोग आहार-शुद्धि से पुण्य मानते हैं। अरवा-भुजिया और कच्चा-पक्का के मिथ्या विश्वास में पड़कर नाना प्रकार के कष्ट उठाते हैं। देखा गया है कि केवल फल और दूध पर रहने वाले तथा अपने हाथ से ही भोजन बना कर खाने वाले महानीच, असभ्य और दुराचारी होते हैं, किन्तु सबका बनाया तथा सबके हाथ का खाने वाला विश्व-विजयी, मारजित्, भगवान् बुद्ध जैसा महापुरुष होता है। आहार-शुद्धि की भावना कुछ ढाँगी, स्वार्थी लोगों की देन है, जिसमें साधारण जनता अन्धानुकरण करते फँसी हुई है।

कुछ लोग रक्त, जाति, गोत्र से शुद्धि मानते हैं। इस पर मुझे बहुत कुछ नहीं कहना है। तुमने तो लिखा ही है कि यह कैसी गँवारों की कल्पना है। कहीं रक्त, जाति, और गोत्र की शुद्धि से कुछ भी कल्याण होने को है? मैं तो समझता हूँ कि जब संसार भर के मानव इस मिथ्या-विश्वास को छोड़कर एक रक्त, जाति और गोत्र के हो जायेंगे, तब संसार ही एक अनुपम कुटुम्ब बन जायेगा और हम सभी एक परिवार के सदस्य होंगे, हमारी सारी पारस्परिक विपमतायें दूर हो जायेंगी, सारा संसार सुखी जीवन व्यतीत करेगा।

क्या तुमने कभी सोचा है कि रक्त, जाति और गोत्र की शुद्धि मानने वाले वास्तव में शुद्ध हैं? कदापि नहीं। अनादि काल से संसार की विभिन्न जातियों का सम्मिश्रण होता आ रहा है और होता रहेगा। शुद्धि का दावा करने वाले पहले से ही अशुद्ध हैं।

कुछ लोग शरीर में भस्म, कीचड़, धूल, चन्दन, गेरू आदि लपेटते हैं, कुछ लोग मिट्टी की वेदिका बना धूती रमा कड़ी भूमि पर सोते हैं। कुछ लोग जटाजूट रखते और कोपीन धारण करते हैं, कुछ लोग नंगे पैर चलते और कुछ

खड़ा पहनते हैं, कुछ लोग नंगे रहते और वस्त्र त्याग करते हैं, कुछ लोग सूर्य-नमस्कार, अग्नि-पूजा आदि करने में पुण्य मानते हैं, कुछ लोग गोव्रत, कुछ लोग कुक्कुर व्रत रहते हैं, कुछ लोग किसी व्यक्ति-विशेष का नाम मात्र जपते रहते हैं और उससे मुक्ति की कामना करते हैं, कुछ लोग एकादशी आदि व्रत रहते और उपवास करते हैं, कोई चन्द्रायण व्रत करते हैं, कोई देवताओं के वाहन बनते हैं; अपनी जीभ तक में काँटे चुभो देते हैं, नोकीली कीलों से जड़े हुए खड़ाऊँ पर चलते हैं, कुछ लोग अग्नि-परिमर्दन करते हैं और न जाने शुद्धि की भावना में पड़ कर क्या-क्या नहीं करते ! यह सब मिथ्या-धारणायें हैं । ऐसे अन्ध विश्वासों में तुम उपासकों को नहीं पड़ना चाहिये । इनसे न तो शुद्धि होती है और न मुक्ति ही । ये केवल शारीरिक तापन योग-मात्र हैं । जो मनुष्यों के अज्ञान के लक्षण हैं ।

भगवान् बुद्ध ने सदा इनसे दूर रहने की शिक्षा दी है । तुम्हें तथागत के इन वचनों का मनन करना चाहिए और जनसाधारण में प्रचार भी:—

किं ते जटाहि दुग्धेध ! किं ते अजिनसाटिया ।
अव्भन्तरं ते गहनं, बाहिरं परिमज्जसि ॥

हे दुर्बुद्धि ! जटाओं से तेरा क्या बनेगा, और मृगचर्म के पहनने से तेरा क्या होगा ? तेरा भीतर मन तो राग आदि मैलों से परिपूर्ण है, बाहर क्या धोता है ?

न जटाहि न गोत्तेहि न जच्चा होति ब्राह्मणो ।
यम्हि सच्चञ्च धम्मो च सो सुची सो च ब्राह्मणो ॥

न जटा से, न गोत्र से, न जाति से कोई पवित्र होता है, जिसमें सत्य और धर्म है, वही शुद्ध और पवित्र है ।

अत्तनाव कतं पापं अत्तना संकिलिस्सति ।
अत्तना अकतं पापं अत्तनाव विमुज्जति ।
सुद्धि असुद्धि पच्चत्तं नाज्जमज्जं विसोधये ॥

अपने से किया पाप अपने को ही मलिन करता है, अपने पाप न करे तो अपने ही शुद्ध रहता है, शुद्धि और अशुद्धि व्यक्ति की अपने कर्मों द्वारा होती है, दूसरा व्यक्ति दूसरे को शुद्ध नहीं कर सकता ।

बाहुकं अधिकक्कञ्च गयं सुन्दरिकामपि ।

सरस्सति पयागञ्च अथो बाहुमती नदि ॥

निच्चम्पि वालो पक्खन्तो कण्हकम्मो न सुज्जति ।
किं सुन्दरिका करिस्सति किं पयागो किं बाहुकानदी ॥
वेरिं कतकिव्विसं नरं ।

न हि नं सोधये पापकम्मिनं ॥

शुद्धस्स वे सदा फग्गू शुद्धस्सुपोसथो सदा ।
सुद्धस्स सुचिकम्मस्स सदा सम्पज्जते वतं ॥
इधेव सिनाहि ब्राह्मण ! सब्बभूतेसु करोहि खेमतं ।
सच्चे मुत्ता न भणसि सच्चे पाणं न हिससि ॥
सच्चे अदिन्नं नादियसि सद्धानो अमच्छरी ।
किं काहसि गयं गन्त्वा उदपानोपि ते गया ॥

बहुका, अधिकक्क, गया, सुन्दरिका, सरस्वती, प्रयाग और बाहुमती नदी में काले कर्मवला मूढ़ चाहे नित्य नहाये, किन्तु शुद्ध नहीं होगा । क्या करेगी सुन्दरिका, क्या करेगा प्रयाग, और क्या करेगी बाहुका नदी ? वे पापी और दुराचारी व्यक्ति को शुद्ध नहीं कर सकती । शुद्ध व्यक्ति के लिए सदा ही फलू है, शुद्ध के लिए सदा ही उपोसथ है । शुद्ध और पवित्र कर्मों के व्रत सदा ही पूरे होते रहते हैं । ब्राह्मण ! यहीं नहा । सारे प्राणियों का क्षेमकर । यदि तू झूठ नहीं बोलता, यदि प्राण नहीं मारता, यदि बिना दिये नहीं लेता और अर्द्धावान् कंजूसी रहित है, तो गया जाकर क्या करेगा ? छोटा जलाशय भी तेरे लिये गया है ।

हाँ, 'पालि व्याकरण' और 'विशुद्धि मार्ग' प्रकाशित हो गये हैं, उन्हें सारनाथ से मँगा लेना । तुम्हारे दूसरे प्रश्न का उत्तर अगले पत्र में भेज दूँगा । एक ही प्रश्न के उत्तर में पत्र इतना लम्बा हो गया । आज इतना ही बस ।

सारनाथ, वाराणसी

२-११-५७

शुभेच्छु—

बोधिसत्त्व

उरुवेला

सुश्री विद्यावती 'मालविका'

नभ में फैला स्वर्णिम पराग,
ओ उरुवेला फिर जाग जाग ।

हो चुका अरुण ऊषा अंचल,
विहगों ने भी गाया मंगल,
प्रतिध्वनित हो उठा कोलाहल,
वन सरिता का छलछल कलकल,

जनहित के मृदु मृदु भाव त्याग ।
तुम अब भी सोये ले विराग ॥

कोमल कलिकायें नृत्य निरत,
हैं रश्मि रश्मि भी शोक विरत,
परमिल पराग कण के शत शत,
वन लक्ष्मी सजती आज सतत,

गौतम करुणा का मधुर राग ।
तुम आज सुना दो सानुराग ॥

बुद्ध-सन्देश

श्री भिक्षु राष्ट्रपाल

ईस्वी पूर्व ६२३ में भारतवर्ष की इस पुण्य वसुंधरा पर एक महापुरुषने जन्म लिया, जिसका नाम सिद्धार्थ गौतम था । वे बचपन से ही चिन्ताशीली थे । उनके पिता महाराज शुद्धोदन अपने पुत्रकी इस प्रवृत्ति से भयभीत थे, क्योंकि उन्हें यह अकेला पुत्र वार्धक्य अवस्था में प्राप्त हुआ था । अतः उन्होंने कुमार का विवाह १६ वर्ष की अल्पायु में कोलियकुमारी यशोधरा से कर दिया, किन्तु सिद्धार्थ की मनोधारा पर इस वैवाहिक जीवनका भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा । प्रायः वे एकान्त चिन्तन किया करते थे और ध्यानमग्न हो समय व्यतीत किया करते थे । एक दिन भ्रमणार्थ उद्यान जाते समय वृद्ध, रोगी, मृतक और संन्यासी इन चार निमित्तों को देखा । संसार के दुःख और अनित्यता का मनन करना प्रारम्भ किया ।

इस समय सिद्धार्थ की आयु २९ वर्ष थी । राहुल

नाम का एक पुत्ररत्न की उन्हें प्राप्ति हो चुकी थी । फिर भी महान् चिन्ता के वशीभूत हो उन्होंने संसार-त्याग करना ही अपना कर्त्तव्य समझा । अर्द्ध निशा में प्यारी यशोधरा और नवजात शिशु राहुल के ममत्व को त्याग कर महाभिनिष्क्रमण कर दिया ।

वे मल्ल-वज्जी आदि देशों का पर्यटन करते मगध की राजधानी राजगृह पहुँचे । वहाँ के तत्कालीन प्रख्यात संन्यासी आलारकालाम तथा उद्दक रामपुत्र के पास उन्होंने कुछ दिनोंतक निवास किया और योग साधना की । किन्तु उस कर्मकाण्डी जीवन और शुष्क दर्शन शास्त्रों के अध्ययन मनन से कोई भी लाभ नहीं हुआ और न तो सम्बोधि का ही प्रशस्त मार्ग दिखलाई दिया ।

तपस्वी सिद्धार्थ ने राजगृह को त्यागकर उरुवेला की राह ली और वहाँ निरंजना नदी के किनारे एक

बुद्ध-सन्देश

१६७

रमणीय भू-भाग में रह कर ६ वर्षों तक दुष्कर तपश्चर्या की, इस कठोर तपसे उनका कोमल शरीर सूख गया। केवल हड्डियों का कंकाल ही शेष रहा। लेकिन ज्ञान प्राप्ति का आभास मात्र भी नहीं हुआ। तब उन्होंने निश्चय किया कि इस तप विधान से मनुष्य की मुक्ति सम्भव नहीं, इसी विचार में मग्न वे अजपाल नामक वरगद वृक्ष के नीचे बैठे थे। उसी

समय उरुवेला के निकटवर्ती सेनानी कस्बे की श्रेष्ठ कन्या सुजाता ने उन्हें वृक्ष देवता समझ कर पायास दान किया। उसने उस वृक्ष के पास कुछ मनौती माना था जो पूर्ण हो गई थी, वैशाख पूर्णिमा के उस शुभ दिवस को तपस्वी सिद्धार्थ ने खीर खाने के पश्चात् निकटवर्ती एक पीपल वृक्ष—बोधिवृक्ष—की ओर प्रस्थान किया, और सायंकाल कुशासन लगा बैठ गये। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि जब तक मुझे सम्बोधि की प्राप्ति न होगी, इस आसन से नहीं उठूंगा चाहे मेरी मृत्यु क्यों न हो जाय। उसी आसन पर बैठे हुये उन्हें सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति हो गई। उन्होंने मार सेना का विध्वंस कर दिया और सर्वलोक पूजनीय तथागत अर्हत सम्यक् सम्बुद्ध बन गये। अब वे भगवान् बुद्ध हो गये।

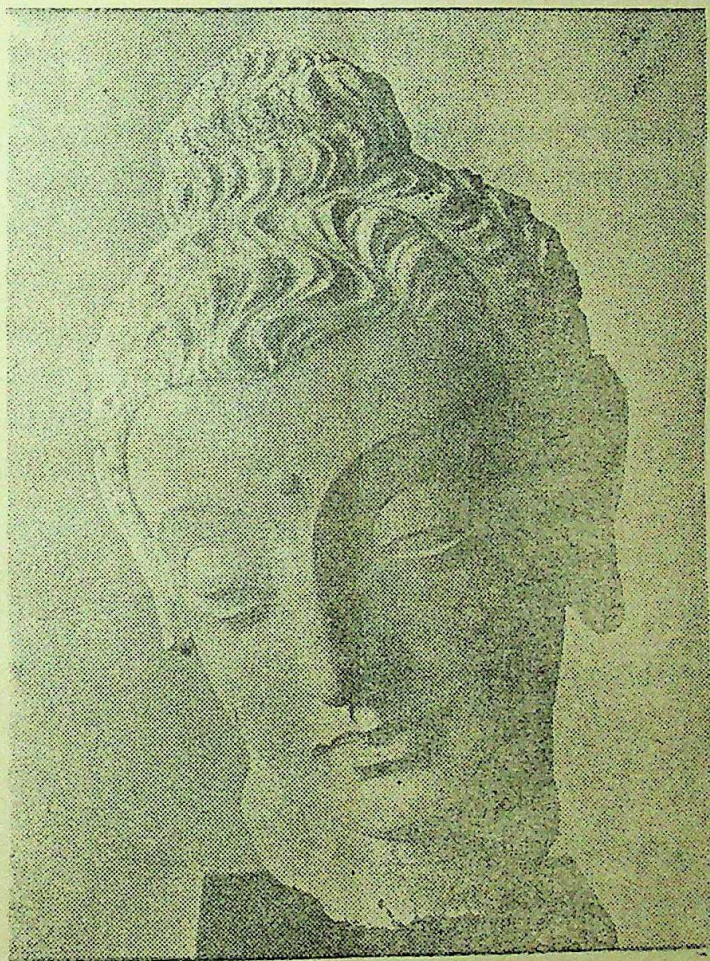
सात सप्ताह तक बोधिवृक्ष के आसपास व्यतीत कर वाराणसी की ओर प्रस्थान किया, और ऋषिपतन मृगदाय में धर्म चक्र-प्रवर्तन किया। धर्म प्रचार की प्रथम एवं अद्भुत घोषणा कर तथागत ने ऐसे महान संघ का निर्माण किया, जिसने हर दिशा में धर्म दुंदुभी बजाई। वह तथागत की महान धर्म विजय थी। उन्होंने

स्वयं भी ४५ वर्षों तक पैदल ग्राम, निगम, नगर में घूम-घूम कर मुक्ति का सन्मार्ग दिखलाया, और बहुजन कल्याण सम्पादित किया।

उस महाकारुणिक तथागत ने संसार के दुःखित-पीडित नर-नारियों को जो उपदेश दिया, वह अनित्य, दुःख और अनात्म के सारभूत सिद्धान्त पर अवलंबित था। मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा की श्रेष्ठ भावनाओं से ओत-प्रोत था। तथागत ने अपने संदेश में कहा था—

“भिक्षुओ ! इन दो अतियों का सेवन प्रव्रजितों को नहीं करना चाहिये। कौन सी दो ? (१) जो यह हीन, ग्राम्य,

पृथग्जन के योग्य, अनार्थ सेवित, अनर्थों से युक्त, कामवासनाओं में, काम-सुख में लिप्त होना है। (२) जो दुःखमय अनार्थ सेवित अनर्थों से युक्त काय क्लेश (आत्म-पीड़ा) में लगना है। भिक्षुओ ! इन



गान्धार-शैली की बुद्ध-प्रतिमा का शीर्षभाग

दोनों ही अन्तों (अतियों) में न जाकर, तथागत ने मध्यम मार्ग खोज निकाला है, जो कि आँख देनेवाला, ज्ञान करानेवाला, उपशम (शान्ति) के लिये, अभिज्ञा के लिए सम्बोधि (परिपूर्ण ज्ञान) के लिए, निर्वाण के लिए है। वह कौन सा मध्यम मार्ग (मध्यम-प्रतिपद्) तथागत ने खोज निकाला है? वह यही आर्य-अष्टांगिक मार्ग है, जैसे कि—सम्यक् (ठीक) दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यक्-वचन, सम्यक्-कर्म, सम्यक्-जीविका, सम्यक्-व्यायाम (प्रयत्न, परिश्रम), सम्यक्-स्मृति, सम्यक्-समाधि।” (संयुक्त निकाय ५५।२।१)

भगवान् बुद्ध ने पञ्चशील का पालन गृहस्थों के लिए बतलाया। (१) हिंसा न करना, (२) चोरी न करना, (३) व्यभिचार से विरत होना, (४) झूठ न बोलना, और (५) नशीली चीजों का सेवन न करना।

इन नियमों के अतिरिक्त भगवान् बुद्ध ने इन्द्रियों पर संयम रखने का जोर दिया है। इन्द्रिय संयम से मतलब है मन, वचन और काय पर संयम रखना। उन्होंने कहा है—

सञ्च पापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा ।
सच्चित्तं परियोदपनं, एतं बुद्धान्तां सासनं ॥

सारे पापों का न करना, पुण्यों का संग्रह करना, अपने चित्त को शुद्ध रखना, यह बुद्धों का उपदेश है।

नहि वेरेन वेरानि, सम्मन्तीध कुदाचनं ।
अवेरेन च सम्मन्ति, एस धम्मो सनन्तनो ॥

इस संसार में वैर से वैर कभी शान्त नहीं होते। अ-वैर (मैत्री) से ही शान्त होते हैं, यही सदा का नियम है।

सिद्धार्थ का हंसप्रेम

श्री मधुकर साहित्यरत्न

एक दिवस,
अपने ही मन की,
अतल भावना के सागर में,
ढूँढ़ रहे सिद्धार्थ एकाकी,
बैठे राजमहल आँगन में,
दुःखमय असह वेदना मन में,
आकुलता छाई जीवन में,
सोच रहे थे—
हिंसा का व्यापार जगत में,
मानव को कितना भरमाये ?
इसी समय विश्रान्त गगन से,
खड़ खड़ करने की प्रतिध्वनि में,
एक हंस आँगन में आया ।
फूट रही थी धार लहू की,
जहाँ लगा था तीर हृदय में,
टूट गई वह भाव-शृंखला,
महाकारुणिक की करुणा से,

भर आया भावुक वक्षस्थल ।
हंस उठाया,
तीर निकाला,
भर कर आँखों में पावस-घन,
उसको छाती से चिपटाया,
झरती आँखों के निर्झर से,
पंछी ने फिर जीवन पाया ।

× × × ×
“मेरा हंस मुझे वापस दो,
मैंने इसको लक्ष्य बनाया,”
देवदत्त बोला यों तत्पर,
और लगा फिर हंस माँगने ।
अधरों पर स्मित रेखायें,
आँखों में स्नेह-पराग भरे,
देखा घायल पंछी को मुड़,
बोले करुणा के मृदु-सागर,
“हंस नहीं मैं तुमको दूँगा,

यह मेरा है—

मैंने इसके प्राण बचाए ।”

बड़ा विवाद हंस लेने पर,

नृप समीप तक पहुँची बातें,

मंत्री परिषद हुआ अचम्भित,

जटिल समस्या थी उलझन की,

बहुत समझ कर,

बहुत सोच कर,

अन्तिम निर्णय यही सुनाया ।

“लक्ष्य बनाने वाले से तो,

होता बड़ा बचाने वाला,”

लिया हंस सिद्धार्थ गोद में,

सेवा कर निरोग बनाया,

मन ही मन भर गये मोद में,

मुक्त गगन में उसे उड़ाया ।

एकांकी

मद्य-पान

श्री कृष्णचन्द्र शेंदरे 'हृदयेश'

[महाराज 'सर्वमित्र' का राजदरबार, राजदरबार में
सुरापान का आयोजन चल रहा है]

महाराज सर्वमित्र—महामंत्री ! लाओ, आज इतनी
मदिरा पीयें, इतना सुरापान करें कि पृथ्वी पर और अपने
राज्य में, मदिरा की गंगा ही बह निकले ।

वृद्ध महामंत्री—महाराज !

सर्वमित्र—हाँ, मंत्रीजी ! आज हमारे राज्य के इस
आनन्द के अवसर पर खुलेआम आनन्द, विलास और
खुशी की उमंग उड़ने दो, लोगों को आनन्द से मदिरा
की बोतलों पर बोतलें उड़ाने दी, आज हमारा जन्म-दिवस
है । आज हमारे जन्म-दिवस के उपलक्ष्य में इतनी मदिरा
की धारा बह उठे कि उससे सारा संसार ही प्लावित हो
जाये ! लाओ, मुझे भी मदिरा दो ।

एक दासी—(एक मदिरा पात्र में मदिरा उडेलती
है) लीजिये, महाराज !

सर्वमित्र—(मदिरा पात्र हाथ में लेते हुए तथा
मदिरा पीते हुए) और तुम लोग भी सब इतनी पीओ
कि जीवन में इतनी कभी पी ही न हो ।

महामंत्री—महाराज ! इससे राज्य और प्रजा किधर
जायेगी, प्रभो ?

सर्वमित्र—इसका कुछ भी विचार न करो मंत्री जी !
जीवन तो सुख, आनन्द और उपभोग के लिये ही बना

है । लाओ, मुझे और अधिक मदिरा दो । (दासी पुनः
पात्र में मदिरा उडेलती है) और दरबारियो ! आओ,
तुम भी सब मेरे साथ मदिरा पीओ, आनन्द और
सुखकी सरिता में गोते लगाओ ।

(पुनः पीता है)

और मंत्रीजी ! देखिये ! जाइये ! शीघ्र ही नृत्य की
व्यवस्था कीजिये एवं शीघ्र ही उत्तमोत्तम नर्तकियों को
दरबार में प्रस्तुत कीजिये ।

महामंत्री—महाराज ! उनकी सब व्यवस्था तो पूर्व
से ही हो चुकी है । केवल, आपकी आज्ञा की
आवश्यकता थी महाराज !

सर्वमित्र—अच्छा तो नृत्य प्रारम्भ हो । (दो नर्त-
कियों का प्रवेश...ताल-लयके साथ नृत्य की झंकार मदिरा-
पान-आयोजन क्रमशः) [नृत्य आयोजन एवं मदिरा-
पान आयोजन भंग करते हुए, कुछ समय के उपरान्त,
एक संन्यासी वेशधारी व्यक्तिका प्रवेश । काषाय वस्त्र
धारण किये हुये, साथ में मृगचर्म लिये हुए जटाएँ धूल
धूसित हैं, मुख पर अद्भुत तेज, नेत्रों में अनुपम ज्योति
और करुणा है, हाथ में सुवर्ण सुरा-पात्र है साथ में एक
शिष्य है ।]

महाराज सर्वमित्र—आइये, मुनिराज ! आइये
महात्मन् ! आप भले पधारें । आपका स्वागत है ।
आइये । आपको प्रणाम है ।

(प्रणाम करता है)

संन्यासी—आशीष राजन् ! आशीष !

अन्य दरबारी—महात्मन् ! हमारा भी नमस्कार स्वीकार हो ।

(प्रणाम करते हैं ।)

संन्यासी—आशीष ! दरबारियों ! आशीष महाराज ! मैं आपके दरबार में यह अनुपम सुरा-पात्र बेचने आया हूँ ।

(साथ में लिए सुरा-पात्र दिखाते हैं)

यदि आपको सत्य, धर्म, न्याय, विवेक, दया, क्षमा, करुणा तथा बुराइयों की चिन्ता न हो, तो मेरे हाथ का यह सुरा-पात्र खरीद लो ।

सर्वमित्र—महाराज ! आपके सौदा करने का ढंग तो विचित्र है सौदा करने वाले तो अपनी चीजों की प्रशंसा करते हैं, किन्तु आप तो अपनी ही वस्तु के सारे दोष और कुलक्षण बखान कर रहे हैं । विचित्र सत्यवक्ता हैं आप ।

संन्यासी—महाराज सर्वमित्र ! इस सुरा-पात्र में न तो पवित्र फूलों का मधु है, न गंगाजल है और न दूध है, न दही ।

सर्वमित्र—तो क्या है, संन्यासीजी उसमें ?

संन्यासी—इसमें है विषमयी मदिरा !

सर्वमित्र—तो लाइये संन्यासी ! वह मदिरा ।

संन्यासी—किन्तु जानते हो राजन् ! वह कैसी मदिरा है ?

सर्वमित्र—हाँ ।

संन्यासी—नहीं, महाराज ! आप नहीं जानते । यह वह मदिरा है, जिसे पीते ही मनुष्य अपने वश में नहीं रहता ।

उसे भक्ष्याभक्ष्य का, सत्य-असत्य का, न्याय-अन्याय का, विवेक-अविवेक का, धर्म-अधर्म का कुछ भी विचार नहीं रहता । उसका मुँह तो कुत्ते तक चाटते हैं । राजपथ पर वह लड़खड़ाकर गिरता है और अपना वसन भी वह खा जाता है । लोगे महाराज ! यह मदिरा, और यह मदिरा-पात्र ?

सर्वमित्र—संन्यासी !

संन्यासी—हाँ, महाराज ! मैं सच कह रहा हूँ !

इसका पान कर मानव नरन होकर मार्ग पर नृत्य करेगा !

उसे अपनी पत्नी और युवती कन्या से भेद नहीं दीख पड़ेगा !

सर्वमित्र—(साश्चर्य) संन्यासी जी ! यह आप क्या कह रहे हैं ? क्या यह सत्य है ?

संन्यासी—हाँ, महाराज ! यह नितान्त सत्य है । संन्यासी कभी झूठ और असत्य भाषण नहीं करता ।

सर्वमित्र—तो क्या संन्यासी ! हम मदिरा-पान कर अपना ही वसन-पान करते हैं ?

संन्यासी—हाँ, महाराज ! यह वह पेय है कि जिसके पान कर लेने पर स्त्री अपने पति को पीटने में भी संकोच नहीं करती ।

सर्वमित्र—आश्चर्य ! संन्यासी जी ! आश्चर्य !

संन्यासी—हाँ, राजन् ! इसको पीकर तो बड़े-बड़े ऐश्वर्यवान् एवं धनवान् दरिद्र बने !

साधारण प्रजा भी भूखी और नंगी हो गई !

राजाओं के राज्य मिट गये !

यह अभिशाप की मूर्ति है, महाराज !

अधर्म, अन्याय और पाप की यह जीती-जागती जननी और प्रतिमा है, यह महाराज !

सर्वमित्र—भगवन् ! आपने मेरी आँखें खोल दी ! (दरबारियों से) दरबारियों ! यह सब सुरा-पान और मदिरा एकदम फेंक दो !

महात्मन् ! आपने सच में मेरी आँखें खोल दीं ! आज से मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं कभी भी मदिरा-पान नहीं करूँगा, और न कोई मेरे राज्य में ही मदिरा-पान करेगा ।

संन्यासी—धन्य हैं, महाराज ! आप धन्य हैं !

समय पर आपको सदज्ञान प्राप्त हो गया, इसके लिए आप वास्तव में धन्य हैं !

सर्वमित्र—भगवन् ! आपने मुझे गुरु-शिष्य की भाँति शिक्षा दें, जिस प्रकार मुनिगण दुखी प्राणियों को सन्मार्ग में लाते हैं ! इसलिए गुरु-दक्षिणा स्वरूप भगवन् मेरे पाँच गाँव, सौ दास-दसियाँ एवं अश्व सहित सहस्र रथ स्वीकार करें !

(सर्वमित्र संन्यासी के चरणों पर गिर पड़ते हैं । संन्यासी जी सर्वमित्र को उठा कर गले लगाते हैं ।)

संन्यासी—राजन् सर्वमित्र ! मुझे तुम्हारी किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। मैं जीवन-मुक्त हूँ इसलिए स्वर्ग का वैभव भी मेरे पास है, मैं तो केवल तुम्हें अधःपतन से सावधान करने आया था।

सर्वमित्र—धन्य हैं भगवन् ! मेरे भाग्य ! समय पर मुझे चेतावनी देकर आपने मुझे कृतकृत्य किया ! किन्तु कौन हैं भगवन् आप ? आपका परिचय ?

संन्यासी का साथी शिष्य—महाराज ! ये संन्यासी वेशधारी बोधिसत्व हैं।

सर्वमित्र—(पुनः चरणों में प्रणाम कर तथा उठकर) भगवन् ! वास्तव में मैं धन्य हुआ, आज मेरा जीवन सार्थक हुआ। आपके पवित्र-पावन दर्शन पाकर मैं और सारा राजकुल एवं सारी प्रजा कृतार्थ और पावन हुई।

महाराज ! मुझे और मेरी सारी प्रजा तथा राजकुल को आप अपनी शरण में लीजिये और हमारी पूजा और अर्चना स्वीकार कीजिये।

आइये भगवन् ! पधारिये।

(बोधिसत्व को एक उच्च आसन पर बैठाते हैं। वे प्रसन्न-मुद्रा पद्मासन में बैठते हैं)।

बोधिसत्व—तथास्तु, राजन !

सर्वमित्र—आओ, प्रजागण !

इस पुण्य अवसर पर हम सब लोग मिलकर खड़े होकर भगवान् बुद्ध की शरण में जावें और निर्वाण का पथ और शान्ति का पद खोजें।

बोधिसत्व—हाँ, राजन ! तथास्तु !

[सब खड़े हो जाते हैं और भगवान् बुद्ध की प्रार्थना करते हैं]

प्रार्थना

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स

बुद्धं सरणं गच्छामि ।

धम्मं सरणं गच्छामि ।

संघं सरणं गच्छामि ।

महामन्त्री—और आओ, आज हम पञ्चशील की प्रतिज्ञा को दुहरावें।

“मैं प्राणि-हिंसा से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

मैं चोरी से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

मैं व्यभिचार से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

मैं झूठ से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

मैं शराब आदि मादक द्रव्यों के सेवन से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।”

(सब प्रतिज्ञा करते हैं और दुहराते हैं)

सर्वमित्र—अस्तु, आओ ! भारत के सुपुत्रो ! उठो, जागो और दुःख का शल्य निकाल कर फेंक दो और सुखी बनो !

जातीयता नष्ट कर दो, साम्प्रदायिकता नष्ट करो। ब्रुआकृत का भेद नष्ट करो, ऊँच-नीच की भावना नष्ट करो। मानवधर्म का प्रचार करो, मनुष्य मात्र पर प्रेम करो, भगवान् बुद्ध के धर्म का प्रचार करो। यही मानव को शान्ति और सुख प्रदान कर सकता है। यही मानव का सच्चा धर्म हो सकता है।

सूत्रधार—हाँ, और आज एटम् एवं हायड्रोजन के युग में, मानव-युद्ध और कलह के समय, यही मानव और विश्व-व्यापी धर्म हो सकता है। और यही मानव को उसके दुःखों से त्राण दे सकता है, सच्चा सुख और निर्वाण-पद दिला सकता है।

बोलो, सब मिलकर, उच्च स्वर से एक बार, “भगवान् बुद्ध की जय, भगवान् बुद्ध की जय”।

(सब भगवान् बुद्ध की जयजयकार करते हैं)

पटाक्षेप

बुद्ध-दूत

श्री बी० एस० 'विकल'

हे धर्म-प्रवर्तक वीर-साहसी, तुमको शीश नवाऊँ ।
देश धर्म पर मिटने वाले,
तुम पर बलि बलि जाऊँ ॥

सदियों से कुचली मानवता को तुमने सहलाया ।
दस करोड़ पीड़ित दलितों को तुमने गले लगाया ॥
हे दलित सुधारक ! कर्णधार,
तेरी गुण गाथा गाऊँ ॥

देश धर्म पर मिटने वाले
तुम पर बलि बलि जाऊँ ॥
इस भौतिकता की दुनिया में तुम अध्यात्म जगाए ।
दुःखों में जलते जग को निवारण तत्त्व दर्शाए ॥
हे ज्ञान ज्योति ! हे जगउद्धारक !,
श्रद्धा अर्घ चढ़ाऊँ ॥

देश धर्म पर मिटने वाले,
तुम पर बलि बलि जाऊँ ॥
नैतिकता औ शक्ति समाधी से अज्ञान हटाया ।
बहुजन हिताय बहुजन सुखाय का उच्चादर्श बताया ॥
हे बुद्ध-दूत ! करुणा सागर !,
मैं हृदय प्रीति दर्शाऊँ ॥

देश धर्म पर मिटने वाले,
तुम पर बलि बलि जाऊँ ॥

गाँधीजी पर बौद्ध-दर्शन का प्रभाव

श्री अनन्त

गाँधी जी पर बौद्ध-दर्शन का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था। उसी प्रभाव के कारण सम्प्रति लंका, बर्मा, इराम आदि बौद्ध देशों की जनता गाँधी जी को बोधिसत्व मानती है। बोधिसत्व उस महापुरुष को कहते हैं जो पारमिताओं को पूर्ण करने में लगा होता है और भविष्य में बुद्धत्व प्राप्त करके बुद्ध हो जगत् का उद्धार करता है। वास्तव में गाँधीजी बोधिसत्व ही थे। यद्यपि गाँधी जी की अहिंसा बौद्धधर्म की अहिंसा से कुछ भिन्न थी, किन्तु अहिंसा का मार्ग उन्होंने भगवान् बुद्ध से ही ग्रहण किया था। 'यंग इण्डिया' में गाँधी जी ने "हैस्ट एण्ड वेस्ट" (पूर्व और पश्चिम) नामक पत्र में प्रकाशित एक लेख का उत्तर देते हुए लिखा है—“बुद्ध ने निडर होकर शत्रुओं से संग्राम किया और उद्दण्ड पुरोहितों को दण्डित किया।... बुद्ध एक तरफ तो इस तरह दण्ड की योजना कर रहे थे। पर दूसरी ओर अतुल प्रेम और दया के सागर को फैला देते थे। अपने शत्रुओं पर वे अंगुली भी नहीं उठाते थे और वे जिस सच्चाई के सिद्धान्त को लेकर चल रहे थे। उसकी हत्या होते देख अपना प्राण तक गवाँ सकते थे। यदि अपने प्रेम के प्रताप से बुद्ध पुरोहितों को अपने वश में न कर सके होते तो उस प्रयास में अपना प्राण अवश्य खो दिये होते।... इसलिए मैं शान्तिमय और अहिंसात्मक आन्दोलन को जन्म दे रहा हूँ तो मेरी समझ में मैं उन्हीं भगवान् (बुद्ध) का अनुसरण कर रहा हूँ।” (तृतीय भाग, पृष्ठ ७५५-५६)

गाँधी जी की अहिंसा में राजनीति का कुछ पुट आ गया था, किन्तु बौद्धधर्म की अहिंसा विशुद्ध आध्यात्म से सम्बन्ध रखती है। जानबूझ कर किसी की हिंसा न करना ही बौद्धधर्म की अहिंसा है, किन्तु भगवान् बुद्ध की अहिंसा द्वारा प्रभावित होते हुए भी गाँधी जी ने सन् १९४२ के अगस्त के प्रथम सप्ताह में रेल या तार तोड़ने-फोड़ने को अहिंसा में परिगणित किया था और सन् १९४७ के अन्त में कश्मीर के अभियान में भी अहिंसा

की पराजय नहीं मानी थी। शान्तिमय अहिंसात्मक आन्दोलनों का वर्णन पालि ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर आया है। अनेक भिक्षुओं ने ऐसे आन्दोलन कर प्रव्रज्या की आज्ञा घर वालों से प्राप्त की थी। तथागत का ब्रह्म-दण्ड का विधान सर्वथा अहिंसात्मक असहयोग था, जिसका प्रभाव गाँधी जी पर बहुत पड़ा था।

गाँधी जी बौद्ध-दर्शन से इतने प्रभावित थे कि एक बार उनके डाइवर ने उनसे पूछा कि मैं कौन-सा ग्रन्थ पढ़ूँ, जिससे मेरे मन को शान्ति मिले? गाँधी जी ने उससे कहा कि तुम भगवान् बुद्ध के उपदेशों को पढ़ो, उसमें तुम्हें शान्ति प्राप्त होगी। सन् १९४१ से गाँधी जी जब सारनाथ के मूलगन्ध कुटी विहार के दर्शनार्थ आए थे, तब उस समय इन पंक्तियों का लेखक भी उपस्थित था। गाँधी जी ने भगवान् बुद्ध की पूजा के पश्चात् उनकी शिक्षा के महत्व को बतलाते हुए दर्शक-पत्रिका में लिखा था—“मेरे लिए तो यह एक तीर्थ ही है।” इन बातों से गाँधी जी पर बौद्ध धर्म के प्रभाव परिलक्षित हो रहे हैं।

गाँधी जी अपनी नित्य की प्रार्थना में सर्वप्रथम बुद्ध-वन्दना को ही कहा करते थे। बुद्ध-वन्दना के पश्चात् ही वे अन्य प्रार्थनाएँ करते थे। गाँधी जी ऐसा मानते थे कि बौद्धधर्म अब भी भारत में विद्यमान है और उसे यहीं सीखा जा सकता है। जब आचार्य धर्मानन्द कौशाम्बी जी ने गाँधी जी को लिखा कि वे कुछ पैसा एकत्र कर पालि पढ़ने के लिए प्रतिवर्ष कुछ छात्रों को लंका भेजने का प्रबन्ध कर दें, तब उन्होंने उनके उत्तर में लिखा था—“यह तो मैं कर दूँगा, किन्तु मैं मानता हूँ कि बुद्ध वचन तथा पालि पढ़ने के लिए भारत ही सबसे उपयुक्त है और मेरा विश्वास है कि बौद्ध-धर्म का वास्तविक रूप यहीं समझा जा सकता है।” आज आचार्य धर्मानन्द कौशाम्बी और गाँधी जी दोनों नहीं रहे, किन्तु गाँधी जी के परामर्श से काका कालेलकर ने “धर्मानन्द स्मार्त्स-ट्रस्ट”

की बम्बई में स्थापना कर दी है, जिसके द्वारा प्रतिवर्ष एक छात्र पालि पढ़ने के लिए लंका जाया करता है।

गांधी जी पर भगवान् बुद्ध की इस शिक्षा का बड़ा प्रभाव पड़ा था—

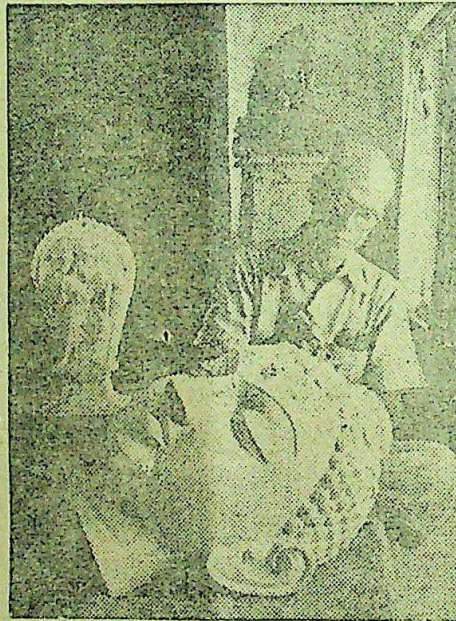
नहिं वेरेन वेरानि, सम्मन्तीध कुदाचनं।

अवेरेन च सम्मन्ति, एस धम्मो सनन्तनो॥

अर्थ—वेर से वेर कभी भी शान्त नहीं होते, वेर तो अवेर (=मैत्री) से ही शान्त होते हैं—यही सदा का नियम है।

भगवान् बुद्ध के अपरिग्रह-मार्ग का गांधी जी पूर्ण रूप से अवलम्बन करने वाले थे। डाक्टर पट्टाभि सीतारमैया ने इसी सम्बन्ध में लिखा है—“भगवान् बुद्ध की तरह उन्होंने अपना सब कुछ त्याग दिया।” बौद्ध-धर्म का गांधी जी के जीवन पर काफी प्रभाव पढ़ने के कारण कुछ लोग गांधी जी की तुलना भगवान् बुद्ध से करने की गलती करते हैं, किन्तु वे इसे भूल जाते हैं कि गांधी जी ने कभी भी अपनी तुलना ‘बुद्ध’ से न की, प्रत्युत उन्होंने सदा कहा कि मैं बुद्ध के मार्ग का अनुसरण करनेवाला हूँ। गांधी जी की धर्म, आचरण, नीति आदि सारी बातों पर तथागत की छाप दीखती है।

भगवान् बुद्ध ने ग्रन्थ-प्रमाण को नहीं माना। उनका कहना था कि किसी भी बात को मानने के पहले उसे बुद्धि की कसौटी पर कसो। यदि वह कुशल और हितकर जान पड़े, तो ग्रहण करो अन्यथा छोड़ दो। गांधी जी ने ठीक उसी प्रकार वेद, उपनिषद्, गीता, पुराण, रामायण, महाभारत, कुरान, बाइबिल आदि जो भी श्रेष्ठ आदर्शों के प्रतीक रहे, सबका समन्वय कर अच्छी बातों को ग्रहण किया और अहितकर को त्याग दिया। उन्होंने स्वयं



आर्ट कालेज लखनऊ में बुद्ध-प्रतिमा का निर्माण

लिखा है—“मैंने वेदों अथवा किसी शास्त्र के सम्बन्ध में ‘अपौरुषेय’ शब्द का प्रयोग जानबूझ कर नहीं किया है। उस अर्थ को मानने के लिए तैयार नहीं, जो तर्क और नीति के विरुद्ध हो, फिर वह चाहे कितना ही विद्वत्तापूर्ण क्यों न हो।” (यंग इण्डिया, भाग ३, पृष्ठ ७५७-५८)।

गांधी जी ने बुद्ध-शिक्षाओं की भाँति ही खुआलूत को मनुष्य का कलंक बतलाया और सदा खुआलूत की भावना को दूर करने का प्रयत्न किया। गांधी जी ने इसी भावना से प्रेरित हो श्री युगल किशोर बिड़ला से

कहकर बम्बई में “बहुजन विहार” नामक एक बुद्ध मन्दिर का निर्माण कराया और आचार्य धर्मानन्द कौशाम्बी के वहाँ रहने की व्यवस्था की, जिससे सभी वर्ण, सम्प्रदाय और वर्ग के लोग समान रूप से बुद्ध-मन्दिर में आकर अपने भाव-व्यक्त कर सकें। इस कार्य में उन्होंने हरिजनों का ही विशेष ध्यान रखा था। गांधी जी ने उस अवसर पर कहा था कि “बहुजन विहार” मानव मिलन-मन्दिर है, क्योंकि बुद्ध धर्म में जातीय विषमता आदि के लिए कोई स्थान नहीं है। सामाजिक न्याय, सहनशीलता, क्षमा, दया, सत्य और अहिंसा—इन सभी गुण-धर्मों का गांधी जी में एक अद्भुत समन्वय था।

बुद्ध धर्म का पञ्चशील मानव धर्म है। पञ्चशील का पालन मनुष्य की उन्नति का साधन माना जाता है। इसके पालन से मनुष्य का आध्यात्मिक एवं बाह्य विकास होता है और वह सच्चा मनुष्य बन जाता है। बुद्ध-प्रवेदित धर्म में पञ्चशील ये हैं :—

१. जानबूझ कर जीवहंसा न करना।
२. बिना दी हुई वस्तु को न लेना।
३. काम-भोगों में मिथ्या आचार न करना।
४. असत्य वचन न बोलना।

५. शराव आदि मादक द्रव्यों का सेवन न करना ।
इन्हें हम क्रमशः अहिंसा, अस्तेय, संयम, सत्य और मद्य-त्याग कह सकते हैं । गांधी जी ने सदा ही इन नियमों का पालन किया और इन्हीं को अपने जीवन में उतारने की शिक्षा दी ।

गांधी जी के इन्हीं विचारों के कारण सम्प्रति भारतीय

जनता बुद्धधर्म की ओर खिंचने-सी लगी है और भगवान् बुद्धके पञ्चशील आदि गुणधर्मों को जानने के लिए उत्सुक दीख रही है । इस समय भारत में भगवान् बुद्ध तथा बौद्ध धर्म की जो भी जागृति दिखलाई दे रही है, उसके मूल में गांधी जी के अहिंसा-धर्म का प्रचार ही प्रधान है ।

आचार्य धर्मगुप्त

श्री सुमन वात्स्यायन

आचार्य धर्मगुप्त काठियावाड़ के रहनेवाले थे । वे बड़े साहसी और फक्कड़ मिजाज के थे । २३ वर्ष की आयु में वे कन्नौज आये, जो उस समय विद्या का एक प्रमुख केन्द्र था । वहाँ वे कौमदी संघाराम में ठहरे । उनकी प्रतिभा और अध्ययन से लोग बहुत प्रभावित हुए । दो वर्षों तक बड़े परिश्रम से उन्होंने बौद्ध साहित्य का अध्ययन किया । २५ साल की आयु में उनकी भिक्षु-दीक्षा हुई । इसके बाद वे उत्तर पंजाब गये, जहाँ एक राजकीय संघाराम में ठहरे । उन्हीं दिनों चीन से कुछ भिक्षु बौद्ध साहित्य के संग्रह के लिए आये थे । और उसी राजकीय संघाराम में ठिके हुए थे । इन्हीं यात्रियों से धर्मगुप्त को पता लगा कि चीन में भी बौद्ध धर्म का प्रचार है । उन्होंने अब चीन जाने का निश्चय किया ।

पंजाब से धर्मगुप्त कपिसा पहुँचे और वहाँ दो साल रहे । उत्तर से आनेवाले व्यापारियों की जवानी उन्होंने चीन के बारे में अनेक प्रकार की जानकारी हासिल की । कपिसा से चलकर तुखारा-बदख्शाँ होते हुए धर्मगुप्त ताश कुर्वाँन पहुँचे । यह रास्ता बहुत ही दुर्गम और कठिन था । पर धर्मगुप्त जैसा धुन का पक्का समर्थ-साधक मार्ग में होनेवाले इन कष्टों को क्या समझता ? सभी प्रकार की आपत्तियों को झेलते हुए वे अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते जा रहे थे । एक वर्ष तक ताश कुर्वाँन में ठहरने के बाद वे काशगर पहुँचे ।

इस प्रदेश में बौद्ध धर्म का पर्याप्त प्रचार हो चुका था । मध्य एशिया उन दिनों भारतीय संस्कृत साहित्य

और कला का केन्द्र था । इसलिए धर्मगुप्त काशगर राजकीय विहार में दो वर्षों तक रुक गये । वहाँ से वे कूचा गये । कूचा जो आज के चीनी तुर्किस्तान का एक भाग है । उन दिनों सभी दृष्टि से बृहत्तर भारत का ही एक अंग था । वहाँ की राजभाषा, लिपि और साहित्य भारतीय था । वहाँ संस्कृत के अनेक धुरन्धर पण्डित रहते थे । बौद्ध धर्म ही प्रधान धर्म था । पश्चिमी देशों से चीन का व्यापार इसी देश से होकर होता था । इसलिये यह व्यापार का भी केन्द्र था । यहाँ के भारतीय वातावरण में धर्मगुप्त दो वर्षों तक रहे ।

कूचा का राजा भारतीय संस्कृत साहित्य और धर्म का अनन्य उपासक था । धर्मगुप्त की विद्वत्ता और अनुभव से वह इतना प्रभावित हुआ कि दो साल के बाद भी वह उन्हें कूचा से बाहर नहीं जाने देना चाहता था । पर धर्मगुप्त अपने निश्चय पर अटल थे । जब राजा और जनता को इस प्रेममय प्रतिबन्ध को और कोई उपाय नहीं देखा तो वह एक दिन चुपके से चल दिये ।

कूचा से चलकर धर्मगुप्त करासार (अग्निदेश) तूफान और हामी होते हुये ५७० ई० में चीन पहुँचे । मार्ग के इन देशों में लोग भारतीय पण्डितों का बहुत स्वागत करते थे । इसलिये धर्मगुप्त को इन प्रदेशों में भी साल-दो-साल करके ठहरते जाना पड़ा ।

चीन पहुँच कर कुछ वर्षों तक धर्मगुप्त चांगान में ठहरे और फिर वे आंग आ गये । चीन में रहते हुये इन्होंने (शेषांश पृष्ठ १७८ में)

नये प्रकाशन

विशुद्धिमार्ग

मूल-लेखक—आचार्यबुद्धघोष । अनुवादक—त्रिपिट-काचार्य भिक्षु धर्मरक्षित । प्रकाशक—महाबोधि सभा, सारनाथ, वाराणसी । पहला भाग पृष्ठ ४३०, मूल्य १०) और दूसरा भाग पृष्ठ ३५०, मूल्य ८) । ग्रन्थ का आकार रायल ।

‘विशुद्धि मार्ग’ बौद्ध-धर्म-दर्शन का सारभूत ग्रन्थ है । ऐसे ग्रन्थ का हिन्दी में अनुवाद होना आवश्यक था । सारभूत होते भी सरल नहीं है, इसलिए इसके अनुवाद के लिए बड़े योग्य विद्वान् की आवश्यकता थी । त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित जी ही इस काम को योग्यतापूर्वक कर सकते थे । अनुवाद को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई ।

—राहुल सांकृत्यायन

बौद्ध योगसाधना का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ ‘विशुद्धिमार्ग’ का हिन्दी रूपान्तर करके त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित ने इस विषय के अध्ययन के लिए हिन्दी पाठकों द्वारा खोल दिया है । वर्तमान भारतीय भाषाओं में इस ग्रन्थ का अविकल अनुवाद एकमात्र यही है । बँगला या मराठी में अधूरा अनुवाद या विषय-संक्षेप ही मिलते हैं । विद्वान् अनुवादक ने अनुवाद करने में लंका और बर्मा के पालि के विभिन्न टीका-ग्रन्थों का आधार लिया है । इसके अतिरिक्त ‘विशुद्धिमार्ग’ पर उपलब्ध टीका-ग्रन्थों का आधार लेकर महत्त्वपूर्ण टिप्पणियाँ भी दी हैं । भिक्षुजी ने यत्र-तत्र टिप्पणियों में स्वतन्त्र रूप से भी आलोचना की है, जो विशेष अध्ययन करनेवाले के लिए लाभप्रद होंगी । ग्रन्थ को उपयोगी बनाने के लिए पादटिप्पणियों में पारिभाषिक शब्दों का यथासम्भव अर्थ भी दिया गया है । अनुवाद के बीच-बीच में कुछ महत्त्वपूर्ण स्थलों पर मूल पालिपाठ भी दे दिये गये हैं, जिनसे पाठकों को ग्रन्थ का अभिप्राय समझने में सहायता मिलेगी और मूलग्रन्थ के वातावरण से उनका सम्पर्क बना रहेगा ।

‘विशुद्धिमार्ग’ के रचयिता बुद्धघोषाचार्य हैं । पाँचवीं शताब्दी के उत्तर भारतीय विद्वानों में वे श्रेष्ठतम थे । उन्होंने प्रायः पूरे त्रिपिटक साहित्य पर व्याख्याएँ (अट्ठकथा) लिखी हैं । लंका में अनुराधापुर के महास्थविरों के आज्ञा-नुसार इन्होंने समस्त त्रिपिटक का सारभूत यह ‘विशुद्धिमार्ग’ नामक ग्रन्थ लिखा । यह ग्रन्थ त्रिपिटक के अध्ययन के लिए कुंजी है । पूरे अनुपिटक में इसके जोड़ का कोई दूसरा ग्रन्थ नहीं है । स्थविरवाद की साधना और सिद्धांत दोनों का ही यह प्रतिनिधि ग्रंथ है । शील, समाधि और प्रज्ञा ये भगवान् बुद्ध के मूलभूत शिक्षात्रय हैं । उसी के अनुसार ग्रंथकार ने शील, समाधि और प्रज्ञा इन तीन खण्डों एवं २३ परिच्छेदों में इस ग्रंथ का विभाग किया है । योगसाधना ही इस ग्रंथ का प्रधानतम विषय है । इस ग्रंथ से केवल बौद्धसाधना का ही अध्ययन नहीं होता प्रत्युत अन्य समस्त भारतीय साधनाओं के परमोत्कर्ष का भी संकेत मिलता है । पातंजल योग के अध्येता और साधकों के लिए भी यह ग्रन्थ उतना ही अनिवार्य है, जितना बौद्धों के लिए । वस्तुतः इसके बिना बौद्ध योग साधना की दुरुहता को समझना कठिन है । इस ग्रन्थ के विद्वान् अनुवादक ने हिन्दी अनुवाद द्वारा साधक और अध्येता दोनों का महान् उपकार किया है ।

भिक्षुजी ने अनुवाद की अपनी विस्तृत भूमिका में अट्ठकथाचार्य बुद्धघोष के जीवन-चरित्र के सम्यन्ध में महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक आलोचना की है । ग्रन्थकार की रचनाएँ तथा उनका महत्त्व दिखाते हुए ‘विशुद्धिमार्ग’ का महत्त्व और उसके प्रतिपाद्य विषयों का संक्षेप भी दे दिया है । इस ग्रन्थ संक्षेप के पढ़ने के बाद अध्येताओं को ग्रन्थ की दुरुहता अवश्य ही कम होगी ।

कहना नहीं है कि धर्मरक्षितजी जैसे अधिकारी विद्वान् ही इसे पूर्ण कर सकते हैं । परिशिष्टों में विस्तृत रूप से (१) शब्दार्थ कोश तथा (२) पारिभाषिक शब्दों का विवरणात्मक

कोश दे दिया जाय तो इस विषय के अध्येताओं का बड़ा हित होगा।

कहना नहीं है कि 'विशुद्धिमार्ग' के जैसे पारिभाषिक शब्दों से लदे, साधना की दृष्टि से अत्यन्त दुरूह, दर्शन की दृष्टि से अत्यन्त गहन ग्रन्थ का अनुवाद करके विद्वान् लेखक ने प्रारम्भिक पाठकों का ही नहीं विद्वानों का भी बड़ा उपकार किया है। निस्सन्देह इस अनुवाद से हिन्दी का गौरव बढ़ेगा। लेखक से यह अनुरोध करना अनुचित न होगा कि 'कथावस्तु', 'पुग्गलपञ्जति', 'पट्टान' आदि अभिधर्म के दुरूह ग्रंथों का भी अनुवाद करके हिन्दी की गौरव-वृद्धि करें।

—जगन्नाथ उपाध्याय

भारतीय धर्मों के अनुसार योग-साधना के बिना तत्त्वज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए इन धर्मों में योगाभ्यास के लिए प्रमुख स्थान दिया गया है। आचार्य बुद्धघोष ने अपने 'विशुद्धिमार्ग' में बौद्धधर्म के स्थविरवादी सम्प्रदायानुगत योगसाधना का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। जैसा कि अपेक्षित है विषय की गहनता के कारण 'विशुद्धिमार्ग' में अनेक धार्मिक तथा दार्शनिक विचारों की गुत्थियाँ विद्यमान हैं। विद्वान् अनुवादक ने इन गुत्थियों को सुलझाने का काफी प्रयास किया है। विशुद्धिमार्ग एक प्रकार से सारे पालि त्रिपिटक का सार है। इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के अनुवाद से भाई धर्मरक्षितजी ने हिन्दी साहित्य की बड़ी सेवा की है।

—भिक्षु धर्मरत्न

पालि-व्याकरण—लेखक—भिक्षु धर्मरक्षित। प्रकाशक—ज्ञानमण्डल लिमिटेड, कबीरचौरा, वाराणसी। पृष्ठ संख्या २००, मूल्य—दो रुपया पचीस नया पैसा।

पालिभाषा भगवान् बुद्ध के कुछ समय पूर्व से लेकर अशोक-काल के कुछ समय पीछे तक, पूरे उत्तर भारत की राष्ट्रभाषा थी। इसका साहित्य बड़ा विशाल है। कालचक्र वश एक दीर्घकाल तक हम भारतीय पालिभाषा से अनभिज्ञ से हो गये थे, किन्तु पड़ोसी बौद्धदेश लंका, बर्मा, श्याम आदि इसे धार्मिक भाषा के रूप में सुरक्षित रखे रहे। सम्प्रति उन देशों में इसका बहुत प्रचार है। इस

समय भारतवर्ष में भी पालि-शिक्षा की व्यवस्था की ओर हमारा ध्यान गया है। हिन्दू विश्वविद्यालय और राजकीय संस्कृत महाविद्यालय वाराणसी, बिहार विश्वविद्यालय, पालि प्रतिष्ठान नालन्दा और कलकत्ता, बम्बई आदि विश्वविद्यालयों तथा संस्कृत समिति बिहार (पटना) द्वारा इसके शिक्षण और परीक्षण की व्यवस्था है। आगरा, इलाहाबाद, सागर आदि विश्वविद्यालयों द्वारा भी डिग्री कोर्सों में इसे स्थान प्राप्त है। उत्तर प्रदेश और बिहार के हाईस्कूल तथा इण्टरमीडिएट कोर्स में भी पालि रखी गई है और इन दोनों राज्यों में अब एक बड़ी संख्या में छात्र पालि पढ़ने लगे हैं। केन्द्रीय सरकार द्वारा पालि त्रिपिटक को भी देवनागरी लिपि में प्रकाशित किया जा रहा है। यह बहुत ही प्रसन्नता की बात है।

किन्तु, अभी पाठ्य-पुस्तकों तथा व्याकरण-ग्रन्थों के अभाव से छात्रों को बड़ी असुविधा होती है। हिन्दी में अब तक पालि के तीन व्याकरण-ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें पूज्य भदन्त जगदीश काश्यप द्वारा लिखित 'पालि महाव्याकरण' सर्वांग परिपूर्ण है, तथापि वह विशालकाय ग्रन्थ छात्रों के लिए सुविधाजनक तथा सरल नहीं है। वह विशेष रूप से विद्वानों के योग्य है।

यह ग्रन्थ इस दृष्टि से लिखा गया है कि हाईस्कूल से लेकर एम० ए०, आचार्य तक के छात्र इससे लाभ उठा सकें और उन्हें पालि व्याकरण का पूर्ण ज्ञान हो जाय। इसे मोगल्लान व्याकरण तथा उसके परिवार-ग्रन्थ पदसाधन के आधार पर तैयार किया गया है। यह अपने ढंग का परिपूर्ण ग्रन्थ प्रारम्भिक पाठक के लिए भी बहुत उपयोगी है। छपाई-सफाई सब सुन्दर है।

—अनन्त

बुद्धत्व की ओर—(उपन्यास)—लेखक—बसन्त कुमार शाक्य 'नीरद'। प्रकाशक—सीताराम शाक्य भूपति-पट्टी, फर्रुखाबाद (उत्तर प्रदेश)। पृष्ठसंख्या १९२। मूल्य २)

'बुद्धत्व की ओर' श्रीबसन्तकुमार शाक्य का एक ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसमें परिणय के पूर्व से लेकर गृहत्याग पर्यन्त भगवान् बुद्ध का जीवन-चरित्र बड़े ही

सुन्दर एवं आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने इसे लिखने में पालि तथा संस्कृत बौद्ध साहित्य का पूर्ण अध्ययन किया है और जो कुछ लिखा है, वह सब ऐतिहासिक तथ्यों से पूर्ण एवं प्रामाणिक है।

भगवान् बुद्ध का जन्म भारतवर्ष में हुआ था। वे भारतीय थे। किन्तु, खेद की बात है कि कुछ शताब्दियों तक हम भारतवासी उन्हें भूल गये थे। हमारे पड़ोसी देश लंका, बर्मा, श्याम, कम्बोडिया नेपाल, तिब्बत, चीन जापान, मंगोलिया आदि में भगवान् बुद्ध तथा उनका धर्म जन-जीवन में परिचयास है। उक्त देश तथागत की पूजा कर अपने को कृतार्थ मानते हैं। उन देशों की असंख्य जनता प्रति वर्ष भारत स्थित बौद्धतीर्थों की यात्रा करने आती है और यहाँ की मिट्टी तक को अपने देश ले जाती है, जिसकी वहाँ पूजा होती है। हमारे पूर्वजों ने ही उन्हें तथागत से परिचित कराया था और बौद्ध संस्कृति एवं धर्म प्रदान किया था, किन्तु यवन-आक्रमण एवं अनेक ऐतिहासिक परिवर्तनों के कारण हम भारतवासी तथागत तथा उनके धर्म को भूल गये थे। जब तक हम तथागत को मानते रहे, उनके बतलाये हुए मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा के मार्ग पर चलते रहे, तब तक हम सुखी एवं गौरवान्वित रहे, किन्तु तथागत से सम्बन्ध-विच्छेद होते ही हमारा पतन हो गया। यद्यपि हमारे जीवन में उनकी वाणी गूँज रही थी, हमारे प्रत्येक अनुष्ठान में उनके उपदेशों का बड़ा प्रभाव था, भारतीय संस्कृति में उनकी विचारधारायें घुलमिल गई थीं, किन्तु उनका स्वरूप ऐसा परिवर्तित हो गया था कि हम उन्हें पहचान भी नहीं सकते थे।

इधर लगभग पञ्चदशक हुये कि भारतीय भिक्षु भदन्त महावीर एवं लंका के अनागारिक धर्मपाल के सद्-प्रयत्नों से भारत में पुनः बौद्धधर्म का विगुल बजा। सम्प्रति

भगवान् बुद्ध को २५००व महापरिनिर्वाण, जयन्ती-वर्ष में तो सारे भारतवासी तथागत से परिचित हो गये हैं। जनता तथा सरकार द्वारा भगवान् बुद्ध की जो पूजा एवं सम्मान किया गया है, वह इस बात का द्योतक है कि हम भारतवासी अब तथागतको पहचान गये हैं। अपने भूले हुए बुद्ध-रत्न को पा गये हैं। उसके साथ ही धर्म एवं संघ की शरण भी हमें शीघ्र प्राप्त होगी।

ऐसे शुभावसर पर श्रीबसन्तकुमार शाक्य ने 'बुद्धत्व की ओर' लिखकर भारतीय जनता का बड़ा कल्याण किया है। मैंने इस ग्रन्थ को आद्योपान्त पढ़ा है। ग्रन्थ की शैली, भाषा, वर्णन एवं विषय-चयन बड़ा ही सुन्दर है। सिद्धार्थकुमार के वैवाहिक जीवन का चित्र लेखक ने बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। केलि-क्रीड़ाएँ, हाव-भाव, संगीत एवं लास्य के चित्रण में लेखक को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। ग्रन्थ में प्रारम्भ से अन्त तक जितने भी उपाख्यान या वार्ताएँ आई हुई हैं, सब बौद्धधर्म के अनुकूल तथा भगवान् बुद्ध के जीवन से सम्बद्ध हैं। लेखक ने काल्पनिक बातों से दूर रह कर इस ग्रन्थ को ऐसा प्राणवान् एवं रोचक बनाया है कि इसे पढ़ते समय पाठक तन्मय हो जाता है।

भगवान् बुद्ध तथा बौद्धधर्म पर हिन्दी में बहुत ही कम लिखा गया है उपन्यास तो अँगुली पर गिनेमात्र को ही हैं। जो हैं भी, वे अनेक भ्रान्तियों से पूर्ण हैं, जिन्हें पढ़कर दुःख ही होता है। यह ग्रन्थ हिन्दी बौद्ध साहित्य में लेखक की एक महान् देन है। हम लेखक के कृतज्ञ हैं और उन्हें हार्दिक बधाई देते हैं। आशा है जनता इस ग्रन्थ को अपनाएगी और लेखक को इस महत्वपूर्ण रचना के प्रति सम्मान प्रदान करेगी।

—भिक्षु धर्मरक्षित

(पृष्ठ १७५ का शेषांश)

बहुत से संस्कृत ग्रन्थों का चीनीभाषा में अनुवाद किया। भारतीय धर्म और साहित्य के प्रति चीनी जनता में अनुराग बढ़ाने में वे बहुत सहायक हुये। अनेक देशों का भ्रमण करने के कारण इनका अनुभव बहुत विस्तृत और गहरा था। इन्होंने अपनी यात्रा का एक वर्णन भी लिखा,

पर दुर्भाग्यवश आज भी वह प्राप्य नहीं है। यदि कभी यह ग्रन्थ मिला तो एक बड़ी चीज होगी। धर्मगुरु की मृत्यु लो-यांग में ही ६१७ ई० में हुई। भारत के इस महान् विद्वान् और पर्यटक की कीर्ति को हम भूल चुके हैं, पर चीनी जनता आज तक याद रखे हुई है।



सारनाथ का हमारे राष्ट्रीय जीवन और स्वतन्त्रता से घनिष्ठ सम्बन्ध

स्कूलों में त्रिपिटक की शिक्षा दी जाय
मूलगन्धकुटी विहार का वार्षिकोत्सव सम्पन्न

७ नवम्बर को सारनाथ के मूलगन्धकुटी विहार के २६ वें वार्षिकोत्सव का शुभारम्भ करते हुए मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री डाक्टर कैलासनाथ काटजू ने कहा कि मेरी प्रबल इच्छा है कि प्रत्येक स्कूल में छात्रों को भगवान् बुद्ध का जीवनचरित्र, त्रिपिटक, जातक कथाओं और अब तक प्राप्त शिलालेखों का अध्ययन कराया जाय।

उक्त सामग्रियों के अध्ययन से ही बच्चे भारतीय बनेंगे और भारत की प्रतिष्ठा बढ़ेगी।

डा० काटजू ने कहा कि बौद्धधर्म और भारतीय स्वतन्त्रता में घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। जब तक बौद्धधर्म पर भारत में विश्वास रहा और इसका प्रचार होता रहा तब तक अपना देश स्वतन्त्र रहा। बौद्धधर्म के भारत से जाने के बाद ही भारतीयों की स्वतन्त्रता भी चली गयी।

पुनः जब भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का आन्दोलन कांग्रेस की स्थापना के साथ प्रारम्भ हुआ तो उसके दस वर्षों के बाद ही महाबोधि सभा की स्थापना हुई और बौद्धधर्म के प्रचार का आन्दोलन भी सभा के माध्यम से स्वतन्त्रता आन्दोलन के साथ-साथ चला। नमक सत्याग्रह के समय बोधिवृक्ष पुनः अपने देश में प्रतिष्ठित किया गया

और भारत को स्वतन्त्रता मिलने के बाद 'सिंह स्तम्भ' तथा 'अशोकचक्र' को ही राष्ट्र का प्रतीक स्वीकार किया गया। इस प्रकार देखा जाता है कि बौद्धमत का हमारे राष्ट्रजीवन और स्वतन्त्रता से बड़ा सम्बन्ध है।

अब इसमें कोई सन्देह नहीं कि स्वतन्त्र भारत में बौद्धधर्म का तेजी से प्रचार होगा। क्योंकि मनुष्य ने विज्ञान में काफी प्रगति की है किन्तु जहाँ तक यह सवाल है कि मनुष्य मनुष्य के साथ कैसा व्यवहार करे, विगत दो हजार वर्षों में किसी ने नहीं बताया। विज्ञान में प्रगति हुई परन्तु धार्मिक-नैतिक शिक्षा में मनुष्य जाति ने कोई प्रगति नहीं की। इस दिशा में कोई मत, बौद्धधर्म से आगे नहीं बढ़ा।

आज इस मत को व्यवहार में लाने की अति आवश्यकता है। क्योंकि भगवान् बुद्ध के उपदेशों का सार है 'प्रेम' और 'दया' जिसके आधार पर ही विश्व में शान्ति और मानव-मानव

के बीच समता स्थापित की जा सकती है।

आपने कहा कि सारनाथ का हमारे राष्ट्रीय जीवन और स्वतन्त्रता से घनिष्ठ सम्बन्ध है। सारनाथ का काया-पलट किया गया है और अब जनता का कर्तव्य है कि भगवान् बुद्ध के उपदेशों को ग्रहण कर जन-कल्याण की भावना सारे विश्व में फैलाये।



डा० कैलासनाथ काटजू

डाक्टर काटजू ने बौद्धधर्म की चर्चा करते हुए कहा कि धर्म तो पुराना है उसे जो ग्रहण करना चाहते हैं वे उसे ग्रहण करें ही पर बौद्धधर्म के प्रेम और दया के उपदेश सम्पूर्ण विश्व को मानने चाहिये। डाक्टर काटजू ने बौद्धधर्मावलम्बियों से अपील की कि वे यदि धर्म अपनाते हैं तो उसका पूर्णरूपेण कार्यान्वय करें। धर्म अनिवार्य है पर कोई यदि ऐसा नहीं चाहता तो वह कम से कम प्रेम और दया के रास्ते पर चले। इससे हमारा रास्ता सुदृढ़ बनेगा और हम अपने निर्धारित लक्ष्य तक सरलतापूर्वक पहुँच सकेंगे।

प्रारम्भ में पालि में मंगलाचरण हुआ। लहाखी छात्रों ने भी अपनी भाषा में मंगल-गीत गाये। भदन्त शासनश्री महास्थविर ने पञ्चशील दिया। तदुपरान्त स्वर्गीय डाक्टर भीमराव अम्बेडकर के लिए भिक्षु धर्म-रक्षित द्वारा श्रद्धाञ्जलि-प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया। प्रस्ताव के उपरान्त सभी लोग दो मिनट तक खड़े होकर मौन रहे।

भिक्षु संघरत्न ने महाबोधि सभा सारनाथ का वार्षिक विवरण उपस्थित किया तथा स्वागत किया। तदुपरान्त श्री जी० सी० लाल, श्री शंकरानन्द शास्त्री, श्री जी० के० माने एम० पी०, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, श्री ज्योतीन्द्र मोहन मजूमदार और श्री रघुनाथ सिंह एम० पी० के भाषण हुए। सभा का कार्य-संचालन भिक्षु धर्म-रक्षित ने किया।

श्री शंकरानन्द शास्त्री ने कहा कि भारत की स्वतन्त्रता कायम रखने के लिए बौद्धधर्म की शरण लेनी ही पड़ेगी। धर्म को पूरी तरह न अपनानेवाले गीदड़ हैं। जिन्हें इसे अपनाना है वे इसमें पूर्ण रूप से भाग लें अन्यथा उन्हें इसमें आने की आवश्यकता नहीं।

श्री मजूमदार ने कहा कि सरकार को इस धर्म को विकसित करना चाहिये। बौद्धधर्म अन्य देशों में तेजी से विकसित हो रहा है। हमारे विद्यार्थियों को भी इसमें दिलचस्पी लेनी चाहिये।

श्री जी० के० माने ने नवबौद्धों के उद्धार के लिए अपील करते हुए कहा कि जो धर्म अपनाता है, उसे पूरी मदद की आवश्यकता होती है।

सरकार ने भगवान् के चिह्नों पर चलने का निश्चय किया है, अतः स्वाभाविक है कि सरकार उन नवबौद्धों का मन दुःखित न करे। भारत में नवबौद्धों की विलकुल कद्र नहीं की जाती। शिक्षा की वृत्ति बदलती जा रही है। शिक्षा में पिछड़ी जातियों के लिए जो छात्रवृत्ति केन्द्रीय सरकार ने लागू की है उसे प्रादेशिक सरकारें कार्यान्वित नहीं कर रही हैं, अतः मैं अपील करता हूँ कि नवबौद्धों के उद्धार के लिए प्रादेशिक सरकारें शीघ्र ही कदम उठायें।

६ प्रस्ताव पास—अधिवेशन में ६ प्रस्ताव स्वीकृत हुए जो इस प्रकार हैं—राजकीय संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी में पालि और बौद्धदर्शन विषयों की पढ़ाई आरम्भ की जाय। आगरा विश्वविद्यालय के बी० ए० और एम० ए० कक्षाओं में पालि की पढ़ाई शुरू की जाय। गोरखपुर विश्वविद्यालय में भी उक्त विषयों की पढ़ाई हो और प्राचीन बौद्ध तीर्थस्थानों पर जहाँ-जहाँ विश्वविद्यालय से सम्बन्धित कालेज हैं वहाँ भी पालि और बौद्ध-दर्शन की पढ़ाई शुरू की जाय। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति से अनुरोध किया गया कि उनके यहाँ पालि और बौद्ध-दर्शन की पढ़ाई के लिए स्वतन्त्र विभाग खोला जाय।

पाँचों प्रस्तावों को भिक्षु धर्मरक्षित ने प्रस्तुत किया और अन्तिम प्रस्ताव भिक्षु आनन्द कौसल्यायन ने। अन्तिम प्रस्ताव द्वारा नागपुर में उस जमीन को 'अम्बेडकर स्मृति सोसाइटी' को देने के लिए अनुरोध किया गया जहाँ डाक्टर अम्बेडकर ने बौद्धधर्म ग्रहण किया था। इस प्रस्ताव की व्याख्या करते हुए भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने कहा कि बौद्धधर्म के इतिहास में धर्मचक्र प्रवर्तन के बाद, डा० अम्बेडकर के साथ लाखों व्यक्तियों का बौद्धधर्म ग्रहण करना दूसरी घटना थी। इसलिए उस स्थान पर डाक्टर अम्बेडकर की स्मृति बनाना आवश्यक है।

समारोह के अन्त में भारतीय महाबोधि सभा के मंत्री श्री देवप्रियवलि सिंह ने धन्यवाद दिया।

डा० काटजू का स्वागत—मध्यप्रदेश के मुख्य मंत्री डाक्टर कैलासनाथ काटजू मूलगन्ध-कुटी-विहार सारनाथ का सभापतित्व करने के लिए ११ बजे दिन में अपने निजी वायुयान से बाबतपुर हवाई अड्डे पर पहुँचे।

बौद्ध-जगत

१८१

हवाई अड्डे पर भिक्षु संघरत्न, भिक्षु धर्मरक्षित, विजयानगरम् के महाराजकुमार डाक्टर विजय, जिलाधीश श्री महेशचन्द्र शर्मा, एम० एम० पी० श्री टण्डन आदि ने आपका स्वागत किया। वावतपुर हवाई अड्डे से आप सीधे विजयानगरम् भवन गये। विजयानगरम् भवन में भी आपका हार्दिक स्वागत किया गया।

जुलूस—समारोह के पूर्व भगवान् बुद्ध की अस्थियों को मंजूषा में रखकर जुलूस निकाला गया जिसमें लगभग ५०० बौद्ध-भिक्षु सम्मिलित थे।

श्रामणेर दीक्षा—६ नवम्बर को प्रातःकाल ८ बजे मूलगन्ध-कुटी-विहार में बम्बई के श्री तु० धों० गायक-वाड़ ने श्रामणेर दीक्षा ली। दीक्षा भदन्त शासनश्री महास्थविर ने दी। भिक्षु संघरत्न ने आचार्यत्व का कार्य किया तथा भिक्षु धर्मरक्षित ने धर्मोपदेश किया। दीक्षोपरान्त आपका नाम श्रामणेर शोभित रखा गया।

आप पहले बम्बई में दूध-वितरण विभाग में इन्स्पेक्टर थे। आप शीघ्र ही सारनाथ से बम्बई के लिए रवाना होंगे और वहाँ से लंका जाकर पालि तथा बौद्धधर्म का अध्ययन करेंगे। इधर आपने ४ महीना तक सारनाथ में रहकर प्रशिक्षण प्राप्त किया है।

भिक्षुओं को कठिन चीवर—६ नवम्बर को दोपहर में बर्मा के रंगून ३९/१०१ स्ट्रीट के प्रसिद्ध व्यापारी श्री यू पो थान तथा श्रीमती थान ने अपने परिवार के साथ सारनाथ आकर २० भिक्षुओं को भोजन-दान के साथ कठिन-चीवर का भी दान दिया। इस दान में वाराणसी के भिक्षु भी सम्मिलित हुए थे। यह कठिन-चीवर भिक्षु संघरत्न को दिया गया।

उपसम्पदा—६ नवम्बर को सायंकाल सारनाथ में महाबोधि सभा के सीमा-भवन में ११ भिक्षुओं की उपस्थिति में भिक्षु कात्यायन तथा भिक्षु राष्ट्रपाल की उपसम्पदा हुई। उपसम्पदा में भदन्त शासनश्री महास्थविर ने उपाध्याय का भार सम्हाला और कर्मवाचा भिक्षु संघरत्न तथा भिक्षु धर्मरक्षित ने पढ़ी। तदुपरान्त लंका और बर्मा के ४ भिक्षुओं ने भी कर्मवाचा का पाठ किया। उपसम्पदा के समय श्री जी० के० माने एम० पी०, श्री शंकरानन्द शास्त्री, श्री चन्दनराम, श्री लच्छन-

सिंह और श्री अनन्त रामचन्द्र कुलकर्णी भी दर्शनार्थ उपस्थित थे। अजमेर के प्रतिनिधि भी उक्त अवसर पर मौजूद थे।

भिक्षु धर्मज्योति—कोलम्बो के मंगल महाविद्यालय के प्रिंसिपल तथा सारनाथ के महाबोधि कालेज के भूतपूर्व व्यवस्थापक भिक्षु धर्मज्योति एक यात्री दल के साथ ५ नवम्बर को सारनाथ आये। इस यात्री दल ने सारनाथ के सभी लंका, बर्मा, चीन, तिब्बत भारत और लद्दाख के भिक्षुओं को भोजन-दान दिया।

रात्रि में मूलगन्ध कुटी विहार में महास्थविरजी ने उन्हें उपदेश दिया।

भिक्षु धर्मरक्षित का सम्मान—लंका के यात्रियों द्वारा प्राप्त कठिन चीवर भिक्षु धर्मरक्षित को प्रदान किया गया। स्मरण रहे वर्षावास की समाप्ति के उपरान्त भिक्षु संघ द्वारा किसी एक भिक्षु को उसके सम्मान के लिए कठिन चीवर प्रदान किया जाता है। चूँकि इस चीवर को कोई एक ही भिक्षु प्राप्त करता है, इसीलिए इसे कठिन चीवर कहते हैं।

यात्री दल—इस वर्ष उत्सव में सम्मिलित होने के लिए अजमेर से लगभग २००, लंका से १००, लद्दाख से १०, तिब्बत से ५०, पाकिस्तान से ५, नेपाल से ४०, बर्मा से ३० यात्री आये थे। सारनाथ में बड़ी चहल-पहल थी। उसके कण-कण में उत्साह की लहर थी।

अन्य कार्यक्रम—७ नवम्बर को प्रातःकाल प्रभात फेरी हुई। ८ बजे भगवान् बुद्ध की पवित्र अस्थियों का प्रदर्शन किया गया। दोपहर में भिक्षुओं को भोजन-दान दिया गया तथा रात्रि में 'भगवान् बुद्ध' नाम चल-चित्र दिखलाया गया, जो इस अवसर पर दिखलाने के लिए विशेष रूप से बम्बई के फिल्म डिवीजन से मंगाया गया था।

अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध सम्मेलन—८ नवम्बर को प्रातःकाल ८ बजे से ११-३० तक श्री बी० के० गायकवाड़ एम० पी० के सभापतित्व में अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध सम्मेलन मूलगन्ध-कुटी विहार में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में अध्यक्ष के भाषण के अतिरिक्त श्री अनन्त रामचन्द्र कुलकर्णी (नागपुर), श्री चन्दनराम (पंजाब), भिक्षु आर्य-

वंश (दिल्ली), श्री शंकरानन्द शास्त्री (दिल्ली), लामा लोबजंग, श्री जी० सी० लाल, श्री जी० के० माने एम० पी० (बम्बई), श्री देवप्रियवलि सिंह, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, श्री धनसिंह उपासक (अजमेर) और श्री आर० एस० छावरा (अजमेर) के भाषण हुए। सबने बौद्धधर्म के प्रचार सम्बन्धी अनेक कठिनाइयों के प्रति अपने विचार प्रगट किए।

भिक्षु धर्मरक्षित ने प्रारम्भ में सबका स्वागत किया तथा अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध सम्मेलन के उद्देश्य पर प्रकाश डाला। अन्त में उन्होंने धन्यवाद भी दिया।

प्रस्ताव

सम्मेलन में सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ—“बौद्धों की अन्तर्राष्ट्रीय सभा का यह अधिवेशन प्रस्ताव करता है कि अनेक गैरसमझ अबौद्धों की ओर से नव-दीक्षित बौद्धों पर होनेवाले अत्याचारों आदि की जो रिपोर्टें समाचारपत्रों में छपती रहती हैं, उनके बारे में निष्पक्ष जाँच करके एक रिपोर्ट प्रकाशित करने के लिए ५ सदस्यों की एक समिति स्थापित की जाय और उसे आदेश दिया जाय कि वह निकट भविष्य में ही अपनी रिपोर्ट प्रकाशित कर दे।”

प्रस्ताव के स्वीकृत होने के उपरान्त श्री देवप्रियवलि सिंह, श्री बी० के० गायकवाड़, भिक्षु आनन्द कौसल्यायन, श्री अनन्त रामचन्द्र कुलकर्णी, और श्री जी० के० माने की एक समिति बनाई गई और समिति को अधिकार दिया गया कि अपेक्षा होने पर अन्य दो सदस्यों को सहयोगी सदस्य मनोनीत कर ले। भदन्त आनन्द कौसल्यायन इस समिति के संयोजक चुने गये।

मूलगन्ध कुटी विहार के वार्षिकोत्सव के अधिवेशन में स्वीकृत सभी प्रस्ताव इसमें भी स्वीकृत हुए।

महाबोधि कालेज का वार्षिकोत्सव—८ नवम्बर को अपराह्न में २ बजे श्री ज्योतीन्द्र मोहन मजूमदार के सभापतित्व में सारनाथ के महाबोधि कालेज का वार्षिकोत्सव मनाया गया। प्रिंसिपल द्वारा वार्षिक विवरण पढ़ने के उपरान्त छात्रों के कविता-पाठ, वार्ता आदि हुए। तदुपरान्त भदन्त आनन्द कौसल्यायन, श्री देवप्रियवलि-सिंह और सभापति के भाषण हुए।

प्रदर्शनी का सफल आयोजन—महाबोधि कालेज सारनाथ के अध्यापकों तथा छात्रों ने कालेज भवन में ही एक सुन्दर प्रदर्शनी का आयोजन भी उक्त अवसर पर किया था, जिसका उद्घाटन श्री जी० के० माने एम० पी० ने किया। प्रदर्शनी में पुरातत्व, कृषि, कलाकौशल, शिक्षा, इतिहास आदि विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ तथा चित्र संग्रहीत थे। विभिन्न बौद्धदेशों की कलात्मक वस्तुओं को देखकर सभी ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की।

दीक्षा समाचार—भिक्षु राष्ट्रपाल ने २२ अक्टूबर को सुगतगाँव (भुसावल) में लगभग १००० आदिमियों को बौद्धधर्म की दीक्षा दी।

भिक्षु राष्ट्रपाल ने ही १० नवम्बर को आगरा के निकटवर्ती कौलक्खा नामक ग्राम में एक हजार व्यक्तियों को ससमारोह दीक्षा दी। दीक्षोपरान्त उन्होंने नव-दीक्षित बौद्धों को धर्मोपदेश दिया।

गत मास में खानदेश भुसावल में भिक्षु राष्ट्रपाल ने २५ हजार व्यक्तियों को दीक्षा दी। इसके अतिरिक्त चौपड़ा, देवधाके, तलबेल, याषल, नान्द्रे, कलमसरे, शैन्दुणी तथा उतराण में कुल मिलाकर ७५ हजार लोगों को धर्म-दीक्षा दी। इस अवसर पर भुसावल के कर्मठ कार्य-कर्त्ताओं ने बड़े प्रेम एवं लगन से प्रचार-कार्य किया था।

बौद्धों पर जैनियों के अत्याचार—नई दिल्ली के भिक्षु राष्ट्रपाल ने सूचित किया है कि पूर्वी खानदेश भुसावल में अहिंसा के पुजारी धनाढ्य जैनियों ने अपने धर्म की आड़ में बौद्धधर्म ग्रहण करने के कारण २० महिलाओं को अपनी सूती मिल्स की नौकरी से हटा दिया है और उन्हें यह कहकर निकाला है कि “जाओ हम तुम्हें काम पर नहीं रखते, तुमने तो बौद्धधर्म अपना लिया है।” घटना में कहा गया है कि उन बेचारी निर्धन महिलाओं को मिल मैनेजर तथाकथित जैनी ने धक्के देकर बाहर निकलवा दिया और मजदूरी के उनके जो पैसे शेष थे उन्हें भी रोक लिया। खेद का विषय है कि अदृश्य जीवों पर दया करनेवाले एक जैनी मैनेजर द्वारा बौद्धधर्म के नाम पर क्यों निष्कासित किया गया और उन्हें सताया

बौद्ध-जगत

१८३

गया मैं ? जैन भाइयों से पूछना चाहता हूँ कि क्या यही श्रमण-संस्कृति और भगवान् महावीर की शिक्षा है ?

ज्ञात हुआ है कि भुसावल के रेलवे के कुछ कर्म-चारियों के साथ भी ऐसी घटनाएँ घटी हैं। इन सब बातों को लेकर पूरे महाराष्ट्र में क्षोभ तथा असन्तोष व्याप्त हो गया है। मेरी समझ में नहीं आता कि बौद्धधर्म ग्रहण करने से जैनियों की कौन-सी बुराई हो रही है ?

एटा में दीक्षा-समारोह की तैयारी—एटा जिला-न्तर्गत सहावर में १९, २० अप्रैल '५८ को सामूहिक धर्म-दीक्षा की अभी से जबरदस्त तैयारी हो रही है। इस दीक्षा-समारोह के संयोजक भारतीय बौद्ध महासभा उझ्यानी के श्री पुरुषोत्तम हैं।

छत्रमान भी चल बसा !—नेपाल की सुशीला अनागारिका का छोटा भाई छत्रमान भी १ अक्टूबर को चल बसा ! वह अपने पीछे छोटे-छोटे ४ बच्चों को छोड़ गया है। सबसे बड़ा लड़का इस समय केवल ९ वर्ष का है। अब घर में बच्चों के अतिरिक्त केवल उनकी माता ही संरक्षिकास्वरूप रह गयी है।

२३ सितम्बर को माता शुभलक्ष्मी का देहान्त हुआ था और उसके एक सप्ताह के पश्चात् भाई का भी देहान्त हो गया। छत्रमान बहुत ही श्रद्धालु उपासक था। दान, शील, भावना में सदा निरत रहता था। इस समय उसकी अवस्था केवल ३० वर्ष की थी। इस श्रद्धालु परिवार पर वज्रपात होने से भोजपुर (नेपाल) के बौद्ध बड़े दुःखी हैं।

देसाईगंज में धर्म प्रचार—चांदा जिलान्तर्गत देसाईगंज में २० अक्टूबर को बीड़ी मजदूर संघ के सचिव श्री जगन्नाथ मेश्राम ने श्रामणेर एस० मेधंकर को नागपुर से निमंत्रित कर अपने यहाँ बुलाया और वहाँ धर्मप्रचार कराया। ग्राम-ग्राम में दीक्षा समारम्भ भी तेजी के साथ हुआ। जितने भी ग्राम दीक्षा लेने से वंचित थे, वे सब सामूहिक रूप से दीक्षित हुए।

सतर्क रहने की आवश्यकता—ज्ञात हुआ है कि महाराष्ट्र में कुछ लोग ग्रामों में घूम-घूम कर तबला आदि

बजाते, गीत गाते लोगों को एकत्र करते हैं और बौद्धधर्म के विरुद्ध प्रचार करते हैं। कुछ स्थानों से ऐसे भी समाचार प्राप्त हुए हैं कि वे लोग ही बौद्धों की सभा में जाकर ऐसे उत्तेजक भाषण देते हैं कि मारपीट होने लगती है। वास्तव में ये सभी ऐसे अवबोध हैं, जो कि बौद्धधर्म की प्रगति में बाधा डालना चाहते हैं। हमारे बौद्ध कार्य-कर्त्ताओं को इनसे सतर्क रहने की आवश्यकता है। जो लोग भी ऐसा प्रचार करते मिलें, उसकी सूचना तत्काल सभी केन्द्रों तथा कार्यकर्त्ताओं को देने का प्रयत्न करना चाहिए, ताकि सब लोग उनकी गतिविधि पर कड़ी नजर रख सकें।

गाजियाबाद में बौद्ध-सभा—४ नवम्बर को भिक्षु कात्यायन के सम्मान में एक बौद्ध-सभा की गई, जिसके संयोजक श्री चेताराम थे। सभा में श्री चेताराम, श्री गुरु-दयाल सिंह, श्री लखीराम आदि के सारगर्भित बौद्धधर्म पर भाषण हुए। अन्त में भिक्षु कात्यायन ने उन्हें उपदेश दिया और उपसम्पदा हेतु सारनाथ के लिए प्रस्थान किया। गाजियाबाद के बौद्धों ने भिक्षु कात्यायन को चीवर आदि परिष्कार भी प्रदान किये।

बुद्ध-जयन्ती—बुद्धाब्द २५०२ की बुद्ध-पूर्णिमा आगामी ३ मई को पड़ेगी। इसी दिन सारे संसार में बुद्ध-जयन्ती मनाई जायेगी। भारत सरकार ने भी ३ मई १९५८ को सार्वजनिक अवकाश का दिन घोषित किया है।

नवीन ग्रन्थ—इस मास में विशुद्धिमार्ग दूसरा भाग, ओम् मणि पद्मे हुँ, बौद्धधर्म ही मानव धर्म, बौद्ध-कला-कृतियाँ और पालि-व्याकरण नामक बौद्धधर्म के ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं।

रावल गाँव में बौद्धदीक्षा—३ नवम्बर को नासिक जिलान्तर्गत रावल गाँव में २००० व्यक्तियों ने बौद्ध दीक्षा ली।

मद्रास और मैसूर में—मद्रास और मैसूर में भी दीक्षा समारम्भ होने जा रहा है। बंगलोर, मैसूर, कोलार (गोल्ड फ़िल्डस) और मद्रास में क्रमशः २६, २७, २८ और २९ नवम्बर को धर्मदीक्षा का कार्यक्रम निश्चित हुआ है।

रामतीर्थ ब्राह्मी तैल

(रजिस्टर्ड) स्पेशल नं० १ (औषधियुक्त)

इसके इस्तेमाल से दिमाग में वृद्धि होती है। इससे बाल धुँधराले तथा काले होकर चमकीले होते हैं। गंजापन दूर कर नये बालों की वृद्धि होती है। स्मरण शक्ति तथा नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। गाढ़ी निद्रा आती है। प्रत्येक ऋतु में स्त्री-पुरुषों तथा बालकों को अपूर्व लाभ मिलता है।



बड़ी शीशी के लिए मय डाकखर्च और पैकिंग ५॥॥) का मनिआर्डर भेजें और ३॥॥) का छोटी के लिए। वी० पी० नहीं भेजी जाती।

श्री रामतीर्थ योगाश्रम

उमेशधाम, विन्सेन्ट, स्ट्रीट नं० २

दादर (सेण्ट्रल रेलवे) बम्बई १४

टेलिग्राम-प्राणायाम, दादर, बम्बई

फोन—६२८९९

BOOKS ON BUDDHISM

ENGLISH TRANSLATION OF ORIGINAL ROMAN SCRIPT

	Rs.	As.		Rs.	As.
Middle Lench Sayinga I			Compendiam of Philosophy		
by I. B. Horner	18	6	by S. Z. Aung & Mrs. Rhys.		
Book of the Kindred Sayins			Dauids	18	6
Vol. I by Mrs Rhyo Dauids.	18	6	Mahavastu Vol. III		
Do. Vol. II			by J. J. Jones	30	—
by F. L. Woodward	18	6	Gataka Mala by J. S. Speyer	18	6
Do. Vol. III by Do.	18	6	Psalms of the Brithern by Mrs.		
Book of the Gradual			Rhys Dauids.	13	5
Saying Vol. I by Do.	18	6	Dialogues the Buddha I by T.w.		
Do. Vol. III by E. M. Hare	18	6	Rhys Dauids	16	8
Do. Vol. IV by Do.	18	6	Euglise-Pali Dictionary by A.P.		
Do. Vol V by F. L.			Buddhadutta Tahuthin	22	0
Woodward	18	6	Waven Cadeces by E.M. Here.	13	2
Psalms of the Brithnen			Book of the Disciplinc Part I		
by Mrs. Rhyo Dauids	21	14	by I.B. Horner	13	2
Mahvamsa by W. Geiger	11	—	Do. Vol. II by Do.	13	2
Culavamsa I by W. Do.			Do. Vol. IV by Do.	50	0
Do. II by Do.			Do. Vol. V by Do.	52	8
			Mehavastu Vol. I by J.J. Jones	17	2

Apply:—

Maha Bodhi Book Agency,

4-A, Bankim Chatterjee street, Calcutta—12

संयुक्त निकाय

दो भागों में

अनुवादक

भिक्षु जगदीश काश्यप

भिक्षु धर्मरक्षित

सुत्त पिटक के तीसरे ग्रन्थ संयुक्त निकाय का हिन्दी अनुवाद दो भागों में प्रकाशित हो गया है। पृष्ठ संख्या क्रमशः ५२८ तथा ४४२। दोनों भागों का मूल्य क्रमशः ७) और ६) है।

बुद्धोपकृत बौद्धयोग का उत्कृष्ट ग्रन्थ

विशुद्धि मार्ग

भिक्षु धर्मरक्षित

द्वारा हिन्दी में अनूदित

‘विशुद्धि मार्ग’ पालि-साहित्य का एक अमूल्य ग्रन्थ-रत्न है। इसमें बौद्ध-दर्शन की विवेचनात्मक गवेषणा के साथ योगाभ्यास की प्रारम्भिक अवस्था से लेकर सिद्धि तक की सारी विधियाँ सुन्दर ढंग से समझाई गई हैं। इस ग्रन्थ में बौद्धधर्म का कोई भी ऐसा अंग नहीं है जो अछूता हो। एक प्रकार से इसे बौद्धधर्म का विश्वकोश कहा जा सकता है। यद्यपि विशुद्धिमार्ग प्रधानतः योग-ग्रन्थ है, तथापि बौद्धधर्म का जैसा सुन्दर निरूपण इसमें किया गया है, वैसा अन्य किसी भी ग्रन्थ में प्राप्त नहीं है। योगियों के लिए तो यह गुरु के समान निर्देश करने वाला महोपकारी ग्रन्थ है।

यह दो भागों में मुद्रित हो गया है। पहले भाग में समाधि निर्देश पर्यन्त ११ परिच्छेद हैं और दूसरे में शेष। पहला भाग ४३० पृष्ठों का है और दूसरा ३५०। दोनों के मूल्य क्रमशः १०) और ८) हैं। ग्रन्थ का आकार गायल है।

प्राप्तिस्थान :—

व्यवस्थापक, महाबोधि पुस्तक भण्डार,
सारनाथ, वाराणसी।

पालि व्याकरण

भिक्षु धर्मरक्षित

द्वारा लिखित

पालि सीखनेवालों के लिए परम उपयोगी पुस्तक। इससे सुन्दर और सरल पुस्तक आज तक कोई दूसरी उपलब्ध नहीं। हाईस्कूल से एम. ए. तक कोसों में स्वीकृत। मूल्य २।)

प्राप्तिस्थान—

व्यवस्थापक, महाबोधि पुस्तक-भण्डार,
सारनाथ, वाराणसी।

बौद्धधर्म ही मानवधर्म

स्वर्गीय बाबा साहब डाक्टर भीमराव अम्बेडकर द्वारा लिखित तथा भिक्षु धर्मरक्षित द्वारा सम्पादित अद्भुत पुस्तक। सभी बौद्धों को इसे अपने पास रखना चाहिए। बाबा साहब की अन्तिम इच्छा क्या थी? इसमें पढ़ें। मूल्य १।)

प्राप्तिस्थान—

व्यवस्थापक, समता प्रकाशन, कवीरनौरा, वाराणसी

भारत सरकार से “रजिस्टर्ड”

सफेद दाग का शत्रु

इस रामबाण दवा से स्त्री, पुरुष, बालकों के शरीर पर के दाग ऐसे निकल जाते हैं कि वह कहाँ थे इसका पता नहीं लगता। हजारों ने अनुभव करके प्रशंसापत्र भेजे हैं। मूल्य ५) रु०। डा० वय १।) रु०। अधिक विवरण मुफ्त माँगाकर दीजिये।

वैद्य क० आर० बोरकर (ध० ६०)

मु० पो० मंगरुलपीर, जि० अकोला (विदर्भ)

सफेद कोढ़ के दाग

यह ऐसे निकल जाते हैं कि वे कहाँ थे इसका पता भी नहीं लगता।

भगवान जी जैन पांचोरा (खानदेश) की पुत्री का कोढ़ अच्छा हो गया और आपने हमको ५१) रु० इनाम दिया। ऐसे कई इनाम मिले और कोढ़ के हजारों लोग अच्छे हो गये। मू० ६) रु० डा० ख० १५ आ०, विवरणपत्र मुफ्त माँगावे। नक़्क़ालों से सावधान रहें।

वैद्य वी० आर० बोरकर, आयुर्वेद भवन (ध० ६०)

मु० पो० मंगरुलपीर, जि० अकोला (विदर्भ)

हिन्दी में बौद्धधर्म की पुस्तकें

विभुविमार्ग (पहला भाग) — भिक्षु भर्मेरक्षित	१०)	तुलसी के तीन पात — भिक्षु आनन्द कौसल्यायन	१)
विभुविमार्ग (दूसरा भाग)	८)	बौद्ध-चर्या-विधि — भिक्षु भर्मेरक्षित	१०)
दीव्यनिकाय — राहुल सांकृत्यायन	६)	थेरी गायार्थ — भरतसिंह उपाध्याय	११)
मज्झिम निकाय —	६)	बुद्ध और बौद्ध साधक —	११)
विजय पिटक —	६)	धम्मपद — राहुल सांकृत्यायन	११)
संयुक्त निकाय — भिक्षु ज० काश्यप और भिक्षु		बुद्धधर्म के उपदेश — भिक्षु भर्मेरक्षित	२)
भर्मेरक्षित प्रथम भाग ७), द्वितीय भाग	८)	बौद्ध विभूतियाँ —	१)
बोधिव्याख्यान — शान्तिभिक्षु	१०)	लंका-यात्रा —	११)
धम्मपद (कथाओं के साथ) — भिक्षु भर्मेरक्षित	२१)	नेपाल-यात्रा —	११)
धम्मपद (गुटका) —	१)	कुशीनगर का इतिहास	२१)
तथागत-हृदय —	११)	पालि-पाठ-माला —	१)
पालि व्याकरण —	२१)	जातिभेद और बुद्ध —	१)
प्रथम बुद्ध-सन्देश —	११)	तेलकटाह गायथा —	१०)
धम्मपद — अवधकिशोर नारायण	११)	बौद्ध-शिक्षु-बोध —	१)
सुत्तनिपात — भिक्षु भर्मेरक्षित	३)	कुशीनगर-दिग्दर्शन —	१)
बुद्धकथा — भिक्षु भर्मेरक्षित	१)	तथागत का प्रथम उपदेश —	१)
पालि महाव्याकरण — भिक्षु जगदीश काश्यप	६)	भारनाथ-दिग्दर्शन —	१)
थेरी गायथा — भिक्षु भर्मेरक्षित	२)	बुद्धकालीन भारत का भौगोलिक परिचय	११)
भगवान् बुद्ध की शिक्षा — देवामन्यु भर्मेरक्षित	१०)	पालि जातकावली — बटुकनाथ शर्मा	२१)
महाकाव्यमय तथागत — वेदराज प्रसाद	११)	बुद्ध-वचन — भिक्षु आनन्द कौसल्यायन	११)
बुद्धचर्या — राहुल सांकृत्यायन	६)	बुद्धवचनामृत — भिक्षु शास्त्रनर्था	१)
तथागत — आनन्द कौसल्यायन	११)	नालन्दा विश्वविद्यालय — चन्द्रिका सिंह उपाध्याय	१०)
बुद्ध और उनके अनुचर —	११)	श्रद्धा के फूल — (कहानी-संग्रह) कुमारी विद्या	१०)
बौद्धचर्या पद्धति — बोधानन्द महास्वामि	११)	बुद्ध-अर्चना — (कविता)	१०)
ओम् भणि पयो हुं — भर्मेरक्षित और लोचनम	११)	पूणिमा — (कविता)	१०)
बौद्ध कहानियाँ — ज्योतिष हृदय	११)	कामना — (कविता)	१०)
भारनाथ-नारायणी — भिक्षु भर्मेरक्षित	११)	आदर्श बौद्ध महिलाएँ	११)
इतिवृत्तक — भिक्षु भर्मेरक्षित	११)	नारी-हृदय	११)
बौद्धयोगी के पत्र — भिक्षु भर्मेरक्षित	१)	बुद्ध-परिचय — (सचित्र)	११)
भगवान् हमारे गौतम बुद्ध — श्री० मनोहरजनप्रसाद	११)	महामानव बुद्ध — राहुल सांकृत्यायन	२१)
कपिलवस्तु-लुम्बिनी-दिग्दर्शन — श्रीविजय श्रीवास्तव	११)	बौद्धधर्म ही मानवधर्म — डॉ० भोमराव अम्बेडकर	११)

नागरी लिपि में पालि ग्रन्थ

जातकहृदय — भिक्षु भर्मेरक्षित	१)	महावंसो — भिक्षु भर्मेरक्षित	११)
विभुविमार्गदीपिका — भर्मेरक्षित कौसल्यायन	११)	धम्मचक्रपवत्तन सुत्त —	११)
नवनीत टीका —	२१)	तेलकटाहगाथा —	११)
अभिधम्मसंग्रहो —	२१)	सुत्तनिपात — भिक्षु भर्मेरक्षित	११)
पालि पाठ माला — भिक्षु भर्मेरक्षित	१)	बुद्धकथा —	११)
परियारपिटक —	११)	सिद्धान्त सुत्त — भिक्षु किशोरा	११)

सूचीपत्र के लिए २१ के विकट के साथ लिखें।

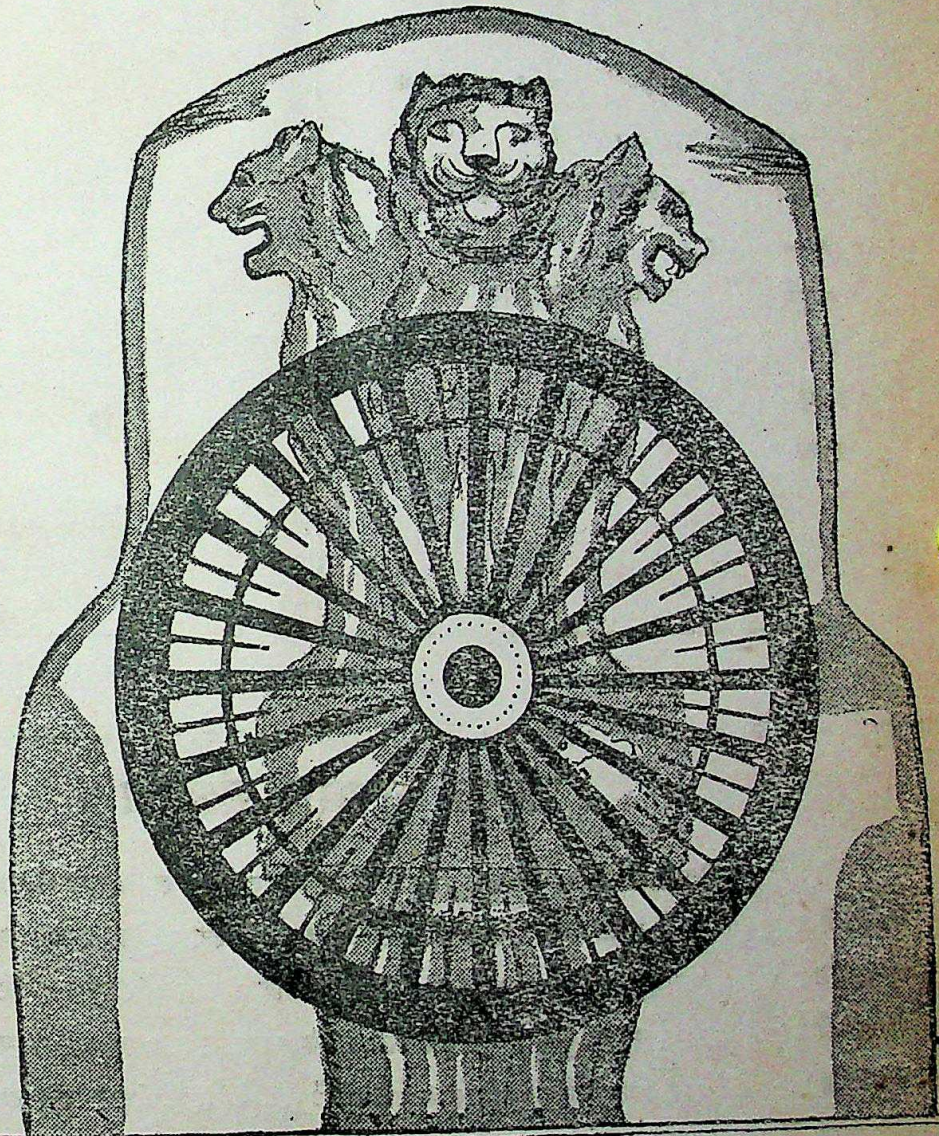
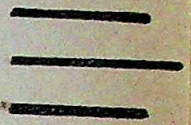
प्राप्ति स्थान :-

पहायथि पुस्तक भण्डार, मारनाथ, वाराणसी।

प्रकाशक — भिक्षु एम० संघरत्न, महायोगी सभा, मारनाथ, वाराणसी (बनारस)

मुद्रक — श्रीमच्छात्र कपूर, जलमयक निगम, गुरुकुल कांगड़ी संग्रहालय, हरिद्वार २२१-१२

धर्मदूत



महाबोधि समा का मासिक मुख-पत्र

दिसम्बर

वर्ष २२

अंक ८

एक अंक का ।

वार्षिक ४



विषय-सूची

विषय		पृष्ठ
१. बुद्ध-वचनामृत—नीच कौन है ?	...	१८५
२. बौद्धधर्म का अनित्यवाद—श्री राहुल सांकृत्यायन	...	१८६
३. नटराज वीरसेन (कहानी)—भिक्षु-धर्मरक्षित	...	१९०
४. साँची स्तूप से (कविता)—श्री इकबाल बहादुर देवसरे	...	१९४
५. सुजाता (रूपक)—श्रीकान्त व्यास	...	१९५
६. आत्म-दीप (कविता)—श्रीकृष्ण शेंदरे 'हृदयेश'	...	१९७
७. निर्वाण—बोधिसत्त्व	...	१९८
८. बौद्ध-मूर्तिकला—श्री प्रकाशनारायण शर्मा	...	२००
९. मध्यम-मार्ग—भिक्षु राष्ट्रपाल	...	२०४
१०. नये प्रकाशन	...	२०५
११. बौद्ध-जगत्	...	२०६

‘धर्मदूत’ का मराठी संस्करण

हमारे मराठी पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि ‘धर्मदूत’ का मराठी संस्करण भी प्रकाशित करने का हमने निश्चय किया है। गत वर्ष ही, जब बाबा साहब डा० भीमराव अम्बेडकर सारनाथ आए थे, तभी उन्होंने आग्रह किया था कि ‘धर्मदूत’ का मराठी संस्करण भी प्रकाशित किया जाय और इधर हमारे मध्यप्रदेश तथा बम्बई के पाठकों का भी बार-बार आग्रह हुआ है कि इस कार्य में विलम्ब न किया जाय, क्योंकि मराठी भाषी पाठकों को अनुविधा होती है। पहले कुछ दिनों तक हिन्दी-मराठी दोनों भाषाओं में ‘धर्मदूत’ संयुक्त रूप से प्रकाशित होगा और मूल्य केवल ४) वार्षिक ही रहेगा। पीछे मराठी भाषी ग्राहकों की संख्या अधिक हो जाने पर दोनों संस्करण अलग-अलग प्रकाशित होने लगेंगे। हम अपने कृपालु पाठकों एवं धर्म-बन्धुओं के सहयोग की प्रार्थना करते हैं।

व्यवस्थापक ‘धर्मदूत’, सारनाथ, वाराणसी (बनारस)।

धर्मदूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं । देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्जे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवल परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ । महावग्ग, (विनय-पिटक)

‘भिक्षुओ ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिये, लोक पर दया करने के लिये, देव-ताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो । भिक्षुओ ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्था में कल्याणकारक धर्म का उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो ।’

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष २२

सारनाथ,

दिसम्बर

बु० सं० २५०१
ई० सं० १९५७

अङ्क ८

बुद्ध-वचनामृत

नीच कौन है ?

“जो नर क्रोधी तथा वैरी है, पापी तथा ईर्ष्यालु है, मिथ्यामतधारी तथा मायावी है, वह नीच है । जो योनिज या अण्डज प्राणियोंकी हिंसा करता है, जिसे प्राणिमात्र के प्रति दया नहीं है, वह नीच है । जो गाँवों और कस्बों को घेरता तथा नष्ट करता है, जो अत्याचारीके रूप में प्रसिद्ध है, वह नीच है । जो गाँव या आरण्य में दूसरों की सम्पत्ति चोरी से ले लेता है, वह नीच है । जो ऋण लेकर माँगने पर नहीं देता और कहता है कि मैं तुम्हारा ऋणी नहीं हूँ, वह नीच है । जो किसी चीज की इच्छा से मार्ग में चलते हुए नर को मार कर कुछ ले लेता है, वह नीच है । जो अपने या पराये धन के लिये झूठी गवाही देता है, वह नीच है । जो जबरदस्ती या प्रेमभाव से बन्धुओं या मित्रोंकी स्त्रियों से संसर्ग करता है, वह नीच है । जो समर्थ होने पर भी जीर्ण और बूढ़े माता-पिता का पोषण नहीं करता है, वह नीच है । जो माता-पिता भाई-बहिन या सास को वचन से ताड़ता या सताता है, वह नीच है । जो अर्थकारी बात पूछने पर अनर्थकारी बात बताता है और बात को घुमा-फिरा कर बोलता है, वह नीच है । जो दूसरों के घर जाकर स्वादिष्ट भोजन करके उसके आने पर खातिरदारी नहीं करता, वह नीच है । कोई जाति से नीच नहीं होता और न जाति से ऊँच । कर्म से नीच होता है और कर्म से नीच ।”

सुत्तनिपात १, ७

बौद्धधर्म का अनित्यवाद

श्री राहुल सांकृत्यायन

धर्मके तौर पर बौद्धधर्म ऐसा धर्म है जिसमें ईश्वर [संसार कर्ता] के लिए न कोई स्थान है, और न दैवी पुस्तक के लिए। आचारशास्त्र का आधार क्रियाओं के भले-बुरे होने पर निर्भर है और ईश्वरवादी इसमें भी ईश्वर-इच्छा को घुसेड़ते हैं। ईश्वर ने जिसको विहित किया वह अच्छी क्रिया और जिसे निषिद्ध किया वह बुरी है। यहाँ भी बौद्धधर्म अच्छाई-बुराई की कसौटी बहुजन-हित और बहुजन-सुख को मानता है। आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में भी बुद्ध-विचार भिन्न है। उन्होंने भिक्षुओं और भिक्षु-णियों को बहुजन हित के लिए सेवा-व्रती होने का आदर्श रखा था। जो ऐसा नहीं करता उसे व्यर्थ राष्ट्रपिण्ड खानेवाला [मोघं सो रट्ठपिण्डं भुज्जति] कहा था। उनको संघबद्ध होकर रहने के लिए कहा था। भिक्षुओं और भिक्षुणियों के संघ में उन्होंने आर्थिक साम्यवाद का विधान किया था, शरीर के कपड़े और भिक्षापात्र आदि आठ चीजों के अतिरिक्त सभी वस्तुओं को संघ की सम्पत्ति माना था। संघ के घर, बगीचे, आराम, छोटे-मोटे खेती या दूसरे उपयोग के हथियार, चारपाई, विस्तरा आदि सभी चीजों को सांघिक सम्पत्ति ठहराया था। बुद्ध के समय में जो घर या जमीन दान दी जाती थी उसे आगत अनागत चातुर्दिश संघ को ही दिया जाता था। यह प्रथा कम से कम चार-पाँच शताब्दियों तक रही। लंका में ईसवी सन् से पहले की दो शताब्दियों में खेतों का दान भूत-भावी चारों दिशाओं के संघों के लिए दिया गया था, इसका वहाँ के शिलालेखों से पता लगता है। यह दूसरी बात है, कि बौद्धसंघ में आर्थिक साम्यवाद अधिक दिनों तक चल नहीं सका, और ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी के साँची और भरहुत के शिलालेखों में हम भिक्षुओं-भिक्षुणियों को अपने धन से खम्भे और वेष्टनी बनवाते देखते हैं, जिसका अर्थ है, आठों चीजों के अतिरिक्त भी अब उनके पास वैयक्तिक सम्पत्ति थी।

बुद्ध को गणों की राजनीतिक व्यवस्था ही पसन्द थी। वह दासता-प्रधान युग था, इसलिए उस समय के सबसे अधिक समृद्ध और शक्तिशाली लिच्छवि (वैशाली) गण में जनतन्त्रता केवल उन्हीं लोगों के लिए थी जो लिच्छवि वंश के थे। दास जंगम सम्पत्ति थे और उनकी संख्या काफी थी। लिच्छवि भिन्न ब्राह्मण या गृहपति जातियाँ यद्यपि मुक्त थीं, पर उनको शासन में सम्मति (वोट) देने आदि का कोई अधिकार नहीं था। वह लिच्छवियों की न्यायप्रियता पर ही निर्भर था। तो भी राजतन्त्र से गणतन्त्र बेहतर थे, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। बुद्ध ने राजा की उत्पत्ति किसी दैवी स्रोत से नहीं बल्कि उसका कारण वैयक्तिक सम्पत्ति को माना। वैयक्तिक सम्पत्ति के कारण लोगों में विषमता हुई, आपस में झगड़ने लगे, एक दूसरे की सम्पत्ति को गुप्त या प्रकट रीति से छीनने की कोशिश करने लगे। इसके लिए उन्होंने एक को अपना न्यायकर्ता बनाया और वह शक्ति संचय करते करते आगे चलकर राजा बन गया।

बुद्ध का समय ईसा पूर्व छठी-पाँचवीं [निर्वाण ५४३ ई० पृ०] है। उस समय देश में आर्थिक और सामाजिक ऊँच-नीच भेद-भाव बड़े उग्र रूप में थे। आर्थिक ऊँच-नीच के भाव को हटाने के लिए तो बुद्ध ने केवल संघ में कोशिश की, लेकिन सामाजिक ऊँच-नीच के भाव को हटाने का सर्वत्र प्रयत्न नहीं किया। जातिवाद के विरुद्ध उन्होंने जो आवाज उठायी, उसका असर भी हुआ, लेकिन जातिवाद का मूल आधार आर्थिक व्यवस्था थी। ऊँची जातिवाले सम्पत्तिके स्वामी और नीची जातिवाले सम्पत्ति-वंचित थे। एक को हटाये बिना दूसरे को हटाया नहीं जा सकता। तो भी उनके संघ ने सबसे नीचे समझे जानेवाले चाण्डाल सन्तानों को भी भिक्षु-भिक्षुणी होने पर बराबर का स्थान दिया। जातियों, देशों और वर्णों का भेद मिटाकर मानवता को एक मानने का रास्ता बौद्धधर्म ने बहुत जोर

बौद्धधर्म का अनित्यवाद

१८७

से प्रशस्त किया। पंचशील में सह-अस्तित्व के जिस सिद्धान्त को माना गया है, उसे बौद्धधर्म और उसके प्रचारकों ने कार्यरूप में परिणत किया था और किसी देश की संस्कृति को नष्ट करने का ख्याल भी नहीं किया।

और क्षेत्रों में जिस तरह बौद्धधर्म की अपनी मौलिक देने हैं, दर्शन में उसकी देने और भी महान् है। यह कहना तो गलत होगा कि मार्क्स के दर्शन को उससे सहायता मिली या मार्क्सीय दर्शन के तत्वों के पास तक वह पहुँचा, पर इसमें शक नहीं है कि बौद्ध-दर्शन के विद्यार्थी के लिए मार्क्सीय दर्शन का समझना आसान हो जाता है। हम जानते हैं कि हैगल के दर्शन ने मार्क्सीय दर्शन के विकास में काफी हाथ बटाया था। हैगलीय दर्शन की असंगतियों को हटाने के लिए मार्क्सीय दर्शन का विकास हुआ। कहा ही जाता है कि हैगलीय दर्शन के रूप में जो तत्त्वदर्शन सिर के बल पर खड़ा था, उसे मार्क्स ने पैरों पर खड़ा कर दिया। हैगल विज्ञान को मूल और सत्य मानता और भौतिक तत्व या जगत् को उससे उत्पन्न। मार्क्स ने भौतिक तत्व को भौतिक

माना और विज्ञान, मन को तदुत्पन्न। बौद्ध-दर्शन का सबसे प्रबल और अन्तिम रूप बहुत कुछ वैसा ही है, जैसा कि हैगल का विज्ञानवाद। योगाचार का विज्ञानवाद क्षणिक है और अभौतिक।

बौद्ध-दर्शन का मूल सूत्र है 'सब अनित्य है'। अनित्य के लिए पीछे क्षणिक शब्द का इस्तेमाल होने लगा, और कहा जाने लगा कि 'जो सद् है, वह क्षणिक है'। जो क्षणिक नहीं है, वह सद् नहीं है। इस प्रकार बौद्ध-दर्शन ने विश्व में किसी वस्तु के नित्य एकरस होने से इनकार कर दिया। यह ऐसा सिद्धान्त है जिसका कोई अपवाद नहीं है। इसका परिणाम यह होना ही चाहिये था, कि बौद्धधर्म ईश्वर या नित्य आत्मा की सत्ता से इनकार करता। बौद्ध-दर्शन अपने को अनात्मवादी होने का अभिमान करता है। बुद्ध के जन्म के समय ही उपनिषद् का काल समाप्त हो रहा था। उपनिषद् के ऋषियों का सबसे बड़ा जोर आत्मतत्त्व पर था—आत्मा एक अभौ-



समाधि में बैठे बुद्ध भगवान की यह मूर्ति तक्षशिला में पायी गयी थी। मूर्ति पाँचवीं शताब्दी की है।

तत्त्व है, जो नित्य, अधिकारी है। उपनिषद् के इस नित्यवादी तत्त्वज्ञान को ध्वस्त करना बौद्ध दर्शन

का मुख्य लक्ष्य था, इसीलिए उपनिषद् के आत्मवाद के विरुद्ध उसका अपना नाम अनात्मवाद पड़ा। बौद्ध-दर्शन के सर्वानित्यतावादने विश्व को एक दूसरी ही दृष्टि से देखने की प्रेरणा दी। बाहरी जगत् को आत्मवादी या नित्यवादी भी परिवर्तनशील मानने के लिये तैयार थे, लेकिन वह उसके भीतर नित्य सत्ता का प्रतिपादन करते थे। इसे आत्मा, ब्रह्मका नाम देते थे। बौद्ध दर्शन ने बतलाया कि जैसे केले के स्तम्भ को भीतर से देखा जाय तो परत के बाद परत, छिलके के बाद छिलके निकलते आयेंगे, वहाँ कोई सार नहीं मिलेगा, उसी तरह विश्व के भीतर और बाहर के सारे पदार्थ किसी नित्यसार—आत्मा, ब्रह्म—वाले नहीं हैं, वह ऐसे सार से शून्य है। बौद्ध शून्यवाद की भावना यहीं से पैदा हुई। अपने सर्वानित्यतावाद को समझाने के लिए वह बादल या दीपक की लौ का उदाहरण देते हैं। बादल जिस तरह क्षण-क्षण परिवर्तनशील है, वही हालत विश्व की है। ठोस-ठोस हीरा या लोहा भी क्षण-क्षण में परिवर्तित होता रहता है। उनमें पूर्व और पर रूप में सदृशता, समानता क्यों दिखलाई पड़ती है? इसका उत्तर बुद्ध देते हैं—इसका कारण है सदृश उत्पत्ति से उत्पन्न होनेवाली चीज अपने पूर्वगामी वस्तु के समान होती है, इसलिए हमें एकता का भ्रम होता है। दीप की लौ क्षण-क्षण बदल रही है, लेकिन पुरानी लौ की जगह उत्पन्न होनेवाली नयी लौ पहले के सदृश होती है, इसलिए हम कह उठते हैं कि 'यह वही लौ है।'।

बिना अपवाद के सारे भीतरी और बाहरी जगत् को अनित्य मानने पर कार्यकारण के सिद्धान्त को भी भिन्न मानना जरूरी था। परमाणु या द्रव्य को ठोस, नित्य, ईंट माननेवाले कह सकते थे कि ये एक दूसरे से मिलकर नयी चीजों को बनाती हैं। इसका संघटन और विघटन वस्तुओं की उत्पत्ति और विनाश है। लेकिन बौद्ध दर्शन में ऐसी कोई कूटस्थ नित्य ईंट नहीं थी। सभी वस्तुएँ नित्य सार से शून्य हैं। अर्थात्, वह वस्तु नहीं, बल्कि घटनाएँ हैं। यह नहीं कहा जा सकता था कि जैसे सोना मूल तत्व है। जिसके जो ही भिन्न-भिन्न रूप लेकर, कंकण, कुण्डल बनता है। कार्य-कारण के नियम को समझाने के लिए

विशेष पारिभाषिक शब्द का बुद्ध ने इस्तेमाल किया, जो है प्रतीत्यसमुत्पाद।

जिसकी व्याख्या करते हुए वह कहते हैं 'अस्मि सति इदं भवति' (यह होने पर यह होता है।) इसके समास होनेपर यह होता है, जो अभी अभी समास हुआ, वही कारण है और जो उसके समास होने के बाद उत्पन्न हुआ, वह कार्य है। कारणके अस्तित्वके समय कार्य का नितान्त अभाव था और कार्य के अस्तित्व में आने के समय कारण का अभाव हो चुका था। कारण के भीतर छिपी कोई ऐसी नित्य सार भूत वस्तु नहीं थी जो कि कार्य के भीतर निहित है। दोनों वस्तुतः एक दूसरे से इसके सिवा और कोई सम्बन्ध नहीं रखतीं कि वे एक दूसरे से पहले या पीछे हुईं।

प्रतीत्यसमुत्पादकी कल्पना अनिवार्य हो गयी, जब विश्व को वस्तुओं का समूह नहीं, बल्कि घटनाओं का समूह माना गया। सर्वानित्यतावाद ने विश्व को घटनाओं के रूप में देखने के लिए मजबूर किया। कार्य-कारण नियम के विचारों को हटाने के बाद प्रतीत्यसमुत्पाद पर पहुँचना पड़ा, अर्थात्, प्रतीत्यसमुत्पादने पुराने कार्य-कारण के सिद्धान्त का स्थान लिया। यहाँ एक और भी धारणा को बौद्ध दर्शन ने खण्डित किया। पहले एक कारण से एक या अनेक कार्य की उत्पत्ति मानी जाती थी। उपनिषद् के ऋषि एक आत्मा से अनेक विचित्र वस्तुओं की उत्पत्ति मानते थे। भौतिक जगत् में भी एक तत्व को कारण और उससे उत्पन्न होनेवाले दूसरे तत्व को कार्य कहा जाता था। बौद्ध-दर्शन ने कहा कि कोई चीज—या उनकी भाषा में धर्म घटना—एक से नहीं पैदा होती। किसी पदार्थ का एक कारण नहीं होता, बल्कि अनेक कारण मिलकर एक बीज को पैदा करते हैं। इस सिद्धान्त को उन्होंने हेतुसामग्रीवाद, कारणसमूहवाद नाम दिया। महान् दार्शनिक धर्मकीर्ति ने कहा है—'न चैक एकं एकमस्माद् सामग्रया सर्वसम्भवः [एक से एक एक चीज नहीं, बल्कि समूह से सबकी उत्पत्ति होती है]। बहुत से हेतु [कारण] जब एकत्र हो जाते हैं, तो उनसे एक कार्य पैदा होता है। माकर्सवादी दर्शन की तरह यहाँ अनेक विरोधों के समागम को नहीं बतलाया गया है, पर

बौद्धधर्म का अनित्यवाद

१८९

यह साफ कहा गया है, कि एक कार्य अनेक कारणों के इकट्ठा होने से पैदा होता है, उन उन कारणों में अगर एक छोटी भी चीज न रहे, तो कार्य उत्पन्न नहीं हो सकता। कार्य बौद्ध-दर्शन के अनुसार कारण से बिल्कुल भिन्न चीज है, अर्थात् कारण से गुणात्मक परिवर्तन के साथ कार्य पैदा होता है। और यह गुणात्मक परिवर्तन [सर्वथा अभिनव कार्य] तब तक नहीं हो सकता, जबतक कि सभी कारण अपेक्षित परिमाण [सामग्री] में जमा नहीं हो जाते। कार्य-कारण की इस कल्पना में गुणात्मक परिवर्तन और कारणों के परिमाण की बात आ जाती है।

विश्व को इस रूप में देखते हुए बौद्धों ने सद् और असद् की व्याख्या की। पहले के विचारकों के लिए व्याख्या करना आसान था। वह कह देते थे, कि जो नित्य कूटस्थ, निर्विकार है, वह सद् है, और जो अनित्य, अकूटस्थ, सविकार है, वह असद् है। बौद्ध दर्शन में ऐसी सद् वस्तु के लिए कोई स्थान नहीं था। तो भी सर्वानित्यतावादी होते वह सद् और असद् के भेद को मानते थे। उन्होंने सद् वस्तु की व्याख्या की— 'अर्थक्रिया समर्थ-यत् तदत्र परमार्थसद् [अर्थ करने में जो समर्थ है, वह परमार्थसद् है]। लड्डू पूरी सच्चे हैं, क्योंकि वह अर्थ-क्रिया-समर्थ हैं, अर्थात् भूख दूर करने रूपी अर्थक्रिया में समर्थ हैं, सपने की लड्डू पूरी सद् नहीं है, क्योंकि वह भूख नहीं दूर कर सकती, वह अर्थक्रिया में असमर्थ है। अर्थक्रिया समर्थ को सद् ही नहीं बल्कि परमार्थसद् कहा गया है। पुराने विचारों के अनुसार जिसे सद् कहा जाता, वह कूटस्थ, नित्य, निर्विकार होने से किसी क्रिया के करने में भी समर्थ नहीं हो सकता। यदि वह प्रत्यक्ष या उस पर आधारित अनुमान का विषय नहीं है, तो ऐसे इन्द्रियों से परे निष्क्रिय वस्तु के अस्तित्व का क्या प्रमाण है। सद् के अर्थक्रिया समर्थ होने की कसौटी बहुत जबरदस्त कसौटी है, और इसमें शक नहीं, कि उसमें आधुनिक विचारों का आभास मिलता है। सत् को प्रयोग की कसौटी पर उतरना चाहिये। केवल बुद्धिवाद के आधार पर किसी चीज को सद् नहीं कहा जा सकता। बुद्धिवादियों ने इस पर यह आपत्ति उठायी, कि तुम्हारा कथन बुद्धि-संगत नहीं है, तो धर्मकीर्ति ने जवाब दिया था—'यदिदं

स्वयमर्थानां रोचते तत्र के वयं'—अगर पदार्थों को यही पसन्द है, तो हम कौन हैं [उसमें टाँग अड़ानेवाले] ?

वाद प्रामाणिक नहीं केवल पदार्थ ही सद् वस्तु की कसौटी हैं। यह बड़ा हथियार था, लेकिन इसका व्यवहार नहीं किया गया, और उसके कारण भी थे। सारी साइंस की प्रगति इसी सूत्र के ऊपर आधारित है, कि हम पदार्थों को अपना पथ-प्रदर्शक मानें।

काया और मन, रूप और विज्ञान सम्बन्धी विचारों में बौद्ध-दर्शन में मतभेद है। अद्वैतवादी विज्ञानवादी केवल विज्ञान—को ही सद् मानते हैं। हाँ, उनका यह सद् क्षणिक है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। दूसरे द्वैत-वाद रूप और विज्ञान के स्वतन्त्र अस्तित्व को मानते हैं। लेकिन यह तो दोनों मानते हैं कि मन कायस्थित है (उक्तं कायस्थितं मनः) काया या रूप से अन्यत्र मन या विज्ञान स्थित नहीं हो सकता। रूप और विज्ञान का परस्पर क्या सम्बन्ध है, यह इस वाक्य से कुछ-कुछ मालूम होता है, अर्थात् मन काया (रूप) में स्थित या आश्रित है। द्वैतवादियों ने भी नहीं माना कि विज्ञान रूप का चरम विकसित रूप है। अद्वैतवादी विज्ञानवादी तो रूप को विज्ञान का परिणाम मानते थे। वह इसके लिये जल और तरंग की उपमा देते हुए कहते हैं कि सारा जगत या रूप विज्ञान का ही परिणाम—विकार—विकास है। यह विचार हैगलीय दर्शन जैसा ही है। अगर 'विज्ञानं परिणामोऽसौ' यह जगत् विज्ञान का विकार है 'विज्ञानं परिणामोऽस्य' इस रूप का परिणाम विज्ञान है कहा जाय तो बौद्ध विज्ञानवाद शीर्षासन साँस से बचकर अपने पैरों पर खड़ा हो जायगा। ऐसा सोचने के लिए उनके दर्शन में ऐसी बातें थीं। जब हर एक कार्य अपने कारणों से बिल्कुल भिन्न, गुणात्मक तथा सर्वथा नयी वस्तु है तो रूप से विज्ञान या मन के उत्पन्न मानने में क्या कठिनाई थी, मन या विज्ञान रूप से बिल्कुल विलक्षण होते हुए भी वह उसका कार्य हो सकता है। मार्क्सवादी भौतिकवाद मन को भौतिक तत्वों की उपज मानते हुए भी यह नहीं कहता कि मन भौतिक तत्व है, बल्कि वह मन को उससे भिन्न तथा उसका चरम विकास मानता है।

बुद्ध के समय भारत में एक तरफ आत्मवादी विचारक

थे, जो आत्मा को नित्य निर्विकार मानते थे और दूसरी तरफ आत्मा की सत्ता से इनकार करने वाले भौतिकवादी विचारक भी थे, यद्यपि उनका भौतिकवाद यांत्रिक भौतिकवाद से ऊपर नहीं उठा था। बुद्ध और उनके अनुयायियों ने एक ऐसे दर्शन का प्रतिपादन किया जिसमें कितनी ही बातें सुविकसित भौतिकवाद की मिलती हैं, लेकिन वह अपने को भौतिकवादी कहने के लिए तैयार नहीं थे। दूसरी बातों में बीच का रास्ता (मध्यमा प्रतिपद) अपनाने का आग्रह बौद्ध-विचारकों को शुरू से ही रहा। यहाँ भी अपने को आत्मवाद के बीच में रखना चाहते हैं, यद्यपि अनित्यवाद के सम्बन्ध में वह मध्य का रास्ता नहीं लेते। ऐसा मानने के कारण ही धर्मों के भीतर बौद्ध-धर्म को परिगणित किया जा सका। दर्शन में इतनी उग्रता रखते भी पुनर्जन्म, योग-समाधि और दूसरी कितनी ही बातें

उनकी वैसी ही है जैसे अधिकांश धर्मों की। बौद्ध विचार कितनी ही रूढ़ियों के ऊपर जबरदस्त प्रहार करते थे। यह भारत के अद्वितीय दार्शनिक धर्मकीर्ति के इस वचन से मालूम होता है।

वेदप्रामाण्यं कस्यचित् कर्तृवादः

स्नाने धर्मेच्छा जातिवादवलेपः,

सन्तापारम्भः पापहानाय चेति

ध्वस्तप्रज्ञानां पंच लिंगानि जाड्ये ॥

वेद (ग्रन्थ) की प्रमाणता, किसी (ईश्वर) का सृष्टि कर्तापन कर्तृवाद, स्नान (करने) में धर्म (होने) की इच्छा रखना, जातिवाद (छोटी-बड़ी जाति-पात) का घसण्ड और पाप दूर करने के लिए शरीर को सन्ताप देना (उपवास तथा शारीरिक तपस्यायें करना)—ये पाँच हैं, अकलमारे लोगों की भूर्खता (जड़ता) की निशानियाँ।

ऐतिहासिक कहानी

(समय—सोलहवीं शताब्दी)

नटराज वीरसेन

भिक्षु धर्मरक्षित

सरयू और मही सरिताओं के बीच का सारा प्रदेश बुद्ध-भक्तों से शून्य-सा हो गया था। यदि कुछ बौद्ध-उपासक थे भी, तो वे अपने को बौद्ध कहने में संकोच मानते थे। इस भू-भाग के उत्तर में स्थविरों की परम्परा थी, जो थारू (=थेर) कहलाती थी। इधर दसवँधी, भूमिहार, सैथवार (=संथागार=सैथावार=सैथवार), मलाव (=मल्ल), मुराव (=मौर्य), कोइरी (=कोलिय), सकवार (=शाक्य), आदि भी परम्परागत सौगत थे, किन्तु वे भी अब अपने परमगुरु तथागत को भूल चुके थे। केवल अपने शील, आचार और धर्म-कर्म से ही बुद्धानुयायी जान पड़ते थे। उन पर सिद्धों का प्रभाव प्रधान रूप से परिलक्षित होता था, यद्यपि सिद्ध-परम्परा का भी अवसान हो चुका था। कहीं-कहीं सिद्धों के श्वेते और तारा आदि की मूर्तियाँ पूजी जाती थीं। सोलहवीं शताब्दी का यह समय बौद्धधर्म के लिए अन्धकार-युग बन गया था।

मलों का देश वीरान हो चुका था। उसके कुशीनगर और पावा जैसे प्रमुख नगर उजड़ चुके थे। लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व ही उन स्थानों के विहार यवनों द्वारा भस्म-सात कर दिये गये थे। भिक्षु-भिक्षुणियों के रक्त-प्रवाह से वहाँ की पृथ्वी रँग डाली गयी थी। अब तो केवल उन स्थानों की नष्ट-भ्रष्ट दीवारें ही अपने अंक में स्तूपों एवं विहारों को घेरे विभिन्न मुद्राओं की बुद्ध-मूर्तियों तथा कला-कृतियों को छिपाये विश्रंखलित हो नग्न खड़ी थीं। उनके ऊपर पीपल, बरगद, सीसम आदि के वृक्ष और मूँज, भाभड़, कुश आदि के गुम्ब उग आये थे। कुशीनारा का नाम लोग भूल चुके थे। हिरण्यवती नदी का निकटवर्ती भाग कुसुम्ही नारा (=कुशीनारा) कहा जाता था। 'मुकुट-बन्धन' रामाभार और 'शालवन उपवत्तन' माथाकुँवर कहलाने लगे थे। परिनिर्वाण स्तूप के चारों ओर इतने सघन गुम्ब हो गये थे कि लोग वहाँ दिन में जाने में भी

नटराज वीरसेन

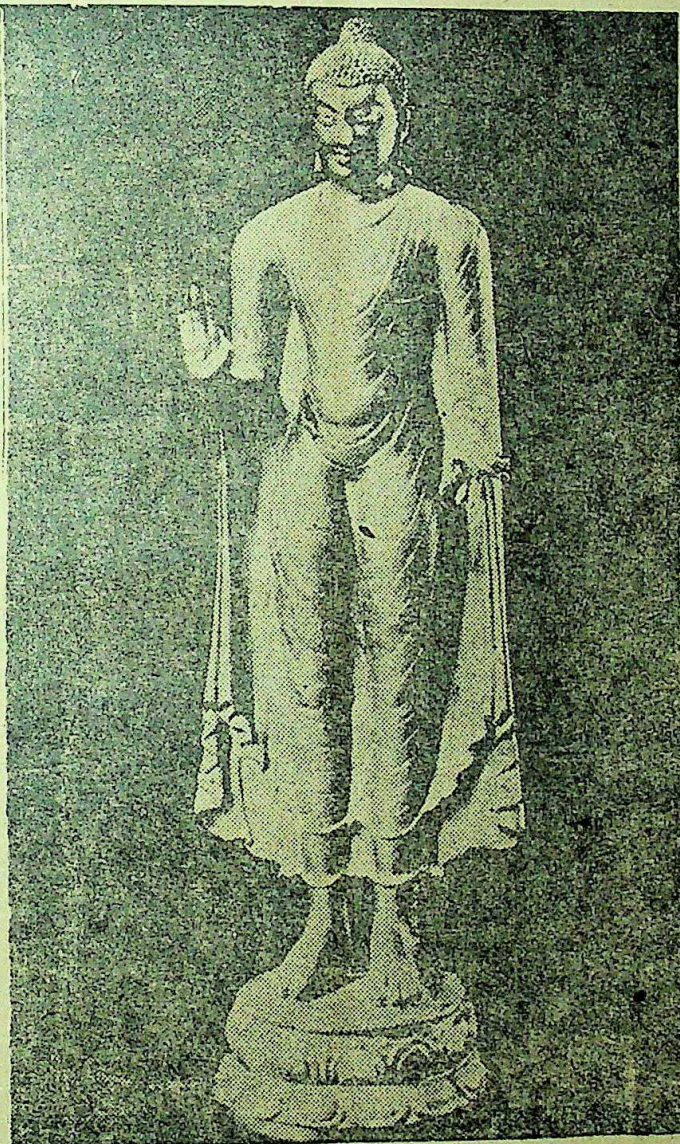
१९१

हिचकते थे। जहाँ कभी भिक्षुओं के स्वरभण्य-सूत्रों के मधुर शब्द होते थे, आज वहाँ शृंगारों और सूअरों के घोष हुआ करते थे।

कार्तिकी पूर्णिमा को निकटवर्ती ग्रामों के लोग माथाकुँवर में एकत्र होते थे। माथाबाबा की विशाल बुद्धमूर्ति की पूजा की जाती थी, साधु-ब्राह्मणों को भोजन-दान दिया जाता था और रात्रिभर जागरण कर उत्सव मनाया जाता था। भजन, गीत और कथा इस उत्सव के प्रधान अंग थे।

उस रात्रि भी पूर्ण चन्द्रिका से युक्त चमकता हुआ कार्तिक का चन्द्र पूर्वी लोकधातु से आकाश में ऊपर उठ चुका था। माथाबाबा की मूर्ति के निकट वस्त्र-वितान खड़ा किया गया था। सारंगी, तबला, मृदंग और भेरी के वाद्य हो रहे थे। पूजा के पश्चात् उत्सव का कार्यक्रम प्रारम्भ था। मल्ल-नृत्य हो रहा था। इस नृत्य में गीत के साथ कुन्त, शक्ति और खड्ग चालन का प्रदर्शन किया जाता था। पुरुष पात्र ही इसमें सम्मिलित होते थे। महिलायें भी अपने परिवारवालों के साथ उसे देखने आती थीं। आज जनता की बहुत बड़ी भीड़ थी। सबने सुन रखा था कि नटराज वीरसेन आये हुए हैं।

उनका मनोहारी नृत्य होनेवाला है। वे बहुत दिनों के पश्चात् लौटे हैं। दस-पन्द्रह वर्ष के पहले, वे यहाँ से कहीं बाहर चले गये थे।



अभयमुद्रा में बुद्ध भगवान। नवीं सदीकी कांसेकी बनी यह मूर्ति नालन्दा में मिली है। आजकल यह आशुतोष संग्रहालय कलकत्ता में रखी हुई है।

नटराज वीरसेन के रंगमंच पर आते ही मल्ल-नृत्य बन्द हो गया। वाद्य-शब्द रुक गये। करतल तथा हर्षध्वनि से सबने उनका अभिनन्दन किया। वे मंच पर बैठ गये।

“महत्ता! (=महतो!) आपका आना हम लोगों के लिए बहुत ही स्फूर्ति दायक है। आज की पूजा तथा उत्सव सफल हो जायेंगे।” ग्रामप्रधान दुर्गाशरण ने करबद्ध हो विनम्र भाव से कहा।

“आइयो, मैं इस उत्सव में सम्मिलित होने में अपना परम सौभाग्य मानता हूँ। यह उत्सव हमारे पूर्वजों का स्मरण दिलाता है। यह उन्हीं की देन है। हमारे पिता-मह जब तक जीते रहे, प्रति मास पूर्णिमा और अमावस्या को माथाकुँवर आते थे और इन टीलों के बीच बड़ी देर तक बैठते थे। न जाने क्या-क्या मन्त्र पढ़ते थे और

घी के प्रदीप जलाते थे। उस दिन वे केवल मध्याह्न में ही अन्न ग्रहण करते थे। रात्रि में कुछ नहीं लेते थे। दूसरे दिन प्रातः साधु-ब्राह्मणों को दान देकर प्रवारणा

(=पारन) करते थे। वे कहा करते थे कि माथाकुँवर में हमारे भगवान् रहते हैं।" वीरसेन ने गम्भीर-मुद्रा में कहा।

"तो क्या वे लोग कार्तिकोत्सव भी मनाते थे?" बीच में ही बात काटते हुए भद्रसिंह ने पूछा।

"हाँ, भद्र ! कार्तिकी पूर्णिमा की रात्रि को सब लोग यहाँ आते थे। न जाने क्या-क्या पूजा-पाठ करते थे। दूसरे दिम प्रातःकाल यहाँ से लौट कर अपने घरवालों के हाथों में श्वेत सूत्र बाँधते थे और कहते थे कि यह मंगल सूत्र है। इससे कल्याण होगा। गाय-बैलों तक के शृंगों में मंगल सूत्र बाँधे जाते थे। उक्त अवसर पर दसवँधी लोग आया करते थे और अपने धार्मिक गीतों से जन-समूह में संवेग, प्रेरणा तथा श्रद्धा के स्रोत प्रवाहित कर देते थे। भिक्षुपुर (= भिक्षुर) के सुगतदास अब भी हमारे घर आया करते हैं। उनके पूर्वज कभी यहीं से वहाँ गए थे। वे सब घरबारी संन्यासी थे। सुगतदास बतलाते हैं कि वे लोग घर-गृहस्थी में रहते हुए भी संन्यासियों के दस नियमों का पालन करते हैं, इसीलिए उन्हें दसवँधी कहा जाता है। उन्हें कम-से-कम एक सप्ताह के लिए गृहत्याग करना पड़ता है और भिक्षा-वृत्ति से निर्वाह करना होता है। आप लोग तो जानते ही हैं कि दसवँधी लोग छुआछूत नहीं मानते हैं और सबके घर का भोजन ग्रहण करते हैं। वे कच्चा अन्न नहीं लेते। उनके भी भगवान् माथाबाबा ही हैं।"

"हाँ, महत्ता ! मेरे बाबा भी कहा करते थे कि माथा-कुँवर में ही भगवान् ने समाधि ली थी। यहाँ पर उनके भक्त लोग रहा करते थे, जिन्हें तुकों ने मार डाला था।" चन्द्रकान्ता ने दुःख भरे भाव से कहा।

"तो माथाबाबा हमारे इष्टदेव हैं ?" सम्मिलित स्वर में कई ने पूछा।

"हाँ, भाई ! माथाबाबा ही हमारे इष्टदेव हैं। हमें इन्हीं की पूजा करनी चाहिए। अच्छा, अब मैं आप लोगों का मन बहलाव करने के लिए प्रस्तुत हो रहा हूँ।" वीरसेन ने कहकर भाव-नृत्य प्रारम्भ किया। जन समूह उनके नृत्य में ऐसा तन्मय हो गया कि नटराज के अंग-

संचालन के साथ उसके भी सिर, धड़, हाथ थिरकने लगे। सबके नेत्र नटराज पर केन्द्रित थे।

रात्रि का पहला पहर बीत चुका था। ओस से दूर्वादल भीग गये थे। चारों ओर ग्रामों में सन्नाटा छाया हुआ था। केवल माथाबाबा के पास ही नटराज के घुंघरू बज रहे थे। और रह-रह कर लोगों के प्रसन्नता सूचक तुमुल शब्द हो पड़ते थे। उसी समय तीन अश्वारोही मुगल सैनिक कहीं से आ निकले। उन्होंने आते ही धमकाते हुए कहा—

"रोको यह नाच गान। ये बुतपरस्त बड़े बेवकूफ होते हैं।"

"क्यों जी ! हम लोगों ने राज्य का क्या बिगाड़ा है ? क्या अपने भगवान् की पूजा भी न करें ? अपने त्यौहार भी न मनाये ?" वीरसेन ने नृत्य बन्द करते हुए पूछा।

"बन्द करो अपनी वकवाद। हम कुछ नहीं सुनना चाहते। तुम लोग बदमाश हो।" इतना कहकर एक मुगल सैनिक ने अपनी तलवार चलाई। एक बुढ़िया का सिर धड़ से अलग हो भूमि पर गिर पड़ा। लोग इधर-उधर भागने लगे। उस भगदड़ में मुगल सैनिकों ने एक ग्रामवाला को पकड़ लिया और उसे अपनी ओर बलपूर्वक खींचने लगे। 'बचाओ, बचाओ' के शब्द सुन वीरसेन सैनिकों के पास दौड़े। तब तक सभी ग्रामवासी नौ दो ग्यारह हो गए थे। कोई भी साथ देने वाला नहीं था। वे झट आगे बढ़े और सैनिकों को ललकारा। वीरसेन साठ वर्ष के वृद्ध थे, फिर भी उनका शरीर मल्ल जनपद के अन्न-जल से निर्मित था। उनमें मल्लत्व जाग उठा। उन्होंने एक सैनिक की तलवार देखते-देखते ही छीन ली और सिंह की भाँति झपट पड़े। सैनिकों ने वीरसेन को जीवित ही पकड़ लेना चाहा, किन्तु वे सफल न हो सके। वीरसेन ने संकेत से लीला को दूर हटा, ऐसा अद्भुत प्रहार किया कि दो सैनिकों के कलेवर एकसाथ ही भूमि पर जा गिरे। 'छप' शब्द के साथ उनकी जीवन-लीला समाप्त हो गई। तीसरा सैनिक अपने साथियों को मरा देख, अपना प्राण ले वहाँ से चम्पत हो गया।

वीरसेन ने अश्वों को जंगल की ओर भगा दिया। सैनिकों के मृत शरीरों को पास ही टीलों में छिपा

नटराज वीरसेन

१९३

दिया और लीला को साथ ले अपने ग्राम की ओर प्रस्थान किया।

लीला बहुत डरी हुई थी। उसे भय था कि कहीं मुगल सैनिक और भी अधिक संख्या में न आ जायँ।

“बाबा ! जल्दी भाग चलें। मैं अब घर नहीं जाना चाहती। मुझे बड़ा भय लग रहा है। वह सैनिक फिर आ सकता है।” लीला ने कहा।

“बेटी ! भय न करो। मैं अपना प्राण देकर भी तेरी रक्षा करूँगा। मुझे माथाकुँवर का आशीर्वाद प्राप्त है। मुगल सैनिक तेरा कुछ नहीं कर सकते।”

“किन्तु, बाबा ! मैं अपने घर तो नहीं ही जाऊँगी।”

“क्यों रे, मेरी बेटिया ! इतना किसलिए भय कर रही है ?”

“भय तो है ही बाबा ! मेरे घर वाले मुझे घर में घुसने नहीं देंगे। मुझे तुर्क ने छू लिया न, अब मैं भी तुर्क समझी जाऊँगी।”

“नहीं बेटी ! तुझे कोई तुर्क कहीं समझेगा। मैं सबको समझा दूँगा।”

“बाबा ! आपकी बात कोई नहीं मानेगा। मेरे घर वाले मान भी लें तो मुझे पूछेगा ही कौन ?”

“अच्छा बेटी ! चलो, मेरे घर चलो। मैं तेरा पालन-पोषण करूँगा। मुझे तू अपना पिता समझ। मैं भी तो तेरे पिता तुल्य हूँ न बेटी ? मैं ही तेरा विवाह कराऊँगा। मेरे घर दूसरा कोई नहीं है। तू ही मेरी इकलौती बेटी, मेरे घर का दीपक होगी।”

“बाबा ! सचमुच आप मेरे पिता हैं। आपने आज मेरे धर्म की रक्षा की है। मैं भी अब जीवन भर आपकी सेवा करूँगी। मुझे विवाह करने की इच्छा नहीं रही बाबा।”

“बेटी ! दुखी न हो। तुझे किसी प्रकार का कष्ट न होगा।”

दूसरे दिन प्रातःकाल माथाकुँवर मुगल सैनिकों से भर गया। ग्रामीण पकड़-पकड़ कर आने लगे और उन्हें निर्दयतापूर्वक पीटा जाने लगा। कुछ को सैनिकों ने अश्व रापों से रौंद डाला। त्राहि-त्राहि मच गयी। अनुराधपुर और युमवत (=झुंगवा) ग्राम फूँक डाले गए। किन्तु, किसी

ने भी नटराज वीरसेन का पता नहीं बतलाया। मृत सैनिकों के शरीर ढूँढ़ निकाले गए। उन्हें ‘गाजी’ घोषित किया गया। उनके शरीर दफनाये गए और उनकी मजारें निर्मित हुई। मुगल सैनिकों ने लौटते समय माथाबाबा की मूर्ति पर भी प्रहार किया, जिससे बायें हाथ का कुछ भाग टूट गया।

उधर नटराज वीरसेन ने लीला को बड़े प्रेमपूर्वक अपने घर रखा। उसे पिता का सम्पूर्ण स्नेह प्रदान किया। दोनों कभी-कभी अर्द्धरात्रि में माथाकुँवर जाकर अपने इष्टदेव की पूजा कर आते थे। उनके द्वारा जलाये गए प्रदीप और चढ़ाए गए पुष्पादि को देख लोग समझते थे कि रात्रि में स्वर्ग के देवता यहाँ पूजा करने आते हैं। वीरसेन ने अपने ग्राम में भी एक छोटा-सा मन्दिर बना रखा था, जिसमें माथाबाबा (=भगवान् बुद्ध) की एक प्रतिमूर्ति स्थापित की थी। लीला को उस मूर्ति पर बड़ी श्रद्धा थी। वह नित्य प्रातः सायं मूर्ति-पूजा किया करती थी। नटराज अपनी पुत्री के भक्ति-भाव से बहुत प्रसन्न थे। ग्रामवासी भी सायंकाल नटराज वीरसेन के चौपाल में एकत्र होते थे। उन्हें नटराज अपने देश-देशान्तर के अनुभव सुनाया करते थे। उन्हें सभी बाबा ही कह कर पुकारते थे। वे ग्राम में सबसे अधिक वृद्ध थे।

“बेटी लीला ! मेरे जीवन का अब कोई ठिकाना नहीं। आज मरूँ या कल। मैं अपनी आँखों के सामने अपनी बेटी का विवाह कर देना चाहता हूँ।” वीरसेन ने प्रेम से कहा।

“बाबा ! ऐसा मत सोचें। आप अभी बहुत दिन तक जीयेंगे। मेरी चिन्ता न करें।”

“बेटी ! मैंने तुझसे बिना पूछे ही तेरा विवाह पक्का कर दिया है। मैं जानता हूँ कि मेरी बेटी मेरी बात नहीं टालेगी।”

“जैसी इच्छा बाबा ! किन्तु आप भी मेरे साथ ही रहेंगे न ?”

“हाँ, बेटी ! तुझे ससुराल भेज, मैं भी आ जाऊँगा।”

तीसरे दिन बड़े समारोह के साथ लीला का प्रणय विल्वपुर के महत्तर-पुत्र विजयसिंह से हो गया। लीला को बड़े प्यार-दुलार के साथ वीरसेन ने बिदा किया। बिदा

करते समय आँसुओं से भरी आँखों से देखते हुए उन्होंने लीला से कहा—“जा बेटी ! सदा सुखी रह । तेरा सौभाग्य अमर रहे ।” लीला पिता की ओर देखती, अश्रु-प्रवाह से अपने उभय कपोलों को भिंगोती शीविका में बैठ गई । वीरसेन द्वार पर खड़े हुए अपनी पुत्री की शीविका उस समय तक देखते रहे, जबतक वह आँखों से ओझल न हो गयी ।

अब वीरसेन को कुछ भी अच्छा नहीं लगता था । वे बिना खाये-पिये चारपाई पर लेटे रहते थे । उनके नेत्रों के सामने सदा लीला का ही स्वरूप दिखाई देता रहता था ।

“दौड़ो, दौड़ो, आग....” ग्रामवासी चिल्लाते हुए दौड़ पड़े । तब तक वीरसेन का घर चारों ओर से आग की लपट में घिर चुका था । सबके देखते-देखते ही वह जलकर

राख हो गया । नटराज वीरसेन की अस्थियों के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं रहा !

कुशीनगर में आज भी माथाबाबा की भग्न मूर्ति विद्यमान है । प्रतिवर्ष कार्तिकी पूर्णिमा को आसपास के हजारों वहाँ रात्रिभर रह कर पूजा करते, कथा सुनते और दान देते हैं । ‘विष्णु-कराह’ की पूजा उसी प्राचीन कार्तिकोत्सव का विकृत रूप है, जो अब केवल हजारों तक ही सीमित है । गाजी मियाँ की कथा सभी ग्रामीण सुनते हैं । ‘लीला’ रामाभार की देवी बन चुकी है । नटराज वीरसेन के घर के नष्टावशेष सिसवा ग्राम के पश्चिमोत्तर में बिखरे पड़े हैं, जहाँ प्रतिवर्ष कुछ प्राचीन मुद्राएँ ग्रामीणों की मिला करती हैं, किन्तु, नटराज वीरसेन विस्मृति के गर्भ में विलीन हो चुके हैं !

साँची स्तूप से

श्री इकबाल बहादुर देवसरे

ज्ञानके मार्ग धर्मकी ज्योति
भावनाके मन्दिर अभिराम !
तथागतके स्मृति-चिह्न पवित्र
शांतिके दूत दयाके धाम !
मानवी रचनाके आदर्श
कलाके अमर प्राण संचार !
सुसंस्कृतिके ज्योतिर्मय रूप
सभ्यताके प्रतीक साकार !
जगा था धर्म भाव जिस समय
ज्ञानका तुमसे हुआ प्रसार !
ताप हरने वाली तुमने
बहायी करुणा-जलकी धार !
उच्च भावोंके उच्चादर्श
उपस्थित तुमने किये महान !
गूँजता रहा हिमालय पार
तुम्हारे गौरवका जय गान !
धर्मकी दीक्षा पाने हेतु
प्राप्त करने को सच्चा ज्ञान ।

टेकते थे चरणों पर भाल
विदेशोंसे आकर विद्वान ।
तुम्हींने बन नव-जीवन जोति
जगाये थे जगतीके प्राण,
दिखाकर सत्य-प्रेमका मार्ग
किया मानवताका कल्याण ।
कभी यह ध्वनि गूँजती थी यहाँ
अहिंसा और सत्य हैं सार,
अमर हैं सदा पुण्यके कार्य
अमर हैं दया क्षमा औ प्यार ।
युगोंसे साध रहे तुम मौन
न बैठो चुप अब करुणागार ।
तथागतके शब्दोंको गुँजा
करो मानवताका उद्धार ।
धधकती ज्वाला चारों ओर
दग्ध हैं मानवताके प्राण,
अरे वरसा दो करुणा-वारि
नये जीवनका हो उत्थान ।

ध्वनि-रूपक

सुजाता

श्रीकान्त व्यास

[जंगल में प्रातःकालीन ध्वनियाँ । चिड़ियाँ चहक रही हैं । कभी-कभी कोयल की कूक सुनाई दे जाती है । जंगल में वैशाख का सवेरा हो रहा है ।]

सुजाता की दो दासियाँ—पूर्णा और जया—आपस में बातें करती हुई जा रही हैं । वे अपनी स्वामिनी के लिए वटवृक्ष-पूजन की तैयारी करेंगी ।]

पूर्णा—तुम बहुत धीरे चल रही हो, जया ! कुछ शीघ्रता से चलो, कहीं हमें थिलथिल न हो जाय । वस, हम लोग आ ही तो पहुँचे । इस झरने के पार वह जो बड़ा-सा वट-वृक्ष दिखायी दे रहा है न, वस वहीं चलना है हमें ।

जया—क्यों वहन पूर्णा ! क्या उसी का नाम अजपाल है ?

पूर्णा—हाँ, वही अजपाल नामक वट-वृक्ष है । देवी सुजाता ने इसी के नीचे वनदेवता के पूजन का आयोजन किया है । हम चलकर शीघ्र वहाँ पूजन के लिए आवश्यक व्यवस्था कर दें । देखो, अपने वस्त्र सँभालो, कहीं भींग न जायें—यहाँ पानी गहरा नहीं है ।

(पानी बहने और पानी में से चलने की आवाज)

जया—आह, कितना शीतल जल है ! आओ, इस पीपल के पास से निकल चलें । उधर झाड़ी है ।

पूर्णा—हाँ आओ । देखो, कितना बड़ा यह वृक्ष !

(सूखे पत्तों पर चलने की आवाज)

जया—इसका तना कितना विशाल है !

पूर्णा—(भूमि पर पूजा का सामान, थाल वगैरह रखने की आवाज) वस, यहीं रख दो सारी वस्तुएँ ।

जया—(जमीन पर अपना सामान रखती है,) ओह, पूर्णा, कितना सुन्दर स्थल है यह ।

पूर्णा—(पत्ते बटोरने की आवाज) हाँ, तभी तो देवीने इसे पूजन के लिए चुना है । इस वन का सबसे शान्त स्थल है यह !

जया—परन्तु पूर्णा, यह तो बताओ कि हमारी देवी सुजाता वट-वृक्ष का पूजन क्यों करती है ?

पूर्णा—क्या तुम्हें इतना भी नहीं मालूम ? देवी सुजाता वट-वृक्षका नहीं, वन देवता का पूजन करने यहाँ आ रही हैं । जब वे कुमारी थीं तभी से इस वृक्ष के नीचे वनदेवता का पूजन करती आ रही हैं । विवाह के पूर्व ही एक दिन उन्होंने निश्चय किया था कि यदि मुझे पुत्र होगा तो मैं इसी अजपाल के नीचे वनदेवता का पूजन करूँगी और क्षीरान्न का नैवेद्य अर्पित करूँगी ।

जया—(अचानक चौंककर) हाय यह कौन है ?

पूर्णा—कहाँ ? अरे हाँ, कौन है, यह तपस्वी-सा ? ध्यान में लीन अत्यन्त कृशगात । परन्तु मुखमंडल से कैसी ज्योति निकल रही है । कोई असाधारण तपस्वी ज्ञात होता है ।

जया—न पूर्णा, मुझे तो लगता है कि यह कोई तपस्वी आदि नहीं, स्वयं कहीं वनदेव ही न हों ! देखो न, कैसा अलौकिक तेज है ! मेरी मानो, ये तो वनदेवता ही हैं ।

पूर्णा—हाँ असंभव नहीं कि वनदेव स्वयं पधारे हों देवी सुजाता का नैवेद्य स्वीकार करने । हमें दौड़कर देवी को सूचित करना चाहिये । लो वे स्वयं ही आ पहुँचीं ।

(सूखे पत्तों पर कुछ लोगों के चलने की आवाज । सुजाता की पालकी रुकती है और सुजाता उसमें से उतरती है ।)

पूर्णा—देवी की जय हो ! आपका सौभाग्य अमर रहे । देवी, आपका पूजन स्वीकार करने और आपको वरदान देने के लिए वनदेवता स्वयं पधारे हैं । वृक्ष की उस तरफ चलिये और उनकी वन्दना कीजिये ।

सुजाता—(आश्चर्य पूर्वक) क्या कह रही हो, पूर्णा ? कहाँ मेरा ऐसा सौभाग्य कि वनदेवता के मुझे दर्शन भी मिल सकें ।

जया—नहीं देवी, पूर्णा का कथन सत्य है । क्षीरान्न से

भरा यह स्वर्ण थाल लीजिये और वनदेव को अर्पित कर दीजिये—अपने जीवन को सफल कीजिये, देवी !

सुजाता—तुम लोग क्या कह रही हो ? कौन, कहाँ है ? चलो, देखू तो—

पूर्णा—इधर आये, देवी इस तरफ चलो वह देखिये बालरवि की कीरणें जिनके मुख पर स्वर्ण बिखेर रही है, वे तो तपस्वी से वहाँ विराजमान हैं, निश्चय मानिये वे वनदेवता ही हैं। कैसी अलौकिक छवि है।

सुजाता—(हर्षातिशेक से) अरे हाँ। हमारा सौभाग्य, आज वनदेव ने हमें दर्शन दिये ! चलो, हम उनका पूजन करें।

(तीनों के आगे बढ़ने की ध्वनि)

सुजाता—देव ! इस दासी का जीवन सफल हुआ। वन्दना स्वीकार करें। दासी सुजाता प्रणाम करती है।

पुरुष स्वर—कौन ? कौन हो देवी तुम ? अपना मस्तक ऊपर उठाओ। तुम्हें भ्रम हुआ है। मैं वन्दना योग्य नहीं हूँ। मैं तो एक साधारण मानव हूँ तुम्हारा वनदेवता नहीं हूँ।

सुजाता—(रुँधे हुए गले से) देव मुझ पर अग्रसन्न न हों। मेरी आराधना स्वीकार कीजिये। मैं उरुवेला के महाभट्टारक की कन्या, सुजाता आपको प्रणाम करती हूँ। वनदेव वर्षों से मैं आपकी आराधना करती आ रही हूँ। आज आपने दर्शन देकर मेरी मनोकामना पूर्ण की है, देव ! पुनः मेरा प्रणाम स्वीकार कीजिये।

पुरुष स्वर—भद्रे ! यों मुझे लज्जित न करो। तुम्हें भ्रम हुआ है। मैं कह चुका हूँ कि मैं तुम्हारा वनदेवता नहीं हूँ।

सुजाता—तो देव, बतायें आप कौन हैं ? आप जैसा तेजस्वी मैंने आज तक कभी नहीं देखा। यदि आप वनदेवता नहीं तो कोई असाधारण तपस्वी अवश्य हैं। आप बतायें कि इस वन में आप कब से हैं और कहाँ से आये हैं ?

पुरुष स्वर—देवी सुजाता, मैं हिमालय पर्वत के निकट शाक्य देश का राजकुमार सिद्धार्थ हूँ और पिछले छः वर्ष से निर्वाण-मार्ग की शोध में वन-वन भटक रहा हूँ। छः वर्ष पूर्व सांसारिक माया-मोह को त्याग कर राज-पाट की सुख-सुविधा से नाता तोड़कर अपनी प्रियतमा यशोधरा और पुत्र राहुलको सोते छोड़कर मैं घर से निकल आया था।

सुजाता—आह, देव ! आखिर ऐसा वैराग्य क्यों ?

सिद्धार्थ—भद्रे, इसलिए कि यह संसार मिथ्या है। यहाँ सुख का अन्त दुःख में और जीवन का अन्त मृत्यु में होता है। पाप के पंक में लिपटा हुआ मानव धर्म से दूर होता जाता है। इस दुर्भाग्य से मानव की मुक्ति का कोई मार्ग नहीं है। मोह-माया से उसका छुटकारा नहीं है।

सुजाता—महात्मन, कथन तो आपका सत्य है लेकिन क्या आपको निर्वाण का मार्ग ज्ञात हो गया है ?

सिद्धार्थ—देवी, सत्य का शोध बड़ा कठिन है। अब तक तो मुझे सफलता नहीं मिली थी, परन्तु आज मुझे ऐसा आभास होता है कि मैं शीघ्र ही सफल हो जाऊँगा। गत रात्रि मैंने इस आशय का एक स्वप्न देखा है—

सुजाता—स्वप्न ? कैसा स्वप्न, प्रभो ? क्या स्वप्न में आपको मोक्ष-मार्ग दिखाई दिया है ?

सिद्धार्थ—हाँ, स्वप्न सांकेतिक था, देवी ! मैंने देखा कि मैं एक अलौकिक स्थान में पहुँच गया हूँ। वहाँ एक देवपुरुष एक विचित्र वीणा लिये बैठा था। उस वीणा का एक तार बहुत कसा हुआ था, दूसरा बिलकुल ढीला था और तीसरा न अधिक कसा था और न अधिक ढीला था।

सुजाता—सचमुच विचित्र थी वह वीणा !

सिद्धार्थ—हाँ जो तार बहुत कसा था, वह बहुत कर्कश स्वर निकाल रहा था; और जो तार बिलकुल ढीला था वह किसी प्रकार का स्वर निकालने में ही असमर्थ था। परन्तु जो तार न अधिक कसा था और न अधिक ढीला था उससे अत्यन्त मधुर स्वर निकल रहा था। इस स्वप्न से मुझे लगा कि जीवन में अति करना व्यर्थ है। अति से कुछ प्राप्त नहीं होता।

सुजाता—देव, लगता है आपका कथन उचित है। स्वप्न सार्थक था।

सिद्धार्थ—हाँ, देवी, यह स्वप्न अर्थ और संकेत से भरा है। इससे सहज जीवन का संदेश प्राप्त होगा। मुझे तो इससे बिलकुल नई दृष्टि मिली है। मैं मोक्ष-मार्ग के शोक में गत छः वर्षों से तप कर रहा हूँ और अपने शरीर को सुखा रहा हूँ। प्रचलित विश्वास के अनुसार यम-नियम और इंद्रिय-दमन के कठोर व्रत मात्र से मोक्ष-प्राप्ति का प्रयत्न आज मुझे बड़ा भारी भ्रम प्रतीत हो रहा है। धीरे-

आत्म-दीप

१९७

धीरे आरम्भ करके मैंने अपने भोजन की मात्रा बहुत ही कम कर दी थी और इधर तो मैं लगभग उपवास ही कर रहा था। इसका फल तुम देख रही हो, यह सूखा काँटे सा शरीर।

सुजाता—हाँ, देव ! शरीर तो आपने बहुत क्षीण कर लिया है। क्या मेरा नैवेद्य स्वीकार न करेंगे ?

सिद्धार्थ—क्यों नहीं भद्रे, लाओ ! आज तुम्हारा यह क्षीरान्न मेरी प्राण रक्षा करेगा, मेरे शरीर में नवीन बल का संचार करेगा। मैं अब स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मन लेकर सत्य का अनुसंधान करूँगा। निर्वाण-मार्ग का शोध करूँगा।

सुजाता—लीजिये महात्मन् ! स्वर्ण के पात्र में यह क्षीरान्न स्वीकार कीजिये।

सिद्धार्थ—लाओ, भद्रे, सुखी रहो। परन्तु अपना यह स्वर्णपात्र लेती जाओ। मोह-माया से मुक्त मन ही निर्वाण-मार्ग में मनुष्य का सहायक होता है।

सुजाता—देव, पुनः प्रणाम करती हूँ और जाती हूँ आशीर्वाद दें कि फिर आपके दर्शन में कर सकूँ।

सुजाता लौट आई। लेकिन उसकी खीर से सिद्धार्थ ने नई शक्ति प्राप्त की और उसी दिन उन्हें बोधि-वृक्ष के नीचे ज्ञान-बोध हुआ और आगे चलकर उन्होंने संसार को मुक्ति का मार्ग दिखाया।

आत्म-दीप

श्रीकृष्ण शेंदरे 'हृदयेश'

आप वनो अपने प्रदीप तुम,
आत्म-दीप का करो प्रकाश।

अपनी शरण आप हूँ मैं तुम,
तिमिर अज्ञ का करो विनाश ॥

सर्व वस्तु, संस्कार जगत के,
सबही हैं अनित्य मिश्रण।

धर्म न बोझ बने मानव को,
हो वह उन्नति-पथ साधन ॥

मिथु ! तुम्हारे लिए जगत में,
आज यही पावन संदेश।

बहुजन के हित, बहुजन सुख हित,
करो भ्रमण तुम देश-विदेश ॥

आदि, मध्य कल्याणमयी जो,
उस विधि कल्याणी अवसान ॥

करो प्रसार धर्म बस ऐसा,
ब्रह्मचर्य पूरण रख ध्यान ॥

दुष्कर्मों के फल से किंचित,
कभी नपा सकते तुम मुक्ति।

मृत्यु न टाली जा सकती है,
करो कोटि तुम यद्यपि युक्ति ॥

सागर की उत्ताल तरंगें,
या गिरि की हों तममय खोह ॥

या अम्बर में या जलधर में,
पा लेंगे ये तेरी टोह ॥

प्राप्य सभी जो वस्तु आज हैं,
उनसे कल टूटे नाता।

जाना होगा एक दिवस बस,
मानव जो जग में आता ॥

विजय अरे ! क्या करे अन्य पर ?
कर अपना ही आत्म-विजय !

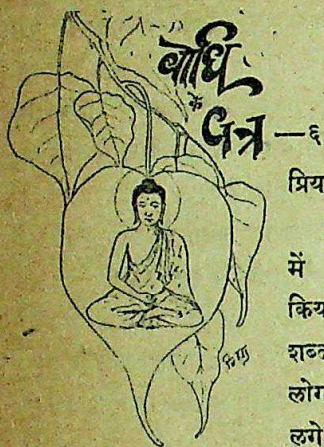
यही उच्च आदर्श सुखदमय ॥
अरे ! यही सब मंगलमय ॥

अरे ! उसी की विजय प्राप्ति हित,
लें हम सब अब बुद्ध शरण।

धर्म शरण पुनि संघ शरण हो,
होवे आत्मिक शुद्धिकरण ॥

आज न सिर पर राजमुकुट हो,
होवे बुद्ध चरण पर शीश।

मैत्री, प्रेम भाव विकसित हो,
होवे दशबल का आशीस ॥



निर्वाण

प्रिय उपासक,

तुमने निर्वाण के सम्बन्ध में पूछ कर अच्छा ही किया। आजकल निर्वाण शब्द का अर्थ न जानकर लोग इसका दुरुपयोग करने लगे हैं। तुमने भी उस दिन

सुगतकान्ति के देहावसान होने पर कहा था कि उसका निर्वाण हो गया। उस समय तुम भावावेश में थे, अतः मैंने मौन रहना ही उत्तम समझा था।

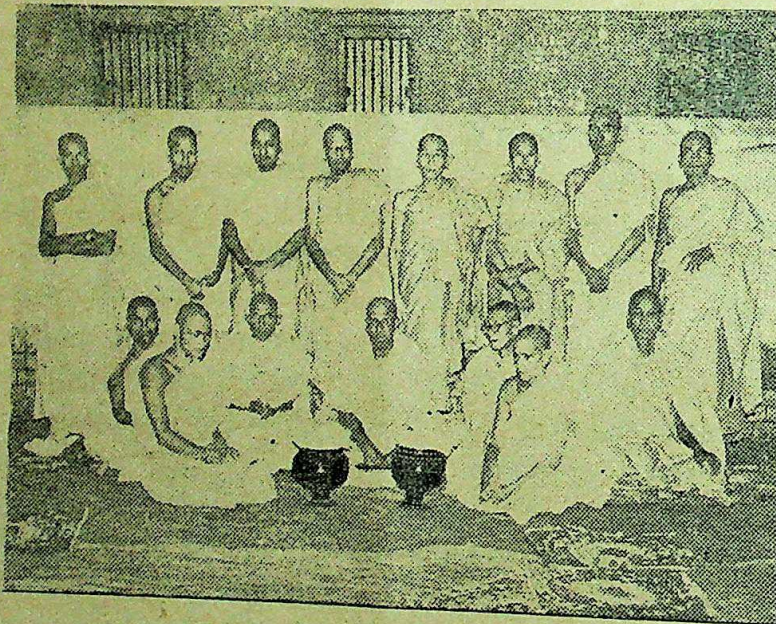
निर्वाण उस अवस्था का नाम है, जिसमें कि सारे दुःखों का अन्त हो जाता है, आवागमन रुक जाता है। इस अवस्था को गृहस्थ और प्रव्रजित सभी प्राप्त कर सकते हैं। यह तृष्णा-रहित अवस्था है। 'वाण' तृष्णा को कहते हैं और उस तृष्णा से मुक्त होना ही निर्वाण है। तृष्णा के क्षय के साथ ही राग, द्वेष और मोह नष्ट हो जाते हैं। जिस व्यक्ति

में ये तीनों पाप-मूल नहीं होते हैं, वह निर्वाण प्राप्त होता है। किन्तु जो लोग इनमें पड़े रहते हैं, जिनमें सांसारिक आसक्तियाँ बनी ही रहती हैं, उनके लिये निर्वाण

शब्द का प्रयोग उचित नहीं है। उस दिन मैं पावा गया हुआ था, वहाँ 'सौगतानन्द का निर्वाण-दिवस' मनाया जा रहा था। मैंने पूछा कि ये सौगतानन्द कौन थे? उत्तर मिला कि एक मिल-मालिक थे। उनकी दो पत्नियाँ थीं। एक का क्षय रोग से देहान्त हो गया था। उसी शोक में सौगतानन्द ने भी खाना-पीना छोड़ दिया और बीमार पड़ गए। पत्नी की मृत्यु के तीन महीने बाद ही उनका भी अन्तकाल हो गया। उनकी अन्त्येष्टि-क्रिया के समय एक ने कहा—“हाय! मालिक का निर्वाण हो गया। अब हम किसके भरोसे रहेंगे!” वस, तभी से सबने 'निर्वाण' शब्द का प्रयोग करना शुरू कर दिया। और प्रतिवर्ष

'निर्वाण' दिवस भी मनाया जाने लगा। इनका निर्वाण शब्द केवल 'मृत्यु' का ही द्योतक है। हमने तो ऐसा भी देखा है कि भर्ग देश में जब कोई नेता मरता है तो जनता निर्वाण ही नहीं, परिनिर्वाण शब्द का भी प्रयोग करती है। यह सब अज्ञानता के कारण हो रहा है। वास्तव में ऐसा नहीं होना चाहिए। हमारी श्रद्धा है तो

हमें चाहिए कि उनके गुणों को स्मरण करें, उनके महान् आदर्शों को अपनायें, किन्तु 'निर्वाण' या 'परिनिर्वाण' कह



भिक्षु कात्यायन और भिक्षु राष्ट्रपाल की उपसम्पदा के बाद लिया गया चित्र चित्र में भदन्त शासनश्री महास्थविर के साथ दोनों नवभिक्षु बैठे हैं।

पीछे मध्य में भिक्षु संवरत्न और भिक्षु धर्मरक्षित खड़े हैं

निर्वाण

१९९

कर उन पर कलंक न लगायें। सूनापरान्त के उपासक प्रियदर्शी को तुम लोग 'बोधिसत्व' मानते हो। वह बोधिसत्व के गुणों से युक्त एक महापुरुष था अवश्य, किंतु उसने 'निर्वाण' का साक्षात्कार नहीं किया था। बोधिसत्व तो पारमिताओं को पूर्ण कर, बार-बार संसार में जन्म ले जनता का उपकार कर अन्त में ही परमज्ञान (=बुद्धत्व) प्राप्त कर बुद्ध होते हैं और बुद्ध की अवस्था निर्वाण-प्राप्त अवस्था होती है। जब बुद्ध का शरीरान्त होता है, तब उसे महापरिनिर्वाण या परिनिर्वाण नाम से अभिहित किया जाता है। परमज्ञान की प्राप्ति से पूर्व बोधिसत्व-चर्या के समय ही शरीरान्त होने पर निर्वाण या परिनिर्वाण प्राप्त होना कहना उस महापुरुष पर कलंक लगाना है। उसके आदर्श एवं भावना को न समझना है। कुछ लोग गाँधी जी के लिए भी ऐसा ही कहा करते हैं, किन्तु यह उचित नहीं है। यदि निर्वाण का अर्थ केवल 'मृत्यु' ही है तब तो कोई हर्ज नहीं, किन्तु बौद्ध उपासक-उपासिकाओं को ऐसा प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि 'निर्वाण' बौद्ध-धर्म का पारिभाषिक शब्द है। भगवान् बुद्ध ने धम्मपद में कहा है—

आरोग्य-परमा लाभा, सन्तुट्ठी परमं धनं ।

विस्सासपरमा जाती, निब्बानं परमं सुखं ॥

अर्थात् निरोग होना परम लाभ है, सन्तोष परम धन है, विश्वास सबसे बड़ा बन्धु है, निर्वाण परम सुख है।

यही परम सुख है और इसी के लिए सब कुछ त्याग-तप है। इस अवस्था को प्राप्त कर व्यक्ति कृतकृत्य हो जाता है। यहाँ उसके लिए कुछ भी करना शेष नहीं रहता। भिक्षुणी धर्मदिन्ना ने विशाख उपासक से कहा था—“आवुस विशाख ! ब्रह्मचर्य निर्वाण-पर्यन्त है, निर्वाण-परायण है, निर्वाण-पर्यवसान है।”

निर्वाण एक प्रकार का ही है, किन्तु इसके दो भेद माने जाते हैं—सोपादिशेष और अनुपादिशेष। इसी चार महाभूतोंवाले शरीर में तृष्णा का नाश कर जिस शांति को प्राप्त करते हैं, उसे सोपादिशेष निर्वाण कहते हैं, जैसा कि तथागत ने बोधिवृक्ष के नीचे बुद्धगया में प्राप्त किया था और शरीर छूटने पर जो परम शांति की अवस्था होती

है, उसे परिनिर्वाण या महापरिनिर्वाण कहते हैं। यही अवस्था अनुपादिशेष भी कही जाती है। जैसा कि तथागत ने कुशीनारा में प्राप्त किया था। निर्वाण की अवस्था आकार के भेद से तीन प्रकार की मानी जाती है—(१) राग, द्वेष और मोह की शून्यता के कारण शून्य, (२) राग, द्वेष और मोह के निमित्तों से रहित होने के कारण अनिमित्त, (३) राग, द्वेष और मोह की प्रणधियों (=चाह) से रहित होने के कारण अप्रणिहित।

भगवान् ने निर्वाण विषयक उपदेश करते हुए कहा—
“भिक्षुओ ! वह एक ऐसी अवस्था है, जहाँ न तो पृथ्वी है, न जल है, न अग्नि है, न आकाश है, न आकाशानन्त्यायतन है, न विज्ञानानन्त्यायतन है, न आर्किचन्यायतन हैं, न नैवसंज्ञानासंज्ञायतन है, न यह लोक है, न परलोक न चाँद है, न सूर्य है। भिक्षुओ ! न वहाँ जाना होता है, है, न आना होता है, न ठहरना होता है, न फिर च्युत होना होता है, न उत्पन्न होना होता है। वह आधार रहित है। अवलम्बन रहित है। यही दुःख का अन्त है।”

ग्रथ आपो च पठवी तेजो वायो न गायति ।

न तत्थ सुक्का जोतन्ति आदिच्चो नप्पकासति ।

न तत्थ चन्दिमा भाति तमो तत्थ न विज्जति ॥

वहाँ जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु नहीं होते, सूर्य, चन्द्र नहीं चमकते, न तो वहाँ प्रकाश होता है और न अन्धकार ही।

अयोधन हतस्सेव जलतो जातवेदसो,

अनुपुब्बूपसन्तस्स यथा न जायते गति ।

एवं सम्माविमुत्तानं कामबन्धोघतारिनं,

पब्बापेतुं गति नत्थि पत्तानं अचलं सुखं ॥

लोहे की धन की चोट पड़ने पर जो चिनगारियाँ उठती हैं, वह तुरन्त ही बुझ जाती हैं। कहाँ गई, कुछ पता नहीं चलता। इसी प्रकार काम-बन्धन से मुक्त हो निर्वाण पाये हुए, अचल-सुख प्राप्त किए हुए की गति का कोई भी पता नहीं लगा सकता।

निर्वाण की अवस्था में नाम और रूप बिल्कुल शांत हो जाते हैं, तब विज्ञान के शान्त हो जाने से सब शान्त हो जाता है। जैसे बटन दबा देने से बिजली का पता नहीं

लगता, वैसे ही तृष्णा के क्षय के पश्चात् जब पञ्चस्कन्ध के भिन्न-भिन्न अवयव तितर-बितर हो जाते हैं, तब विज्ञान प्रदीप बुझ जाता है और वही परिनिर्वाण या महापरिनिर्वाण की अवस्था होती है।

खीणं पुराणं नवं नत्थि सम्भवं,
विरत्तचित्ता आयतिके भवरिमं ।
ते खीणबीजा अघिरुद्धिच्छन्दा,
निव्वन्ति धीरा यथायं पदीपो ॥

सारा पुराण कर्म क्षीण हो जाता है, नया कर्म संचित नहीं होता, पुनर्जन्म से चित्त विरक्त हो जाता है, तब वे क्षीण-बीज, तृष्णा से सर्वथा मुक्त इस (जलने वाले) प्रदीप की भाँति शान्त हो जाते हैं।

आज सारनाथ के मूलगन्ध कुटी विहार में इस युग के बोधिसत्व डॉक्टर भीमराव अम्बेडकर का प्रथम स्मृति-दिवस मनाया जाने वाला है। सब लोग एकत्र हो गए हैं। बहुत भीड़भाड़ है। मुझे भी उसमें सम्मिलित होना है। मैं आज नागपुर में रहने वाला था, किन्तु कुछ विशेष कारणों से वहाँ न जा सका, अतः आज यहीं डॉक्टर साहब का स्मरण करना है। वे वास्तव में एक युग-निर्माता महापुरुष थे। उन्होंने जाते-जाते भारत में मानवता का विगुल बजा ही दिया और वह ऐसा विगुल है कि जिसकी ध्वनि निरन्तर विश्व में व्याप्त ही होती जा रही है। इस बोधिसत्व को भारतवासी युग-युग स्मरण करेंगे।

सारनाथ, वाराणसी

६-१२-५७

शुभेच्छु—

बोधिसत्व

बौद्ध मूर्तिकला

श्री प्रकाशनारायण शर्मा

यद्यपि बौद्ध धर्म से संबंधित मूर्ति-कला को बौद्ध-मूर्तिकला की संज्ञा देना बहुत तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता क्योंकि यह कला बौद्ध धर्म द्वारा अनुप्राणित नहीं, वरन् उस समय प्रचलित लोक-कला का बौद्ध-धर्म की आवश्यकताओं के अनुसार बदला हुआ रूप है। भारतीय मूर्तिकला को विशेषज्ञों ने विभिन्न युगों—यथा मौर्ययुग गुप्त-युग, सातवाह-युग आदि; तथा विभिन्न शैलियों—मथुरा-शैली, गान्धार-शैली आदि के अनुसार विभाजित किया है। तब भी बौद्ध धर्म से संबंधित मूर्तियाँ अपनी संख्या और उत्कृष्टता के कारण इतना महत्व रखती हैं कि ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित मूर्तियों से उनके भेद को स्पष्ट करने के लिये हम प्रायः उन्हें यह नाम देते हैं।

अशोक का समय

अशोक के समय (२५० ई० पू०) से बौद्ध मूर्तिकला का युग शुरू हुआ है। अशोक के स्तम्भों और स्तूपों पर मूर्तिकला अपने दिव्य स्वरूप को लेकर आज भी शांति और अहिंसा का संदेश विश्व को दे रही है। अशोक के निर्मित स्तम्भ विश्व-विख्यात हैं। अत्यन्त सुन्दर पालिश

से चमकते हुए ये एकादमीय (एक पत्थर के बने) अशोक स्तम्भ आकर्षण और कलात्मकता में अपना जोड़ नहीं रखते। इन स्तम्भों के दो भाग हैं। पहला लाट और दूसरा शीर्ष। इन विशालकाय स्तम्भों की गढ़ाई, निर्माण करने के स्थान से गाढ़े जाने के स्थान तक इनकी ढुलाई और फिर वहाँ उनका स्थिर करना आदि आज भी हम उस काल के शिल्पियों के ज्ञान का परिचय देते हुए आश्चर्य-चकित कर देते हैं। इन स्तम्भों के शीर्ष पर शेर, हाथी, बैल या घोड़े की मूर्तियाँ बनी हैं। इनमें सारनाथ का चार सिंहों की मूर्तियोंवाला शीर्ष सर्वश्रेष्ठ है। चारों दिशाओं में धर्म-चक्र-प्रवर्तन के प्रतीक चार चक्र हैं। “सिंह पीठ से पीठ सटायें चारों दिशाओं की ओर दृढ़ता से बैठे हैं। उनकी आकृति भव्य, दर्शनीय और गौरवपूर्ण है, जिसमें कल्पना और वास्तविकता का सुन्दर सम्मिश्रण है। उनके गठीले अंग-प्रत्यंग समविभक्त हैं और ये बड़ी सफाई से गढ़े गये हैं। उनकी फहराती हुई लहरदार केसर का एक-एक बाल बड़ी सूक्ष्मता और चारुता से दिखाया गया है। इनमें इतनी नवीनता है कि ये आज के बने प्रतीत होते हैं।”

बौद्ध मूर्तिकला

२०१

प्रसिद्ध इतिहासकार रिमथ इनके विषय में लिखता है कि 'संसार के किसी भी देश की प्राचीन पशु-मूर्तियों में इस सुन्दर कृतिसे उत्कृष्ट या इसकी जोड़ की कृति पाना सर्वथा असंभव प्रतीत होता है।' इस स्तम्भ का शीर्ष आज हमारे राष्ट्र का प्रमुख राज-चिन्ह है। और उसका धर्म-चक्र हमारे राष्ट्रीय ध्वज को अलंकृत कर रहा है। सर जान मार्शल ने इसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है—“शैली एवं निर्माण-पद्धति की दृष्टि से ये भारत द्वारा प्रसूत सुन्दरतम मूर्तियाँ हैं और प्राचीन जगत में ऐसी कोई चीज नहीं जो इनसे बढ़ कर हो।”

८४ सहस्र स्तूप

बौद्ध धर्म की परम्परा से हमें यह पता चलता है कि अशोक ने ८४ सहस्रस्तूप बनवाये थे। यद्यपि ये स्तूप कला की दृष्टि से बहुत उच्चकोटि के नहीं कहे जा सकते परन्तु इनके तोरणों और इनको घेरने वाले पत्थर के बाड़ों (वेष्टनियों) पर बुद्ध की जीवन-कथा से संबंधित जो दृश्य अंकित हैं उनमें भारतीय कला का बड़ा सजीव रूप देखने को मिलता है। भरहुत और सांची के स्तूपों की मूर्तिकला इस दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। भरहुत की पत्थर की वेष्टनी का जो भाग कलकत्ते के संग्रहालय में सुरक्षित है उस पर आधे दर्जन तो बुद्ध के चरित्र से सम्बद्ध ऐतिहासिक दृश्य और लगभग चालीस जातक की कथाओं के दृश्य मूर्तिमान हैं। भरहुत की कला में पशु-पक्षियों, नागराज और जानवरों की मूर्तियाँ बड़ी सजीव हैं। भक्तिभाव सूचित करने वाले दृश्यों के अतिरिक्त हास्य रस व्यंजित करने वाले भी कितने ही दृश्य हैं। एक दृश्य में एक हाथी सूँड में पकड़ी हुई संडासी से एक मनुष्य का दाँत उखाड़ रहा है। इनकी रचना शुंग काल (१८८ ई० पू० से ३० ई०) में हुई। भरहुत की मूर्तियों से तत्कालीन लोक-जीवन का दिग्दर्शन होता है।

सांची के स्तूप की परिभित्तियाँ और तोरण भी शुंग काल में बने। इसकी परिभित्तियाँ तो सादी हैं परन्तु तोरणों पर गौतम बुद्ध का जीवनचरित और जातक की कथाएँ मूर्ति-रूप में अंकित हैं। बुद्ध की जीवन-सम्बन्धी घटनाओं को अंकित करते समय बुद्ध का स्थान रिक्त रखा गया है। परिभित्तियों में विविध प्रकार के पशुपक्षी—हाथी,

मोर, सिंह, बैल, ऊँट और हिरन बड़ी सफाई और वास्तविकता से बने हैं। ये पशु अत्यन्त भक्तिभाव से बोधिवृक्ष पर पुष्प चढ़ा रहे हैं। यक्ष-यक्षिणियों की भावभंगी बड़ी चित्ताकर्षक है। शिल्प तथा कलात्मक कल्पना दोनों दृश्यों से ये भरहुत की मूर्तियों से श्रेष्ठ हैं। इनकी भाव-भंगिमा अधिक साफ है और जटिल कथाओं और भावों को पाषाण पर बड़ी कुशलता से चित्रित किया गया है। प्रोफेसर वोगेल (Prof. Vogel) इनकी कला के विषय में लिखते हैं—“अपनी सहज सरलता और स्वाभाविकता, प्रकृति-प्रेम की अधिकता तथा मुख्य रूप से बुद्ध के प्रति अभिव्यंजित भक्ति और उत्कट श्रद्धा के कारण यह कला अत्यन्त मनोरम हो गई है।

बौद्ध-कला की उत्कृष्टता

बुद्धगया, सारनाथ, लुम्बिनी तथा कुशीनगर ये स्थान, बुद्ध के जीवन में घटित चार महत्वपूर्ण घटनाओं से सम्बन्धित हैं। इन सभी स्थानों में बौद्ध-कला की उत्कृष्टता सूचित करने वाली मूर्तियाँ, स्तूप, स्तम्भ तथा अन्य वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। केवल बुद्धगया में पत्थर पर उत्कीर्ण २५०० के लगभग विभिन्न प्रकार मूर्तियाँ पायी गई हैं। सारनाथ में कुशाणयुग (५०-३०० ई०) की बोधिसत्व की एक अत्यन्त विशाल मूर्ति प्राप्त हुई है। इसमें मूर्ति का सिर घुटा हुआ है। गुप्त वंश के (३००-६०० ई०) की मूर्तियों में बुद्ध के जीवन में घटित महत्वपूर्ण घटनाओं को मूर्तिमान किया गया है।

प्रथम शताब्दी से मथुरा कुषाण राजाओं के अधिकार में आ गया। ये नरेश महायान सम्प्रदाय के अनुयायी थे। महायान सम्प्रदाय में बुद्ध की प्रतिमा की उपासना होती है। इन राजाओं ने सर्वप्रथम बुद्ध की मूर्ति-पूजा के लिए, बुद्ध के विभिन्न स्वरूपों को मूर्तिमान किया। इस प्रकार ई० पू० ५०० से ३०० ई० तक मथुरा बुद्ध की प्रतिमाओं का चारों ओर वितरण करने के लिए प्रमुख केन्द्र हो गई। फलस्वरूप अत्यन्त व्यापक रूप से मथुरा शैली का प्रभाव भारतीय मूर्तिकला पर पड़ा। दक्षिण की अमरावती शैली और उत्तर की गान्धार शैली दोनों ही इससे प्रभावित हुई। बुद्ध की मूर्तियों के निर्मित होने के समय से भारतीय कला का एक नवीन युग ही प्रारम्भ हो गया।

इसके पश्चात् कई शताब्दियों तक भारतीय शिल्पी बुद्ध मूर्तियों के द्वारा इस देश के आध्यात्मिक विचारों को व्यक्त करते रहे।

मथुरा नगर और जिलोंमें सैकड़ों मूर्तियाँ पाई गयी हैं। तोरण, वेष्टनियों आदि पर उत्कीर्ण अलंकरण सामग्री की दृष्टि से मथुरा का स्तूप भरहुत के ढंग का ही है। प्रो० वोगेल ने मथुरा शैली के विषय में लिखा है कि “यह मध्यभारत की मूर्तिकला से विकसित हुई है अतः यह मूलतः भारतीय है। पहले मथुरा के शिल्पी बुद्ध को प्रतीकरूप में ही अंकित करते थे परन्तु महायान सम्प्रदाय के विस्तार के साथ भक्तों के द्वारा बुद्ध की प्रतिमाएँ बनवायी जाने लगीं। गंगा के मैदान के चित्र भिन्न-भिन्न स्थलों पर मथुरा को पीली चित्ती वाले रवादार पत्थर से बनी हुई बुद्ध की मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। कुशीनगर में पायी गई ५ वीं शती की बनी परिनिर्वाणमुद्रा में बुद्ध की एक विशाल मूर्ति पर उत्कीर्ण लेख के द्वारा पता चलता है कि समस्त भारत में मूर्तिकला का प्रसार यहीं से हुआ।

मथुरा की ही भाँति गान्धार भी कला और संस्कृति का महत्वपूर्ण केन्द्र था। महायान सम्प्रदाय के अनुयायी कनिष्क के राज्यकाल में यहाँ बौद्ध मूर्तिकला की बहुत उन्नति हुई। गान्धार शैली भारत से बाहर पूर्वी तुर्किस्तान, संगोलिया, चीन, कोरिया और जापान की यथार्थवादी शैली की जननी कही जाती है। गान्धार के विहार तो नष्ट हो चुके हैं परन्तु उनके ध्वंसावशेषों से सहस्रों मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं जो पेशावर, कलकत्ता, पेरिस, लंदन और बर्लिन के संग्रहालयों में सुरक्षित हैं।

गान्धार शैली

गान्धार शैली में बुद्ध दो रूपों में अंकित किये गये हैं एक तो मानवीय और दूसरे अलौकिक। उनकी प्रकृति निस्संदेह भारतीय है परन्तु उस पर यूनानी प्रभाव भी परिलक्षित होता है जिससे वे कभी कभी ‘एपोलो’ या ‘डोयनीसस’ के समान प्रतीत होते हैं। वस्त्र की सिलवटें और मुख के चारों ओर के प्रभासंडल पर भी यूनानी प्रभाव है। इस प्रकार की मूर्तियाँ तिब्बत, चीन और जापान में अब भी पाई जाती हैं। यूनानी प्रभाव की एक मुख्य विशेषता यह है कि अंगूठों के गुच्छों के सहित अंगूर

लताओं, सर्प की पूँछ वाले और उड़ने वाले राक्षसों ‘एकेन्थस’ की पत्तियों आदि को अलंकरण सामग्री के रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रोफेसर वोगेल ने यह स्वीकार किया है इनमें से कुछ में शिल्पियों ने बड़े श्रम के साथ अपने कौशल का परिचय दिया है जिससे उनकी कलाप्रियता और धार्मिकता प्रकट होती है। दीर्घ उपवास के कारण कृश गात बुद्ध बोधिवृक्ष के नीचे बैठे हुए बुद्ध पर ‘मार’ की सेना का आक्रमण आदि इस शैली की प्रमुख मूर्तियाँ हैं।

गाँधार को इस यूनानी बौद्ध-कला की उत्पत्ति के विषय में आलोचकों में मतभेद हैं। यह निश्चित है कि इसमें कई शैलियों का संकर हुआ है। विदेशी प्रमुख रूप से यूनानी प्रभाव होने पर भी इसकी आत्मा मूलतः भारतीय है। मूर्तियों में बुद्ध पूर्णतया भारतीय आसन पर और भारतीय मुद्रा में अंकित किये गये हैं। कुशाण राजाओं के भारत को अपने अधिकार में कर लेने के पश्चात् उनके प्रोत्साहन के कारण गान्धार शैली का अभ्युत्थान हुआ। कनिष्क ने अपनी राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) में एक विशाल स्तूप का निर्माण करवाया था। गान्धार शैली की जो विशेषताएँ हैं— जैसे कि बुद्ध और बोधिसत्व के घुंघराले बाल, उत्तरीय का दाहिने कंधे और भुजा से बाहर होना आदि, वे इनके पूर्व हो मथुरा शैली में स्वीकृत हो चुकी थीं। केवल गान्धार शैली में आकर कुछ परिवर्तन हो गया। इस प्रकार गान्धार शैली के मूल-तत्व भारतीय हैं जिसमें यूनानी मूर्तिकला की यथार्थवादिता और भावमय आध्यात्मिक अभिव्यंजना की भारतीय प्रवृत्ति को समन्वित कर दिया गया है। इसी कारण यथार्थवादी दृष्टिकोण से अंग-प्रत्यंग के सौष्टव और रेखाओं की सूक्ष्मता को विशेष महत्व देते हुए गान्धार शैली में मानव-शरीर का अंकन किया गया है।

बौद्ध-धर्म के स्मारक

एक समय था जब कृष्णा और गोदावरी नदियों के मुहानों पर बौद्ध-धर्म के बहुत से स्मारक थे। अमरावती तथा जगट्यपट्ट के स्तूप अधिक प्रसिद्ध थे परन्तु अब वे नष्ट हो चुके हैं परन्तु उनसे सम्बन्धित बहुत-सी बहुमूल्य मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। इनमें से सैकड़ों कलकत्ता तथा मद्रास के संग्रहालयों तथा ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित हैं। प्राचीन मूर्तियों का सम्बन्ध भरहुत शैली से है परन्तु

बौद्ध मूर्तिकला

२०३

अपेक्षाकृत बाद की मूर्तियाँ मथुरा और गान्धार शैली की मूर्तियों से मिलती-जुलती हैं। मद्रास संग्रहालय में रखी हुई शिला पर उत्कीर्ण स्तूप से हमें अमरावती के स्तूपों का आभास मिलता है। इनकी परिभित्तियाँ अत्यधिक अलंकृत थीं। सांची और भरहुत की भाँति इसमें तोरणों और सीढ़ियों से सम्बन्धित कोई वर्गाकार चवूतरा नहीं था। इससे इन स्तम्भों की प्राचीनता प्रकट होती है। वेष्टनी अत्यन्त कलापूर्ण है जिस पर अत्यन्त सुन्दरतापूर्वक कमल, गुलाब और विचित्र चाल से चलते हुए बौने अंकित हैं। बुद्ध के जीवन के दृश्य और जातक की कथाएँ भी अनेक स्थानों पर मूर्तिरूप में अंकित की गई हैं। इनकी रचना से शिल्पियों की उत्कृष्ट कल्पना और शिल्प कौशल का परिचय मिलता है। कला के इन अनुपम उदाहरणों से तुलना करने वाली मूर्तियाँ भारत में अन्यत्र नहीं पाई जातीं। मद्रास संग्रहालय में रखी हुई शिला पर बुद्ध को, उनको मारने के लिए उनके विरोधी देवदत्त के द्वारा छोड़े हुए मत्त हाथी के सहित, अंकित किया गया है। इसमें हाथी को दो बार अंकित किया गया है। एक ओर क्रोधाविष्ट हाथी ने अपनी सूँड़ में एक दर्शक को पकड़ लिया है, परन्तु दूसरी ओर वही बड़ी भक्ति और श्रद्धा से बुद्ध भगवान् के आगे झुका हुआ है। (दृष्टव्य-प्लेट १७-वागेल्स बुद्धिस्ट आर्ट)। अमरावती के शिल्पी ने भावों को जैसी सूक्ष्मता और यथार्थता के साथ अभिव्यंजित किया है वह सांची के बेतूके व्यौरों की रचना करने वाले शिल्पियों के बस की बात नहीं। राजसभा के दृश्य अंकित करने वाली मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। कुछ मूर्तियों में युवकों के साथ क्रीड़ा करती हुई युवतियों को प्रशंसनीय ढंग से अंकित किया गया है। कमल की चौकियों पर खड़े हुए बुद्ध की प्रतिमाएँ अमरावती, मथुरा और गान्धार तीनों स्थानों पर मिलती हैं। इसी प्रकार इन सभी शैलियों में प्रभामण्डल से युक्त बुद्ध भी अंकित किये गये हैं।

जान मार्शल ने लिखा है— यदि हम भारतीय मूर्ति-कला का ज्ञान केवल भारत में प्राप्त मूर्तियों के आधार पर प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें उसका आधा ज्ञान ही प्राप्त हो सकेगा। उसका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए बौद्ध-धर्म

के उत्थान काल में मध्य एशिया, चीन तथा जापान में मूर्तिकला का जो विस्तार हुआ उसका भी हमें अध्ययन करना होगा।

साथ ही यह भी विचारणीय है कि जैसे-जैसे यह कला तिब्बत, बर्मा और स्याम में फैली यह नवीन स्वरूपों और सौन्दर्य से परिवेष्टित होकर विकसित होती गई। कम्बोज और जावा में तो इन कलाकृतियों के सौन्दर्य पर आश्चर्य से हमारे नेत्र विस्फारित हो जाते हैं।

विदेशों में बौद्ध-मूर्तियाँ

बौद्ध-धर्म सम्बन्धी मूर्तियाँ भारत के बाहर जावा, लंका, बर्मा और तिब्बत में प्रमुख रूप से पायी गई हैं। इनमें लंका और जावा में प्राप्त बौद्ध-मूर्ति-कला अधिक उत्कृष्ट और महत्वपूर्ण है। लंका आज भी बौद्ध-धर्म का अनुयायी है। अनुराधपुर के स्तूप लंका के बौद्ध स्मारकों में बहुत प्रसिद्ध हैं। ८००-१००० ई० में निर्मित ये विशाल बौद्ध स्तूप ठोस ईंटों के बने हुए हैं। जेतवनाराम का स्तूप सबसे विशाल है। इसे ३२५-३५२ ई० में राजा महासेन ने बनवाया था। अनुराधपुर में अत्यन्त उत्कृष्ट कलापूर्ण मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। प्रोफेसर वोगेल ने यहाँ की सीढ़ियों की प्रशंसा में लिखा है कि 'कला की ऐसी कृति का अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। परन्तु लंका में बुद्ध के जीवन के दृश्यों तथा जातक की कथाओं की अंकित करने वाली मूर्तियाँ नहीं मिलती हैं। अनुराधपुर में बुद्ध की एक ८ फीट ऊँची मूर्ति मिली है। इसमें बुद्ध पद्मासन लगाये बैठे हैं। प्रोफेसर वोगेल ने इसकी बड़ी प्रशंसा की है। वे लिखते हैं—निस्संदेह यह एक अत्यन्त उत्कृष्ट कलाकृति है। बुद्ध के मुख पर अत्यन्त प्रशंसनीय ढंग से आध्यात्मिक शांति की अभिव्यंजना की गई है।' लंका-तिलक तथा थूपाराम दो प्रसिद्ध मंदिर भी यहाँ पर हैं। इनके अतिरिक्त अनुराधपुर के ढंग के ही दो विशाल स्तूप पोलोन्नरुव में हैं।

जावा में बुद्ध-मूर्तिकला अपने चरम उत्कर्ष को प्राप्त हुई है। वहाँ पर बोरोबुदुर नामक स्थान पर ८ वीं शताब्दी में शैलेन्द्र वंशीय राजाओं ने एक विलक्षण स्तूप का निर्माण करवाया था। यह स्तूप निर्माण-कौशल, अलंकरण-सामग्री तथा शिल्पी के परिश्रम की अपूर्व झलक का परिचय देता

है। प्रत्येक दृष्टि से यह अपनी विशिष्टता रखता है। इसमें सात मंजिलें हैं। इसके चारों ओर बाहरी भाग में ध्यान करते हुए बुद्ध को चार रूपों में सजाया गया है। इस प्रकार चारों ओर सैकड़ों बुद्ध की मूर्तियाँ बनी हैं। ये मूर्तियाँ विभिन्न मुद्राओं में हैं और लम्बी-लम्बी पंक्तियों में निर्मित हैं। इन सब मूर्तियों में साम्य है और यही इस स्तूप की विशेषता है। इसकी गैलरियों में बुद्ध के जीवन से संबंधित अनेक दृश्य और जातक की कथाएँ अंकित हैं। इस प्रकार यहाँ मूर्तियों की बहुत लम्बी पंक्तियाँ हैं। इन मूर्तियों की संख्या लगभग १५०० है। इनको यदि एक पंक्ति में सजा दिया जाय तो यह पंक्ति ३ मील लम्बी होगी। इनमें मनुष्यों और

पशुओं दोनों की मूर्तियाँ हैं। प्रोफेसर वोगल ने इनकी प्रशंसा करते हुए लिखा है—‘यद्यपि उत्कृष्टता की दृष्टि से ये समान नहीं हैं फिर भी इनमें से अधिकांश सामान्य से कहीं उत्कृष्ट की हैं और कुछ तो वास्तव में अपने क्षेत्र में अनुपम हैं।’ विशेषज्ञों ने बोरोबुदुर की कला की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। “कला की दृष्टि से बोरोबुदुर की मूर्तियाँ अमूल्य हैं। पूर्वी देशों में संख्या और सुन्दरता की दृष्टि से उनकी समता और किसी देश की मूर्तियाँ नहीं कर सकती। बुद्ध की गाथाओं और सिद्धांतों को कहीं भी इतनी व्यापकता और विस्तार के साथ मूर्तिमान नहीं किया गया है। उनकी शैली भी अपनी विशिष्ट है। उनमें अत्यन्त मनोरमता के साथ आध्यात्मिक शांति को भी अभिव्यक्त किया गया है।”

मध्यम मार्ग

भिक्षु राष्ट्रपाल

भगवान् बुद्ध को गया में जाकर ध्यान-समाधि का अनुभव करते हुए ज्ञान का नया मार्ग मिला। इस मार्ग का लोगों को उपदेश देना चाहिये या नहीं, इस संबंध में उनके मन में बहुत से अनुकूल-प्रतिकूल विचार आए। अंतमें उन्होंने यह मार्ग सबको दिखा देने का निश्चय किया। आलार कालाम तथा उद्रक रामपुत्र को इस मार्ग का तुरंत बोध हो गया होता, पर कुछ ही समय पूर्व उनकी मृत्यु हो चुकी थी। रह गये उनके साथ तपश्चर्या करनेवाले पाँच भिक्षु। उस समय वे वाराणसी में ऋषिपत्तन में रहते थे। उनके मिलने के लिए बुद्ध भगवान् यात्रा करते हुए वाराणसी आये और बड़े परिश्रम से उन पाँच भिक्षुओं को विश्वास करा दिया कि उन्होंने जो मार्ग ढूँढ़ निकाला है वही तत्त्व-बोध का सच्चा मार्ग है।

भगवान् बुद्ध ने इन पाँच भिक्षुओं को इस प्रकार उपदेश दिया—“भिक्षुओ ! प्रव्रजितों को इन दो अन्तों को न जाना चाहिए। ये दो अन्त कौन-से हैं ? पहला कामोप-भोगों में सुख मानना यह एक अंत हीन, ग्राम्य सामान्य-जनसेवित, अनार्य और अनर्थकारी है। दूसरा अन्त शरीर-पीड़न है। यह दुःख-व्यापक, अनार्य और अनर्था-वह है। इन दो अन्तों को न जाते हुए तथागत ने सुदृष्टि और ज्ञान उत्पन्न करनेवाला, उपशम, प्रज्ञा, संबोधि और निर्वाण का कारणभूत मध्यम मार्ग ढूँढ़ निकाला है।

वह मार्ग कौन-सा है ? सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि यही वह आर्य अष्टांगिक मार्ग है।

भिक्षुओ, दुःख नाम का पहला आर्यसत्य यह है कि जन्म दुःखकारक है, जरा दुःख-कारक है, व्याधि भी दुःख-कारक है, मरण भी दुःख-कारक है, शोक, परिदेव, दुःख दौर्मनस्य, उपायास, ये भी दुःखकारक हैं। अप्रियों का समागम दुःख-कारक है, और प्रियों का वियोग दुःख-कारक है। इच्छित वस्तु मिलती न हों तो भी दुःख होता है। संक्षेप में पाँच उपादान स्कंध दुःख-कारक हैं।

“भिक्षुओ, पुनः-पुनः उत्पन्न होनेवाली और अनेक विषयों में रमनेवाली तृष्णा—जिसे काम-तृष्णा, भव-तृष्णा और विभव-तृष्णा कहते हैं, दुःख-समुदय नामक दूसरा आर्य-सत्य है।

वैराग्य से उस तृष्ण का पूर्ण निरोध करना, उससे मुक्ति प्राप्त करना, यह दुःख-निरोध नाम का तीसरा आर्यसत्य है।

और आर्य अष्टांगिक मार्ग, यह दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा नाम का चौथा आर्यसत्य है। संक्षेप में यही मध्यम मार्ग है।

नये प्रकाशन

बौद्ध-कलाकृतियाँ—लेखिका—विद्यावती 'मालविका' । प्रकाशक—हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, पो० बक्स नं० ७०, ज्ञानवापी, वाराणसी । मूल्य ३) ।

'बौद्ध-कलाकृतियाँ' मालविका जी की अब तक की सभी रचनाओं में सर्वोत्कृष्ट है । इसमें भारतीय बौद्ध-कलाकृतियों पर विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला गया है । पुस्तक २१ परिच्छेदों में विभक्त है । ३२ पृष्ठों की सुन्दर एवं गवेषणात्मक भूमिका है, जिसमें मध्यभारत, विन्ध्यप्रदेश और मध्यप्रदेश की कलाकृतियों का ऐतिहासिक तथा पुरातात्विक दृष्टिकोण से विचार किया गया है । उज्जैनी, माहिष्मती, कसरवद, धमनार, चम्पावती, वाघ, तुम्बवन, पारा, खेजदिया भोप, राजपुर, ग्यारसपुर, विदशा, साँची, खजुराहो, भद्रावती, भरहुत आदि के सम्बन्ध में इस पुस्तक में अलग-अलग विस्तार-पूर्वक लिखा गया है । अन्त में परिशिष्ट के रूप में राजपूत कलाकृतियों और मुस्लिम युग की ऐतिहासिक स्थलियाँ (सारंगपुर और मांडव) का भी परिचय दिया गया है । इनके अतिरिक्त मालवा में बौद्धधर्म के अवशेष, मालवा के बौद्ध-साहित्यिक तथा बौद्ध महिलाओं की निर्मल प्रेरणा शीर्षक से तीन स्वतंत्र, किन्तु कला-सम्बन्धी ही लेख हैं । यह पुस्तक भारतीय और विशेषकर मध्यभारतीय बौद्ध-संस्कृति, कला, पुरातत्व, साहित्य एवं जीवन का इतिहास है । इसे भारतीय बौद्ध-कला का दिग्दर्शन या रूपरेखा भी कहा जा सकता है ।

मालविका जी ने ग्रन्थ की भूमिका में लिखा है—
"बौद्ध-संस्कृति, कला-कृतियाँ और निर्मल भावनायें हिमकिरीटनी भारत-भूमि के अञ्चल से विश्व को प्राप्त हुई । सम्प्रति उनकी पुण्य-स्मृतियों को सँजोई कला-कृतियाँ चीन, जापान, श्याम, सिंहल, बर्मा, तिब्बत आदि सुदूर देशों में भी विद्यमान हैं, जिनमें से कुछ पावन स्थलियाँ अति प्रसिद्ध हैं । भारत में भी लुम्बिनी, सारनाथ उदुगया, कुशीनगर, राजगृह, अजन्ता, उज्जैन, साँची, वाघ आदि सर्वविदित बौद्ध-कला केन्द्र हैं । कुछ ऐसे भी स्थल हैं जिनके गर्भ में छिपे हुए कला-आगार अतीत के गौरवमय इतिहास को लिए हुए समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं । और, कुछ ऐसे भी कला-केन्द्र हैं, जो नितान्त ध्वंसित हो अपने वैभव के इतिहास को विस्मृत कर चुके

हैं । इन कला-केन्द्रों का इतिहास, विवरण तथा दर्शन मात्र हृदय को श्रद्धा-विभोर कर देता है । उनके सम्बन्ध में कुछ लिखना उनके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि समर्पित करना है । ... बौद्ध-कलाकृतियों के उत्कृष्ट प्रतीकों को ही मैंने अपने इस ग्रन्थ में स्थान दिया है ।"

आर्ट पेपर पर १८ चित्र विभिन्न स्थानों के छपे हैं । पुस्तक की छपाई सुन्दर और मोटे कागज पर हुई है । छपाई मोनो टाइप में है तथा बहुत ही भव्य है । इस सजिल्द पुस्तक का मूल्य ३) अधिक नहीं है । आवरण पृष्ठ आकर्षक एवं कलात्मक है । इस महत्वपूर्ण एवं सुन्दर रचना के लिए मालविका जी को हार्दिक बधाई ।

ओम् मणि पद्मे हुं—लेखक-भिक्षु धर्मरक्षित और लामा लोबजंग । प्रकाशक—लामा लोबजंग (कबु), लेह, लद्दाख । प्राप्तिस्थान—महाबोधि पुस्तक भण्डार, सारनाथ, वाराणसी ।

यह पुस्तक तिब्बती भाषा के तीन ग्रन्थों से संकलित करके हिन्दी में अनूदित की गई है । भिक्षुणी कमला, प्रतिमाकरण, प्रदीप-पूजा, चीन को भारतीय उपहार, महाकारुणिक, ओम् मणि पद्मे हुं—ये अंश गेलोंग मा पलमे नमथर, मणि कम्बू और कंग्यूर के दुल्हा से संकलित हैं । आर्यलोकितेश्वर स्वतन्त्र लेख है । पुस्तक के प्रारम्भ में लद्दाखी जनता के भाग्य-विधाता रिम्पोछे श्री कुशोक बकुल का संक्षिप्त जीवन-चरित्र दिया गया है और पुस्तक उन्हीं को समर्पित की गई है । पुस्तक में श्री कुशोक बकुल और आर्य अवलोकितेश्वर के रंगीन चित्र दिये गये हैं । मुख्य-पृष्ठ पर सुश्री विद्यावती 'मालविका' द्वारा चित्रित भगवान्-बुद्ध का तिब्बती शैली का तिरंगा चित्र है ।

इस पुस्तक से हिन्दी पाठकों को 'ओम् मणि पद्मे हुं' का ज्ञान हो जायेगा । यह तिब्बती जनता का महामंत्र है जिसे वह सदा जपा करती है । इस पुस्तक के सभी अंश उस महामंत्र के ही प्रभाव को प्रगट करने वाले हैं । महा-यान की भावना से परिचय प्राप्त करने के लिए उसे पढ़ना उपयोगी होगा । पुस्तककी छपाई-सफाई सब सुन्दर है । लेखकद्वय का यह प्रथम-प्रयास सराहनीय है । आशा है कि उनका उत्साह बना रहेगा और अन्य भी तिब्बती ग्रन्थों का अनुवाद हिन्दी में प्रस्तुत करेंगे ।

—दिव्यचक्षु



नवबौद्ध उदारता अपनाये

सारनाथ में अम्बेडकर-स्मृति-दिवस सम्पन्न

६ दिसम्बर को दिनमें ३॥ बजे सारनाथ के मूलगन्ध कुटी विहार में भदन्त शासनश्री महास्थविर के सभापतित्व में डाक्टर भीमराव अम्बेडकर का प्रथमवर्षीय स्मृति-दिवस मनाया गया।

उक्त अवसर पर भाषण करते हुए भिक्षु धर्मरक्षित ने कहा कि डाक्टर भीमराव अम्बेडकर का उद्देश्य पवित्र था और उन्होंने शुद्ध मन से बौद्ध-धर्म अपनाया था, किन्तु सम्प्रति नवबौद्ध उत्तेजनापूर्ण भाषण करते और पारस्परिक कटुता फैलाते देखे जा रहे हैं, उन्हें उदारता अपनानी चाहिए। समाज में कटुता का निर्माण कर नवबौद्ध बौद्धधर्म की भलाई न कर अहित ही करेंगे। परस्पर भेदभाव फैलाने की भावना निच है। डाक्टर अम्बेडकर मानवता के एक महान पुजारी थे, उनके हृदय में मानव मात्र के प्रति प्रेम था अतः उनके अनुयायियों का कर्तव्य है कि उनके आदर्शों को अपनाएँ।

आगे आपने कहा कि हमें भय है कि नवबौद्धों में आने

वाले कुछ दोषों के कारण लंका, बर्मा आदि देशों के बौद्ध अपने से इन्हें अलग न समझने लगे। डाक्टर

अम्बेडकर महान थे किन्तु वे बुद्ध नहीं थे, इसका ध्यान नवबौद्धों को सदा रखना चाहिए। सभा में श्री फौजदार सिंह तथा बालेश्वर प्रसाद के भी ओजस्वी भाषण हुए।

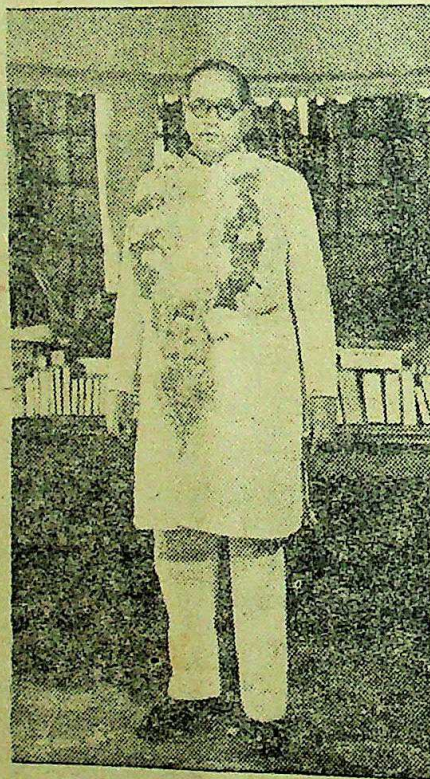
उन्होंने डाक्टर अम्बेडकर के जीवन-चरित्र व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला।

अध्यक्षपद से भाषण करते हुए भदन्त शासनश्री महास्थविर ने कहा कि सबको प्रेम एवं सद्भाव पूर्वक रहना चाहिए और डाक्टर अम्बेडकर के बतलाए आत्म-सम्मान, आत्म-संयम, आत्म-विश्वास, आत्म-चिन्तन इन चार बातों का पालन करना चाहिए।

प्रारम्भ में छात्रों द्वारा मंगल-गान हुआ तथा अन्त को लामा लोबजंग ने धन्यवाद दिया। दोपहर में महाबोधि-सभाकी ओर से भिक्षुओं को भोजन-दान दिया गया।

बुद्ध-शिक्षा से ही जगत् का कल्याण—४ दिसम्बर को नई दिल्ली के बुद्ध विहार में भारतीय महाबोधि सभा द्वारा आयोजित सभा में भाषण करते हुए लंका के प्रधान मंत्री श्री बण्डार नायक ने कहा कि संसार की परिस्थिति बड़ी

भयावह है। केवल बुद्ध शिक्षा से ही जगत् का कल्याण सम्भव है। यदि मनुष्य जीना चाहता है तो उसे एटम बम



डा० भीमराव अम्बेडकर

के सम्मुख भगवान् बुद्ध की शिक्षा का ही सहारा लेना होगा। यह एटम बम से अत्यधिक शक्तिशाली और कल्याणकारी है। एटम बम का मुकाबिला भगवान् बुद्धके बतलाए हुए अनात्मवाद और सम्यक् विचार से ही किया जा सकता है।

आगे उन्होंने कहा कि धर्म में नये युग के अनुसार कुछ सुधार भी अपेक्षित हैं। पुरातन सत्य अपरिवर्तनीय हैं, किन्तु उन्हें नये ढंग से रखने की आवश्यकता है। इस भौतिकवादी उन्नतिकाल में धर्म तभी जीवित रह सकता है, जब कि उसे युग के अनुसार प्रस्तुत किया जाय।

६ दिसम्बर को नई दिल्ली के अम्बेडकर-भवन में डाक्टर भीमराव अम्बेडकर की पुण्य-जयन्ती में बोलते हुए श्री बण्डार नायक ने कहा कि लंका भारत में बौद्ध धर्म के प्रचारक भिक्षुओं को भेजने में प्रसन्नता का अनुभव करेगा और बुद्ध-मन्दिरों के निर्माण में पुण्य मानेगा।

अमेरिका में धर्म प्रचार—न्यूयार्क में अमेरीकी बौद्धों ने बीस लाख रुपये के व्यय से एक बौद्ध-पुस्तकालय की स्थापना की है जिसमें दस हजार से भी अधिक मूल्य की पुस्तकें हैं।

वाशिंगटन में श्रीमती हगमेकलीड ने बच्चों के लिए एक बौद्ध साप्ताहिक स्कूल स्थापित किया है। वहाँ एक बुद्ध मन्दिर भी बनाया गया है।

महाबोधि सभा का वार्षिक अधिवेशन—१ दिसम्बर को कलकत्ता में भारतीय महाबोधि सभा का वार्षिक अधिवेशन ज महारा कुमार सिक्किम के सभापतित्व में सम्पन्न हुआ। वार्षिक विवरण पढ़े जाने के उपरान्त पदाधिकारियों का निर्वाचन हुआ। अधिवेशन में चार प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए। पहले प्रस्ताव में परिगणित-जाति के उन लोगों को धन्यवाद दिया गया, जिन्होंने कि बौद्धधर्म ग्रहण किया है तथा करने के लिए निश्चय किया है। दूसरे प्रस्ताव द्वारा परिगणित जाति को मिलने वाली सुविधाओं को उनके लिए भी जारी रखने का सरकार से निवेदन किया गया, जो कि परिगणित जाति के लोग बौद्धधर्म अपना लिए हैं और उन्हें प्राप्त सुविधाओं से वंचित किया जा रहा है। तीसरे प्रस्ताव द्वारा केन्द्रीय सरकार को बुद्धपूर्णिमा को सरकारी छुट्टी घोषित करने के लिए धन्यवाद दिया गया

और यह भी निवेदन किया गया कि इसे सार्वजनिक छुट्टी भी घोषित कर दिया जाय। चौथे प्रस्ताव द्वारा निश्चय हुआ कि शीघ्र ही महाराज कुमार सिक्किम की अध्यक्षता में एक प्रतिनिधिमण्डल श्री जवाहरलाल नेहरू से मिले और नवबौद्धों की कठिनाइयों को उनके समक्ष प्रस्तुत करे।

कामठी में कार्तिकोत्सव—ज्ञात होता है कि सिद्धार्थ नगर, कामठी में कार्तिकोत्सव एवं मोगल्लान-निर्वाण दिवस धूमधाम से मनाया गया। सभा में भारतीय बौद्ध महासभा कामठी के सभापति तथा मंत्री के भाषण हुए।

लोकसभा में ९ बौद्ध सदस्य—इस समय लोक सभा में ९ बौद्ध सदस्य हैं, जो सभी रिपब्लिकन पार्टी के हैं। उनके नाम हैं—सर्वश्री एन० शिवराज, बी० के० गायकवाड़, बी० सी० काम्बळे, जी० के० माने, एस० के० माने, एस० के० दिवे, बाला साहेब शालुके, हरिहरराव सोनुले, कृष्णदास परमार तथा डी० ए० कट्टी।

पेपला में बौद्ध दीक्षा—मेरठ जिलान्तर्गत जानी डाकखाना क्षेत्र के ग्राम पेपला से श्री धर्मपाल सिंह ने सूचित किया है कि २४ नवम्बर को वहाँ के सभी लोगों ने समारोह पूर्वक बौद्ध दीक्षा ली। लखवोय में भी २६ नवम्बर को दीक्षा-समारोह हुआ। मेरठ में स्थान-स्थान पर धर्म-दीक्षा की तैयारी हो रही है।

सिद्धार्थ वाचनालय का वार्षिकोत्सव—पुलगाँव में २८ नवम्बर को रात में ९ बजे श्री भगवती प्रसाद मौर्य, प्रधानमंत्री, रिपब्लिकन पार्टी, उत्तर प्रदेश द्वारा सिद्धार्थ नवयुवक वाचनालय के तृतीय वार्षिकोत्सव का उद्घाटन हुआ। सभा की अध्यक्षता श्री ध्रुवकुमार खोब्रागड़े ने की।

गरुडाकृति सजाये हुए मंच पर श्री मौर्य के आते ही उनका भव्य स्वागत किया गया। उन्होंने अपने ओजस्वी भाषण में कहा कि बौद्ध धर्म की सम्यक् जानकारी के लिए पुस्तकालय एवं वाचनालय का होना अत्यन्त आवश्यक है। आप लोगों का कार्य बहुत ही सराहनीय है जो कि सुन्दर एवं सुव्यवस्थित वाचनालय की स्थापना की है। इस वाचनालयको नगर पालिका तथा राज्य सरकार से सहायता मिलनी चाहिए। नागरिकों का भी कर्तव्य है कि इसे यथाशक्ति सहायता प्रदान करें।

भारतीय बौद्ध महिलामण्डल की उपशाखा वार्ड नं०

२०८

धर्मदूत

८ की ओर से भी श्री मौर्य का उत्साहवर्धक स्वागत किया गया।

दीक्षा-समाचार—ज्ञात हुआ है कि श्रामणेर मेधंकर ने देसाईगंज, वारसा (चाँदा) में २० नवम्बर को २०० अस्पृश्यों को दीक्षा दी। सावंगी, पिपलगांव, लाइज बडसर में भी लगभग १००० व्यक्तियों ने दीक्षा ली। दीक्षा-समारोह में सर्वत्र श्रामणेर मेधंकर ने त्रिशरण-पंचशील दिया और देसाईगंज के श्री जगन्नाथ मेश्राम मंत्री ने भाषण दिए। यह सारा कार्यक्रम देसाईगंज विड़ी मजदूर संघ की ओर से सम्पन्न हुआ था।

—२६ अक्टूबर को विदर्भ के जिला अमरावती में कवाडगाहान में भिक्षु आनन्द कौसल्यायन द्वारा १००० उपासक-उपासिकाओं ने बौद्ध दीक्षा ली। श्रामणेर सुमेध ने २२ प्रतिज्ञायें करायीं। दीक्षा समारोह में आनन्द जी के उपदेश के पश्चात् श्रीमती पार्वती बाई ने 'देव और धर्म' विषय पर मराठी में भाषण किया। अन्त में सन्त सोपानदास के भजन हुए।

नवबौद्धों पर अत्याचार—जिला छिंदवाड़ा की सौसर तहसील में नवबौद्धों को गैरबौद्ध समाज की ओर से अनेक प्रकार से सताये जाने के समाचार मिले हैं। वाडेगाँव, खेडीकला, सीतापार, गउमोहो, घडेल्ला, देवी, कामठी कला, हिवरा आदि ग्रामों में हुए अत्याचारों के रोमांचकारी वर्णन प्राप्त हुए हैं। यह सारे अत्याचार इसलिए हो रहे हैं कि इन लोगों ने अपने पूर्व के धर्म को त्याग कर बौद्धधर्म अपना लिया है। हर स्थान से यह निवेदन किया गया है कि सरकार द्वारा बौद्धों को शीघ्र संरक्षण प्राप्त होने चाहिए।

अभी-अभी एक ताजे समाचार में बतलाया गया है कि नागपुर से ८० मील दूर काटोड तहसील के वाई नामक गाँव में श्री खुशाल रघुनाथ बागाड़े नामक एक नवयुवक को इसलिये जान से मार डाला गया है कि वह बौद्ध हो गया था और और दीवाली में भाग नहीं लिया

था। सरकार को शीघ्रातिशीघ्र इसकी जाँच करानी चाहिए और गुण्डों को कड़ी सजा देनी चाहिए। हमें विश्वास है कि मध्यप्रदेश की राज्य सरकार अवश्य कड़ा कदम उठायेगी, जिससे कि भविष्य में ऐसे अत्याचार न हो सकें।

गोंदिया में धार्मिक समारोह—२ नवम्बर को गोंदिया में पुलिस स्टेशन के सामने वाले मैदान में डॉ० भगतराव की ओर से एक धार्मिक समारोह का आयोजन किया गया था। इस समारोह की अध्यक्षता श्री मोडकू सतदेवे ने की, जिसमें ४०, ५० ग्रामों के लोग सम्मिलित हुए थे। सभा में अनेक लोगों के भाषण हुए, जिनमें श्री हवीब भाई, श्री गनेशराम सतदेवे और श्री नथू लाल खोब्रागडे के नाम उल्लेखनीय हैं। गोंदिया नवयुवक मण्डल की ओर से धर्मदीक्षा की तैयारी हो रही है।

आगरा में वर्मा प्रतिनिधियों का स्वागत—वर्मा के बुद्ध शासन कौंसिल के चेयरमैन तथा बोधगया मंदिर प्रबन्ध समिति के सदस्य श्री ओगपे ने आगरा के बुद्ध विहार में सार्वजनिक प्रवचन किया। आप आगरा में मुगलकालीन इमारतों के देखने के साथ ही साथ भारत में बौद्ध धर्म के जागरण के उत्साह का निरीक्षण करने आये थे। आगरा के बौद्धों को दो घण्टे पूर्व ही उनके आने का समाचार ज्ञात हुआ था। थोड़े ही समय में बौद्धों ने हजारों की संख्या में एकत्रित होकर अपने उत्साह को प्रदर्शित किया।

भारतीय बौद्ध महासभा, आगरा ने उनका शानदार स्वागत तथा अभिनन्दन किया। अपने भाषण में श्री ओगपे ने बताया कि मैं वर्मा से विशेषतौर से भारतवर्ष के इस चमत्कारी आन्दोलन को देखने भेजा गया हूँ। यह बाबा साहब डॉ० अम्बेडकर के व्यक्तित्व का ही प्रभाव है कि भारत में यह सब चमत्कार हुआ है। इसे सभी बौद्ध देश बड़ी उत्सुकता से देख रहे हैं। अपने जोरदार शब्दों में कहा कि हम यहाँ बौद्धों तथा भारतीय बौद्ध महासभा को हर प्रकार का सहयोग देने को तैयार हैं।

संयुक्त निकाय

दो भागों में

अनुवादक

भिक्षु जगदीश काश्यप

भिक्षु धर्मरक्षित

सुत्त-पिटक के तीसरे ग्रन्थ संयुक्त निकाय का हिन्दी अनुवाद दो भागों में प्रकाशित हो गया है। पृष्ठ संख्या क्रमशः ५२८ तथा ४४२। दोनों भागों का मूल्य क्रमशः ७) और ६) है।

बुद्धघोषकृत बौद्धयोग का उत्कृष्ट ग्रन्थ

विशुद्धि मार्ग

भिक्षु धर्मरक्षित

द्वारा हिन्दी में अनूदित

‘विशुद्धि मार्ग’ पालि-साहित्य का एक अमूल्य ग्रन्थ-रत्न है। इसमें बौद्ध-दर्शन की विवेचनात्मक गवेषणा के साथ योगाभ्यास की प्रारम्भिक अवस्था से लेकर सिद्धि तक की सारी विधियाँ सुन्दर ढंग से समझाई गई हैं। इस ग्रन्थ में बौद्धधर्म का कोई भी ऐसा अंग नहीं है जो अछूता हो। एक प्रकार से इसे बौद्धधर्म का विश्वकोश कहा जा सकता है। यद्यपि विशुद्धिमार्ग प्रधानतः योग-ग्रन्थ है, तथापि बौद्धधर्म का जैसा सुन्दर निरूपण इसमें किया गया है, वैसा अन्य किसी भी ग्रन्थ में प्राप्त नहीं है। योगियों के लिए तो यह गुरु के समान निर्देश करने वाला महोपकारी ग्रन्थ है।

यह दो भागों में मुद्रित हो गया है। पहले भाग में समाधि निर्देश पर्यन्त ११ परिच्छेद हैं और दूसरे में शेष। पहला भाग ४३० पृष्ठों का है और दूसरा ३५०। दोनों के मूल्य क्रमशः १०) और ८) हैं। ग्रन्थ का आकार रायल है।

प्रातिस्थान :—

व्यवस्थापक, महाबोधि पुस्तक भण्डार,
सारनाथ, वाराणसी।

पालि व्याकरण

भिक्षु धर्मरक्षित

द्वारा लिखित

पालि सीखनेवालों के लिए परम उपयोगी पुस्तक। इससे सुन्दर और सरल पुस्तक आज तक कोई दूसरी उपलब्ध नहीं। हाईस्कूल से एम. ए. तक कीसों में स्वीकृत। मूल्य २।)

प्रातिस्थान—

व्यवस्थापक, महाबोधि पुस्तक-भण्डार,
सारनाथ, वाराणसी।

बौद्धधर्म ही मानवधर्म

स्वर्गीय बाबा साहब डाक्टर भीमराव अम्बेडकर द्वारा लिखित तथा भिक्षु धर्मरक्षित द्वारा सम्पादित अद्भुत पुस्तक। सभी बौद्धों को इसे अपने पास रखना चाहिए। बाबा साहब की अन्तिम इच्छा क्या थी? इसमें पढ़ें।

मूल्य १।)

इसका मराठी संस्करण भी छप रहा है।

प्रातिस्थान—

व्यवस्थापक, ममता प्रकाशन, कबीरचौरा, वाराणसी

भारत सरकार से “रजिस्टर्ड”

सफेद दाग का शत्रु

इस रामबाण दवा से खी, पुरुष, बालकों के शरीर पर के दाग ऐसे निकल जाते हैं कि वह कहाँ थे इसका पता नहीं लगता। हजारों ने अनुभव करके प्रशंसापत्र भेजे हैं। मूल्य ५) रु०। डा० व्यय १।) रु०। अधिक विवरण मुफ्त मँगवाकर देखिये।

वैद्य के० आर० बोरकर (ध० दू०)

मु० पो० मंगरूपीर, जि० अकोला (विदर्भ)

सफेद कोढ़ के दाग

यह ऐसे निकल जाते हैं कि वे कहाँ थे इसका पता भी नहीं लगता।

भगवान जी जैन पाचोरा (खानदेश) की पुत्री का कोढ़ अच्छा हो गया और आपने हमको ५२) रु० इनाम दिया। ऐसे कई इनाम मिले और कोढ़ के हजारों लोग अच्छे हो गये। मू० ६।) रु० डा० ख० १५ आ०, विवरणपत्र मुफ्त मगावें। नक्कालों से सावधान रहें।

वैद्य वी० आर० बोरकर, आयुर्वेद भवन (ध० दू०)

मु० पो० मंगरूपीर, जि० अकोला (विदर्भ)

हिन्दी में बौद्धधर्म की पुस्तकें

विशुद्धिमार्ग (पहला भाग) — भिक्षु धर्मरक्षित	१०)	गुलसी के तीन पात — भिक्षु आनन्द कौसल्यायन	१)
विशुद्धिमार्ग (दूसरा भाग) — "	८)	बौद्ध-चर्या-विधि — भिक्षु धर्मरक्षित	१२)
दीविकाय — राहुल सांकृत्यायन	६)	थेरी गाथायें — भरतसिंह उपाध्याय	१॥)
मज्झिम निकाय — "	८)	बुद्ध और बौद्ध साधक — "	१॥)
विनय पिटक — "	८)	धम्मपद — राहुल सांकृत्यायन	१॥)
संयुक्त निकाय — भिक्षु ज० काश्यप और भिक्षु		बुद्धधर्म के उपदेश — भिक्षु धर्मरक्षित	२)
धर्मरक्षित प्रथम भाग ७), द्वितीय भाग	६)	बौद्ध विभूतियाँ — "	१)
बोधिचर्यावतार — शान्तिभिक्षु	१०)	लंका-यात्रा — "	१॥)
धम्मपद (कथाओं के साथ) — भिक्षु धर्मरक्षित	२॥)	नेपाल-यात्रा — "	४॥)
धम्मपद (गुटका) — "	१)	कुशीनगर का इतिहास — "	२॥)
तथागत-हृदय — "	१॥)	पालि-पाठ-माला — "	१)
पालि व्याकरण — "	२॥)	जातिभेद और बुद्ध — "	॥)
प्रथम बुद्ध-सन्देश — "	॥)	तेलकटाह गाथा — "	१२)
धम्मपद — अवधकिशोर नारायण	१॥)	बौद्ध-शिशु-बोध — "	१)
सुत्तनिपात — भिक्षु धर्मरक्षित	३)	कुशीनगर-दिग्दर्शन — "	१)
सुद्धकपाठ — भिक्षु धर्मरक्षित	१)	तथागत का प्रथम उपदेश — "	१)
पालि महाव्याकरण — भिक्षु जगदीश काश्यप	६)	सारनाथ-दिग्दर्शन — "	१)
थेरी गाथा — भिक्षु धर्मरक्षित	३)	बुद्धकालीन भारत का भौगोलिक परिचय	॥)
भगवान् बुद्ध की शिक्षा — देवमित्र धर्मपाल	१२)	पालि जातकावली — वटुकनाथ शर्मा	२॥)
बुद्ध-जीवनी — वेदराज प्रसाद	॥॥)	बुद्ध-वचन — भिक्षु आनन्द कौसल्यायन	॥)
बुद्धचर्या — राहुल सांकृत्यायन	८)	बुद्धवचनामृत — भिक्षु शासनश्री	१)
तथागत — आनन्द कौसल्यायन	१॥)	बौद्ध-कलाकृतियाँ — विद्यावती 'मालविका'	३)
बुद्ध और उनके अनुचर — "	१॥॥)	श्रद्धा के फूल — (कहानी-संग्रह)	१२)
बौद्धचर्या पद्धति — बोधानन्द महास्थविर	१॥॥)	बुद्ध-अर्चना — (कविता)	॥)
ओम् मणि पद्मे हुं — धर्मरक्षित और लोबजंग	॥॥)	पूर्णमा — (कविता)	॥२)
बौद्ध कहानियाँ — व्यथित हृदय	१॥)	कामना — (कविता)	१२)
सारनाथ-चाराणसी — भिक्षु धर्मरक्षित	१॥)	आदर्श कौतूहलियाँ	१॥)
इतिवृत्तक — भिक्षु धर्मरक्षित	॥॥)	नारी-हृदय (कहानी)	१॥)
बौद्धयोगी के पत्र — भिक्षु धर्मरक्षित	१)	बुद्ध-चरितावली — (सचित्र)	॥॥)
भगवान् हमारे गौतम बुद्ध — श्री० मनोरंजनप्रसाद	१२)	महामानव बुद्ध — राहुल सांकृत्यायन	२॥)
कपिलवस्तु-कुम्भिनी-दिग्दर्शन — श्रीविजय श्रीवास्तव	॥)	बौद्धधर्म ही मानवधर्म — डॉ० भीमराव अम्बेडकर	१)

नागरी लिपि में पालि ग्रन्थ

जातकडु कथा — भिक्षु धर्मरक्षित	१)	महावंसो — भिक्षु धर्मरक्षित	॥॥)
विशुद्धिमार्गदीपिका — धर्मानन्द कौशाम्बी	३॥)	धम्मचक्रपवत्तन सुत्त — "	१)
नवनीत टीका — "	२॥)	तेलकटाहगाथा — "	१)
अभिधम्मसंग्रह — "	२॥)	सुत्तनिपात — भिक्षु धर्मरक्षित	३)
पालि पाठ माला — भिक्षु धर्मरक्षित	१)	सुद्धकपाठ — "	१)
चरिया-पिटक — "	१॥)	सिद्धान्त सुत्त — भिक्षु कित्तिमा	॥)

सूचीपत्र के लिए २) के टिकट के साथ लिखें।

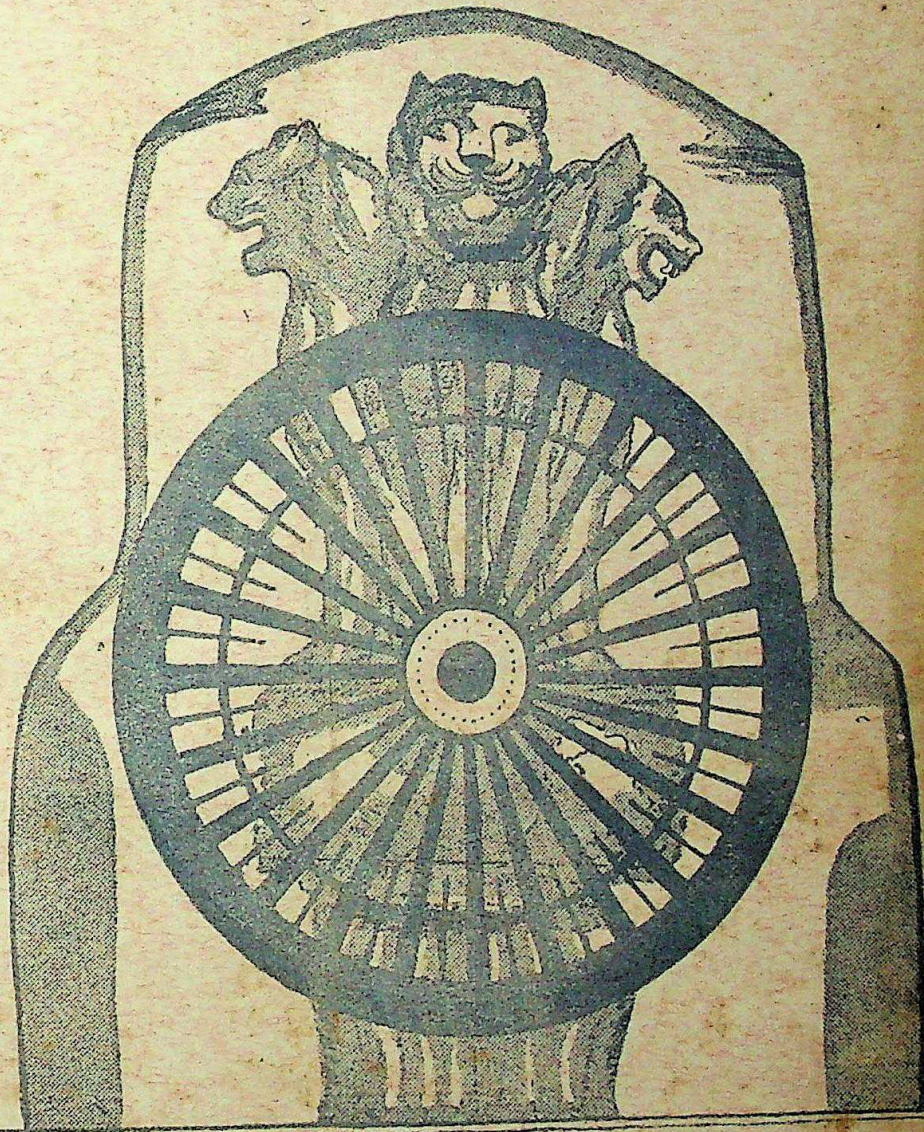
प्राप्ति स्थान :—

महाबोधि पुस्तक भण्डार, सारनाथ, वाराणसी।

प्रकाशक — भिक्षु एम० संघरत्न, महाबोधि सभा, सारनाथ, वाराणसी (बनारस)

मुद्रक — ओम्प्रकाश कपूर, श्रीमन्मन्दिर लिमिटेड, कबीरचौरा, वाराणसी (बनारस)। ५२४७-१४

धर्मदूत



महाबोधि समा का मासिक मुख-पत्र

जनवरी
वर्ष २२
अंक ४

एक अंक का ।
वार्षिक ४



विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१. बुद्ध-वचनानुसृत—'दोनों अन्तों के त्याग से ही मुक्ति'	२०९
२. बौद्धकालीन शिक्षण संस्थाएँ—प्रो० हरिश्चन्द्र	२१०
३. पालि साहित्य में गंगा नदी—डा० भरतसिंह उपाध्याय	२१३
४. भग्न प्रजातन्त्र की राजधानी : चुनार—श्री अनन्त	२१७
५. कहुणा-भैरवी (कविता)—सुश्री विद्यावती मालविका बी० ए०	२१९
६. सुगतपुरी (कहानी)—भिक्षु धर्मरक्षित	२२०
७. लहान्न के गोम्बा—श्री श्रीधर कौल	२२३
८. अजन्ता और वाघ की चित्रकला—श्री मधुकर	२२८
९. प्रगति-गान (कविता)—कुमारी यशोधरा शास्त्री	२३०
१०. बौद्ध-जगत्	२३१

'धर्मदूत' का मराठी संस्करण

हमारे मराठी पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि 'धर्मदूत' का मराठी संस्करण भी प्रकाशित करने का हमने निश्चय किया है। गत वर्ष ही, जब बाबा साहेब डा० भीमराव अम्बेडकर सारनाथ आए थे, तभी उन्होंने आग्रह किया था कि 'धर्मदूत' का मराठी संस्करण भी प्रकाशित किया जाय और इधर हमारे मध्यप्रदेश तथा बम्बई के पाठकों का भी बार-बार आग्रह हुआ है कि इस कार्य में विलम्ब न किया जाय, क्योंकि मराठी भाषी पाठकों को असुविधा होती है। पहले कुछ दिनों तक हिन्दी-मराठी दोनों भाषाओं में 'धर्मदूत' संयुक्त रूप से प्रकाशित होगा और मूल्य केवल ४) वार्षिक ही रहेगा। पीछे मराठी भाषी ग्राहकों की संख्या अधिक हो जाने पर दोनों संस्करण अलग-अलग प्रकाशित होने लगेगे। हम अपने कृपालु पाठकों एवं धर्म-बन्धुओं के सहयोग की प्रार्थना करते हैं।

व्यवस्थापक 'धर्मदूत', सारनाथ, वाराणसी (बनारस)।

धर्मदूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं । देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्जे कल्याणं परियासानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवल परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ । महावग्ग, (विनय-पिटक)

‘भिक्षुओ ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिये, लोक पर दया करने के लिये, देव-ताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो । भिक्षुओ ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्था में कल्याणकारक धर्म का उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो ।’

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष २२

सारनाथ,

जनवरी

वु० सं० २५०१

ई० सं० १९५८

अंक ९

बुद्ध-वचनामृत

‘दोनों अन्तों के त्याग से ही मुक्ति

एक समय भगवान् राजगृह के वेलुवन कलन्दक निवाप में विहार करते थे । उस समय राज-गृह में दो पक्ष के लोग एक गणिका के प्रेम में बँध, आपस में लड़ते थे, कलह करते थे, विवाद करते थे, एक दूसरे से हाथावाँही भी करते थे, एक दूसरे पर ढेला-पत्थर भी चलाते थे, एक दूसरे पर लाठी या हथियार से भी चढ़ जाते थे । उनमें कितने मर भी जाते थे, कितने घायल भी होते थे । तब कुछ भिक्षुओं ने भगवान् के पास जाकर यह बात कही । इसे जान, उस समय भगवान् के मुँह से उदान के ये शब्द निकल पड़े—

“प्राप्त कामभोगों के सेवन करने में कोई दोष नहीं, संसार के रहते ही पुण्य लाभ कर सकते हैं, पुण्य से ही संसार की वृद्धि होती है, इसलिए कामभोगों को प्राप्त करना ही चाहिए—यह दोनों प्रकार की मिथ्या धारणा चित्तमल से युक्त है । तृष्णा से आतुर, उसी में अनुरक्त प्रजा इसी को सार समझती है । यह उन वर्जनीय अन्तों में से एक है ।

“ब्रह्मचर्य-जीवन के साथ व्रतों का पालन करना ही सार है—यह एक अन्त है । कामभोगों के सेवन में कोई दोष नहीं—यह दूसरा अन्त है । इन दोनों प्रकार के अन्तों के सेवन से संस्कारों की वृद्धि होती है और उससे मिथ्या धारणा बढ़ती है । इन दो अन्तों को यथारूप नहीं देखने से, एक तो शान्त हो, उसी में फँस जाता है और दूसरा मार्ग से बहक जाता है । जो इन दोनों बातों को ठीक-ठीक जान लेते हैं, वे उनमें नहीं पड़ते । वे आवागमन में पड़ने वाले नहीं हैं ।”

—उदान ६, ८

बौद्धकालीन शिक्षण संस्थाएँ

प्रो० हरिश्चन्द्र

भगवान् बुद्ध ने कहा है—

मलिस्थिया दुच्चरितं

मच्छेरं ददतो मलं ।

मला वे पापका घस्मा

अस्मि लोके परस्मि च ।

ततो मला मलतरं

अविज्जा परमं मलं ।

एतं मलं पहत्वान

निम्मला होथ भिक्खवो ।

ऐसा ज्ञात होता है, तथागत के उक्त अविद्या विरोधी विचारों से विशेष प्रभावित होकर उनके शिष्य अनुयायी एवं समर्थकों ने शिक्षा-प्रसार को बुद्ध दर्शन का एक प्रमुख अंग स्वीकार कर, देश के विभिन्न भागों में विद्या मंदिरों की एक समुन्नत एवं सुसम्पन्न शृंखला को जन्म दिया । बुद्ध धर्म के उदार नियमों ने इन शिक्षा केन्द्रों को लोक-कल्याणकारी सार्वजनिक विद्यालयों का स्वरूप प्रदान कर दिया, जहाँ एकत्रित होकर सभी वर्गके नर-नारी अध्ययन कर सकते थे । शिक्षा-प्रसार की दृष्टि से वह भारत का स्वर्णयुग था । प्रसिद्ध चीनी पर्यटक युआन च्वांग के अनुसार सातवीं शती में भारतीय भूखण्ड में विद्यमान बौद्ध-विहारों की संख्या लगभग ५००० थी । इन्हीं विहारों में सरस्वती का वास होता था ।

उपनयन संस्कार की भाँति ही, शिक्षारम्भ करने से पूर्व शिक्षार्थी को पट्टबज्जा अथवा प्रव्रज्या लेनी होती थी । आठ वर्ष से कम आयु वाले बालक श्रामणेय पट्टबज्जा नहीं ले सकते थे । पट्टबज्जा के अवसर पर अभिभावक की स्वीकृति प्राप्त करना भी आवश्यक समझा जाता था । बीस वर्ष की आयु अथवा उसके उपरान्त पट्टबज्जा काल की समाप्ति के बाद उपसम्पदा की रस्म अदा होती थी । तब लगभग सभी उपयोगी शास्त्रों का अध्ययन कराया जाता

था । प्रारम्भिक काल में स्त्रियों को भी विद्या-लाभ की पूर्ण सुविधाएँ दी जाती थीं । सम्राट् अशोक की पुत्री शुभ-मूर्ति सुश्री संघमित्रा, शुभा, अनुपमा तथा सुमेधा आदि संघ की भिक्षुणियाँ और शीलमहारिका, प्रभु देवी, विजयांका आदि कवयित्रियाँ तथा नायनिका, प्रभावती, विजयमहारिका आदि शासिकाएँ, नारी शिक्षा के उस चर-मोक्षत काल की वे विदुषी महिलाएँ थीं जिनकी कीर्ति आज भी पूर्ववत् बनी हुई है । प्राथमिक शिक्षा, जिसके अन्तर्गत लिखना-पढ़ना और साधारण गणित आते हैं, बुद्ध धर्म के प्रचारकों ने देश के प्रत्येक भाग में पहुँचा दी थी । बौद्धकालीन शिक्षा-प्रणाली के कुछ चिरस्मरणीय विद्यालयों का नीचे उल्लेख किया जाता है ।

तक्षशिला

आधुनिक रावलपिण्डी नामक नगरके पश्चिम की ओर लगभग बीस मील की दूरी पर स्थित, पुरातन शिक्षा-संस्थाओं का सबसे अग्रगण्य विद्यापीठ था । तक्षशिला को महाभारत काल में ही अप्रतिम ख्याति प्राप्त हो चुकी थी । यहीं पर आचार्य धौम्य के शिष्य उपमन्यु, आरुणि और वेद ने शिक्षा पाई थी । जातक कथाओं के अनुसार तक्ष-शिला विद्याध्ययन के लिए काशी, राजगृह, पांचाल, मिथिला और उज्जयनी से शिक्षार्थी जाते थे । स्वयं बुद्ध के समकालीन वैद्यराज जीवक तथा बंधुल मल्ल, प्रसेन-जित, महालि आदि ने तक्षशिला में अध्ययन किया था । आचार्य पाणिनि और कौटिल्य भी संभवतः इसी विश्व-विद्यालय के स्वनामधन्य स्नातक थे । तक्षशिला में १८ प्रकार के शिल्पों (सिपों) की शिक्षा दी जाती थी । उनकी गणना इस प्रकार है—चिकित्सा, शल्य, धनुर्वेद, युद्ध-विज्ञान, हस्तिसूत्र, ज्योतिष, व्यापार, कृषि, संगीत, नृत्यकला, चित्रकला, इन्द्रजाल, गुप्तकोशज्ञान, मृगया, अंग-विद्या, पशु-पक्षी की बोली समझना, निमित्त-ज्ञान और विषोपचार ।

बौद्धकालीन शिक्षण संस्थाएँ

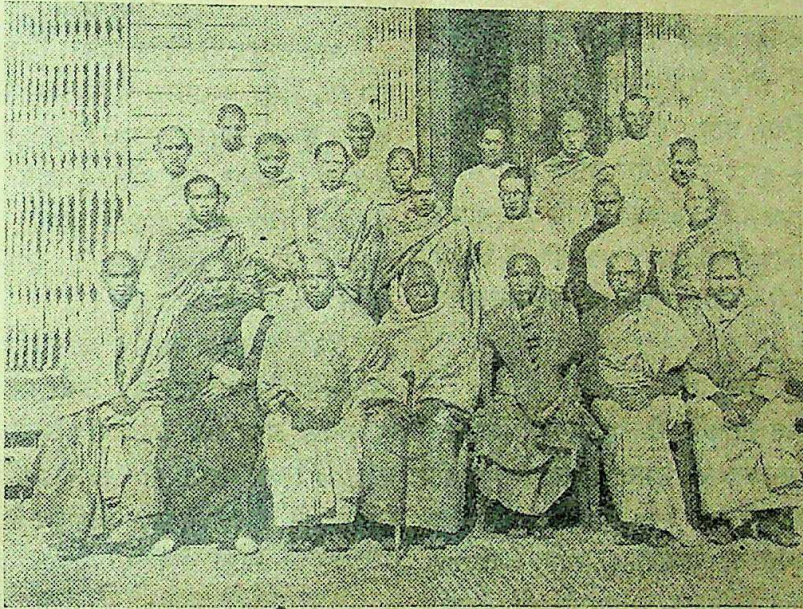
२११

तक्षशिला के विषय में कहा जाता है कि वहाँ एक एक अध्यापक के पास ५०० के लगभग शिक्षार्थी रहा करते थे। ऐतिहासिक और पुरातत्व शास्त्र के प्रमाणों से यह अत्युक्तिपूर्ण सिद्ध होता है। तक्षशिला में, वस्तुओं के जो भग्नावशेष प्राप्त हुए हैं, उनसे यह प्रमाणित नहीं होता है कि वहाँ इतनी विशाल संख्या में विद्यार्थियों के विद्या-लाभ करने एवं रहने के लिए भवन उपलब्ध थे। यह अवश्य है कि बड़ी भारी संख्या में तक्षशिला की ओर विद्यार्थियों का दल दौड़ा करता था। भारत के उत्तर - पश्चिमीय कोण पर स्थित होने के कारण तक्षशिला को अनेक आक्रमणकारियों से आहत होना पड़ा। विदेशी लोगों के सम्पर्क में आने और उनके प्रभुत्व स्थापन के फल-स्वरूप वहाँ पर पड़ाए जाने वाले विषयों में भी स्वाभाविक परिवर्तन हुए। काल की गति ऐसी है कि सातवीं शताब्दी में जब

धर्म का विख्यात महातीर्थ है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि वहाँ पर १५०० भिक्षुओं का विशाल विहार बना हुआ था।

नालन्दा

पटना नगर से ४० मील दक्षिण तथा राजगृह से लगभग ७ मील की दूरी पर स्थित था। यहाँ के पावारिक अम्ब-वन में भगवान् बुद्ध ने विहार किया था। यह छठी और सातवीं शताब्दी में प्रधान बौद्ध विद्या-केन्द्र था।



भारतीय 'बौद्धभिक्षुसंघ' की स्थापना के उपरान्त लिया गया चित्र। आगे ब्रैटे हुए, दायें से—भिक्षु धर्मरक्षित, भिक्षु आनन्द कौसल्यायन, भिक्षु ऊ चन्दिमा, भदन्त चन्द्रमणि महास्थविर, भदन्त शासनश्री महास्थविर, भिक्षु वीरधर्मवर, भिक्षु धर्माधार। पीछे—भिक्षु धर्मलोक, भिक्षु राष्ट्रपाल, भिक्षु धर्मपाल, भिक्षु प्रज्ञानन्द, भिक्षु ओभास आदि खड़े हैं।

खुदाई के आधार पर पता चलता है कि यहाँ का विश्व-विद्यालय एक मील की लम्बाई और आधे मील की चौड़ाई में फैला हुआ था। केन्द्रीय विद्यालय में सात विशाल वेष्टम बने थे और ३०० के लगभग अन्य विद्या-मंदिर थे। वास्तुओं की ऊँचाई का अनुमान इस श्लोक से लगाया जा सकता है, जिसमें उन्हें मेघों का आलिंगन करते

गुआन च्वांग भारत आया, तो तक्षशिला का विश्वविश्रुत विद्यालय विलीन हो चुका था। उसकी भव्य स्मृति ही शेष रह गई थी।

वाराणसी

काशी जनपद की राजधानी थी। बुद्धकाल से पूर्व इसके सुरुन्धन, सुदर्शन, ब्रह्मवर्द्धन, पुष्पवती, मौलिनी और रम्य नगर आदि अनेक नाम रक्खे जा चुके थे। वाराणसी के समीप ऋषिपत्तन मृगदाव (सारनाथ) में बुद्ध ने धर्मचक्र प्रवर्तन किया था। सारनाथ, बौद्ध

हुए वर्णित किया गया है—

यस्यमम्बुधरावलेहिशिखरश्रेणी विहारावली,
मालेवोर्ध्वविराजिनी विरचिता धात्रा मनोज्ञा भुवः।

विश्वविद्यालय के १३ छात्रावास थे जिनमें १०,००० के लगभग विद्यार्थी रहा करते थे। अध्यापकों की संख्या भी १५०० के लगभग थी जिनमें चन्द्रपाल, धर्मपाल, गुणमति, स्थिरमति, जिनमित्र, प्रभामित्र, ज्ञानचन्द्र और शीलभद्र जैसे विद्वान् मनस्वियों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। स्वास्थ्य-लाभ के लिए क्रीडास्थलों के साथ

धर्मदूत

२१२

साथ तैरने का अभ्यास करने के लिए १० तालाबों की व्यवस्था भी की गई थी।

यद्यपि नालन्दा की स्थापना में महायान संप्रदाय के बौद्धों का विशेष हाथ रहा था तदपि उसमें विरोधी हीनयान वर्ग के मूल विषयों की शिक्षा भी दी जाती थी। इसी प्रकार मूल हिन्दू धर्म के अनेक अंगों को भी पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर, उदार नीति का परिपालन किया जाता था। अन्य विषयों के साथ चिकित्साशास्त्र के अध्ययन की विशेष सुविधा थी।

नालन्दा के गौरव का इसी से पता चलता है कि युवान चुआंग, इत्सिंग, थोन भी ह्युएन च्यू, ह्वीनी, आर्य-वर्मन, बुद्धधर्म, ताऊसिंग, तांग, ह्वील आदि यात्री चीन, कोरिया, तिब्बत आदि सुदूरस्थ देशों से उसकी ओर आकर्षित हुए। खेदका विषय है कि बख्तियार खिलजी नामक निरंकुश यवन अधिकारी ने बारहवीं शताब्दी के अंतिम चरण में इस फले-फूले विहार स्थल को भस्मीभूत कर डाला।

वल्लभी

प्रसिद्धि तथा महत्व की दृष्टि से काठियावाड़ का यह विख्यात शिक्षा-केन्द्र नालन्दा की समता रखता है। चीनी यात्रियों के मतानुसार यहाँ पर १०० संघाराम बने हुए थे। पाठ्यविषयों में अर्थशास्त्र, राजनियम, नीति, चिकित्सा विशेष स्थान रखते थे। हीनयान मतাবलम्बियों को भी शिक्षा प्राप्त करने की पूर्ण सुविधा उपलब्ध थी। इस विश्वविद्यालय के स्नातकों को राजकीय सेवाओं में बड़ी शीघ्रता से स्थान प्राप्त हो जाते थे। सातवीं शती में चरमोत्कर्ष को पहुँच कर बारहवीं शताब्दी तक अक्षुण्ण गति से चलता रहा।

विक्रमशिला

मगध प्रान्त में गंगा नदी के तटपर धर्मपाल नामक नरेश द्वारा आठवीं शती में बनाया गया। इस विश्वविद्यालय का तिब्बत से सबसे अधिक सम्पर्क रहा। यहाँ के प्रख्यात विद्वान् थे बुद्ध ज्ञानपद, वैरोचन, रक्षित, जेतारि, रत्नाकर शांति, ज्ञानश्री मित्र, रत्नवज्र, अम्यंकगुप्त, तथागत-रक्षित तथा दीपकर श्रीज्ञान। व्याकरण, तर्कशास्त्र,

तन्त्रवाद और दर्शनशास्त्र की शिक्षा के लिए यह संस्था विशेष रूप से प्रसिद्ध थी। १२ वीं शताब्दी में पूर्वोक्त धर्मान्ध शासक बख्तियार खिलजी ने इस विद्यामंदिर को भी ध्वस्त कर दिया।

उदन्तपुरी

मगध में पाल सम्राटों की प्रभुता से पूर्व यहाँ एक प्रमुख शिक्षण निकेत का जन्म हो चुका था। इसमें १००० के लगभग भिक्षु रहा करते थे, जिनमें तिब्बत के अनेक विद्यार्थी भी सम्मिलित थे।

मिथिला

प्राचीन युग में विदेह ब्राह्मण शिक्षा का सुसम्पन्न केन्द्र रहा था, किन्तु बौद्धकाल में भी उसका महत्व किसी प्रकार कम न हुआ। जगद्धर नामक विद्वान्, जिन्होंने गीता, देवी माहात्म्य, मेघदूत, गीतगोविन्द तथा मालतीमाधव आदि ग्रंथों पर विद्वत्तापूर्ण टीकाएँ लिखीं, इसी विद्यालय की उपज थे। इस शिक्षा-केन्द्र का उत्कर्षकाल ईसा की १२ वीं से १५ वीं शती तक रहा।

इनके अतिरिक्त कश्मीर का जयेन्द्र विहार, पंजाब के चीनापति और जलंधर मठ, उत्तर प्रदेश के बिजनौर जिले के मतिपुर ग्राम और फर्रुखाबाद जिले के भद्र-विहार, आंध्र प्रदेश में स्थित अमरावती का विद्यामंदिर तथा नदिया और जगहला के शिक्षा सदन, बौद्धयुग के अन्य विशिष्ट एवं समृद्धशाली विद्या-केन्द्र थे।

बौद्ध धर्म के अनुयायियों द्वारा जिस सार्वजनिक शिक्षा का वृक्षारोपण किया गया, उसे तत्कालीन ब्राह्मण मतवलम्बी शासकों से अप्रत्याशित सहायता उपलब्ध हुई। गुप्त काल में नालन्दा के सर्वोदय की घटना इस बात को प्रमाणित करती है कि राज्य की ओर से विद्या की उन्नति की ओर कितना अपूर्व ध्यान रक्खा जाता था। प्रारम्भिक शिक्षा के घनत्व की दृष्टि से हमारा पड़ोसी बर्मा अति बड़ा देश है। बर्मावासी बौद्ध हैं और उन्होंने तथागत के संदेश को कम से कम एक क्षेत्र में अपनाकर संसार के अन्य महत्वाकांक्षी राष्ट्रों को मार्ग दिखलाया है। यदि बुद्ध जयन्ती में सम्मिलित होने वाले सभी देश लोक-कल्याण के लिए सार्वजनिक शिक्षाकी योजनाओं को अधिक वेग से क्रियान्वित करने की चेष्टा करें, तो कितना अच्छा हो।

पालि साहित्य में गङ्गा नदी

डा० भरतसिंह उपाध्याय

पालि साहित्य में हमें पाँच महानदियों (पञ्च महानदियो) का उल्लेख मिलता है। इनके नाम हैं गङ्गा, यमुना, अचिरवती, सरभू (सरयू) और मही। ये सब मज्झिम देस की नदियाँ हैं। संयुत्त-निकाय के पठम-सम्भेज-सुत्त में एक उपमा का प्रयोग करते हुए भगवान् कहते हैं, “भिक्खुओ ! जैसे गङ्गा, यमुना, अचिरवती, सरभू और मही महानदियाँ हैं...।”^१ इसी प्रकार संयुत्त-निकाय के दुत्तिय-सम्भेज-सुत्त और समुद-सुत्त में भी इन पाँच महानदियों का उल्लेख है। अंगुत्तर-निकाय^२, विसुद्धिमग्ग^३ और मिलिन्दपञ्चो^४ में भी इनका उल्लेख है। संयुत्त-निकाय के समुद-सुत्त में इन पाँचों नदियों को समुद्र की ओर बहती (समुद्वनिद्धा) दिखाया गया है और इसी प्रकार ‘उदान’ में भी। आचार्य बुद्धघोष ने पपञ्चसूदनी^५, मनोरथपूरणी^६ और परमत्थजोत्तिका^७ में इन पाँचों नदियों का उद्गम अनोत्तत दह (अनवतप्त हृद—मानसरोवर झील) बताया है। परन्तु मिलिन्दपञ्चो^४ में इनकी गणना उन दस मुख्य नदियों में की गयी है जिनका उद्गम वहाँ हिमालय बताया गया है। यद्यपि अनोत्तत दह हिमालय

में ही स्थित है, फिर भी भौगोलिक दृष्टि से ‘मिलिन्दपञ्चो’ का कहना ही अधिक सही है।

गङ्गा नदी का उल्लेख पालि तिपिटक में अनेक बार किया गया है और कई बार भगवान् ने उसका प्रयोग उपमा के लिए किया है। अनेक महत्त्वपूर्ण भौगोलिक विवरण भी दिये गये हैं। दीघ-निकाय के महापरिनिब्बान-सुत्त तथा उदान^{१०} से हमें पता लगता है कि पाटलिपुत्र गङ्गा के किनारे बसा हुआ था और सुमंगलविलासिनी की साक्ष्य है कि गङ्गा नदी ही मगध और वज्जि राष्ट्रों की विभाजक सीमा थी। राजगृह से कुसिनारा जाते हुए भगवान् ने अपनी अन्तिम यात्रा में पाटलिगाम पर गङ्गा को पार किया था और इस घटना की स्मृति में उसके किनारे ‘गौतमतीर्थ’ नामक घाट की स्थापना बुद्ध-काल में की गयी थी। बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद राजगृह की अपनी प्रथम यात्रा के अवसर पर भी भगवान् वहाँ दो मास रह कर कुछ समय के लिए वैशाली गये थे और बीच में उनके गङ्गा पार करने का उल्लेख है, जिसके दोनों ओर अपने-अपने राज्य में बिम्बिसार और लिच्छवियों ने भारी सजावट कर रखी थी। गङ्गा के साथ यमुना के मिलने की सुन्दर उपमा का प्रयोग करते हुए दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त में कहा गया है, ‘जैसे गङ्गा की धारा यमुना में मिलती है और मिलाकर एक हो जाती है, उसी प्रकार निर्वाणगामिनी प्रतिपदा निर्वाण के साथ मेल खाती है।’ गङ्गा की सहायक नदी के रूप में मिगसम्मता नामक एक अन्य नदी का भी उल्लेख एक जातक-कथा में है, जहाँ कहा गया है कि यह नदी हिमालय से निकल कर गङ्गा में मिलती है। “हिमवन्ततो गङ्गां पत्ता।” तत्काल जातक, सिगल जातक (१४८) और चक्कवाक जातक में वाराणसी के समीप होकर गङ्गा के बहने का उल्लेख है।

१०. पृष्ठ १२१ (हिन्दी अनुवाद)

१. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ८२३
२. जिल्द चौथी, पृष्ठ १०१
३. पृष्ठ ६ (धर्मानन्द कोसम्बी का देवनागरी संस्करण)
४. पृष्ठ ७३, ३७४ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण); पृष्ठ ८७, ४६८ (हिन्दी अनुवाद)
५. पृष्ठ ७३ (हिन्दी अनुवाद)
६. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५८६
७. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७५९—६०
८. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४३७—३९
९. पृष्ठ ११७ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण); पृष्ठ १४४ (हिन्दी अनुवाद)

धर्मदूत

२१४

संयुक्त-निकाय के दुतिय-दारुक्खन्ध-सुत्त में गङ्गा नदी के किनारे किम्बिला नामक नगरी का वर्णन किया गया है। यह नगरी पञ्चालजनपद में थी। वज्जी जनपद के उक्काचेल में होकर गङ्गा नदी के बहने का उल्लेख संयुक्त-निकाय के निब्बाण-सुत्त में है। एक जातक-कथा में गगगलि नामक गाँव को गङ्गा के तट पर स्थित बताया गया है, जिसकी आधुनिक स्थिति का पता लगाना कठिन है। वज्जि-संघ के एक सदस्य गणतन्त्र राष्ट्र विदेह से भी, जो वज्जि के समान मगध के उत्तर में ही था, गङ्गा नदी मगध को विभक्त करती थी, यह इस बात से विदित होता है कि मज्झिम-निकाय के चूलगोपालकसुत्तन्त में गायेँ इस पार से गङ्गा में उतर कर उस पार विदेह में पहुँचती दिखायी गयी है। हम जानते ही हैं कि अङ्ग देश का गङ्गा के उत्तर का भाग अङ्गुत्तराप कहलाता था। अङ्ग देश के चम्पा नगर के समीप भी गङ्गा का उल्लेख किया गया है। गङ्गा के बालू-कणों को गिनने की असम्भावना को लेकर एक सुन्दर उपमा संयुक्त-निकाय के गङ्गा-सुत्त में दी गयी है। इसी प्रकार तृण-उल्का से गङ्गा नदी को उत्तप्त करने की उपमा मज्झिम-निकाय के ककचूपम-सुत्तन्त में दी गयी है। संयुक्त-निकाय के गंगा-पेय्याल-वग्ग में तथा पाचीन-सुत्त में गंगा का पूर्व की ओर बहना (पाचीननिब्बा) दिखाया गया है और इसी प्रकार मज्झिम निकाय के महावच्छगोत्त सुत्त में उसे समुद्र-निम्ना (समुद्रनिब्बा) या समुद्र की ओर बहने वाली बताया गया है। इससे पता चलता है कि जहाँ गंगा नदी पूर्व की ओर बहते हुए दक्षिण की ओर मुड़ती है और अन्त में समुद्र में जाकर मिलती है, वहाँ तक का सुनिश्चित ज्ञान पालि परम्परा को था। सारथ्यपकासिनी^१ में गंगा की लम्बाई ५५० योजन बतायी गयी है।

उत्तर में जहाँ से गंगा नदी निकलती है और कितने-कितने योजन वह पहाड़ों में किन-किन नामों से बहती है, इसका विस्तृत विवरण आचार्य बुद्धघोष ने अपनी अट्कथाओं में दिया है। उद्गम से मैदानों में आने से पूर्व उन्होंने गंगा नदी के कई नामों का प्रयोग किया है, जैसे कि आवष्ट गंगा, कण्ह गंगा, आकास गंगा, बहल गंगा

और उम्मग गंगा। विनय-पिटक के खुल्लवग्ग^२ से तथा महावंस^३ से हमें पता चलता है कि वैशाली की संगीति के समय अयुष्मान् सम्भूत साणवासी नामक भिक्षु अहो-गंग पर्वत पर रहते थे, जिसे हरद्वार के समीप कोई पर्वत होना चाहिए। अशोककालीन मोगगलिपुत्त तिसस को भी हम अहो-गंग पर्वत पर जाते और वहाँ सात वर्ष तक ध्यान करते देखते हैं।^४ इस प्रकार गंगा के हरद्वार के समीपवाले भाग का भी ज्ञान पालि परम्परा को था। परन्तु गंगा के तट पर स्थित सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण जिस स्थान का उल्लेख पालि तिपिटक में है वह तो प्रयाग तीर्थ (पयाग तिथ्थ) ही है। हमने देखा है कि वेरंजा में बारहवाँ वर्षा-वास कर भगवान् बुद्ध क्रमशः सोरेय्य (सोरों), संकस्स (संकाश्य) और कण्णकुज्ज (कान्यकुब्ज-कन्नौज) होते हुए पयाग-पतिट्ठान (प्रयाग-प्रतिष्ठान) आये थे, जहाँ उन्होंने गंगा को पार किया था और फिर वाराणसी चले गये थे। आचार्य बुद्धघोष ने पयाग (प्रयाग) को गंगा का एक घाट (तिथ्थ) कहा है।^५ जातक में भी प्रयाग-तीर्थ (पयाग तिथ्थ) का उल्लेख है। प्रयाग-तीर्थ से स्पष्टतः अभिप्राय गंगा-यमुना के संगम से ही है। प्रयाग को गंगा-यमुना का संगम मान कर 'ही भगवान् ने कहा था, "क्या करेगी सुन्दरिका, क्या प्रयाग और क्या बाहुलिका नदी?"'^६

गंगा और उसके किनारे पर स्थित दो नगरों के सम्बन्ध में एक समस्या भी हमारे सामने पालि साहित्य में आती है। संयुक्त-निकाय के फेण-सुत्त में गंगा नदी के किनारे अयोज्झा (अयोध्या) नगरी स्थित बतायी गयी है और इसी प्रकार पठम-दारुक्खन्ध-सुत्त में कौशाम्बी को गंगा नदी के किनारे स्थित बताया गया है, जो दोनों बातें इन दोनों नगरों की आधुनिक स्थितियों से मेल नहीं खाती और एक समस्या पैदा करती हैं। साकेत नामक एक नगर का अयोज्झा से पृथक् उल्लेख पालि तिपिटक में मिलता

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ५५१

३. ४।१८-११ (हिन्दी अनुवाद)

४. महावंस ५।२३३ (हिन्दी अनुवाद)

५. पपंचसूदनी, जिल्द पहली, पृष्ठ १७८

६. वत्थ सुत्तन्त (मज्झिम ० १।१।७)

१. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ११९

है, इसलिए यह स्पष्ट मालूम पड़ता है कि पालि के साकेत और अयोध्या बुद्ध-काल में दो अलग-अलग स्थान थे। साकेत एक महानगर था और अयोध्या एक छोटा-सा गाँव मात्र। पालि का साकेत तो आधुनिक अयोध्या कस्बा है ही, पालि की अयोध्या को हमें वर्तमान अयोध्या से न मिलाकर उसे कहीं गङ्गा के किनारे पर खोजना चाहिए। जहाँ तक कौशाम्बी का सम्बन्ध है, हमें संयुक्त-निकाय के पठम-दारुक्खन्ध-सुत्त की निश्चयतः उपेक्षा ही करनी पड़ेगी। आधुनिक कोसम गाँव, जिसे बुद्धकालीन कौशाम्बी मिलाया गया है और जिसके बारे में कोई सन्देह नहीं रह गया है, यमुना नदी पर स्थित है। अतः उपर्युक्त सुत्त में कौशाम्बी को जो गङ्गा के तट पर स्थित बताया गया है उसका एक कारण तो यह हो सकता है कि कौशाम्बी गङ्गा के समीप थी या दूसरा कारण यह भी माना जा सकता है कि संकलनकारों ने इसे गलती से ऐसा लिख दिया है। अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा (मनोरथ धूरणी)^१ में बक्कुल की जीवन-कथा के प्रसंग में स्पष्टतः कहा गया है कि जब कौशाम्बी में बक्कुल के जन्म के बाद दाई नवजात शिशु को यमुना में नहला रही थी तो दाह उसके हाथ से नदी में गिर गया और उसे एक मछली निगल गयी। अट्ठकथा के इस साक्ष्य को प्रामाणिक मान कर हमें संयुक्त-निकाय के पठम-दारुक्खन्ध-सुत्त की उपेक्षा ही करनी पड़ेगी, यही इस समस्या का एकमात्र समाधान है।

गङ्गा नदी के तट को साधना के उपयुक्त स्थान के रूप में भगवान् बुद्ध के कई भिक्षुशिष्यों ने चुना था। श्रावस्ती में उत्पन्न एक भिक्षु को प्रव्रजित होने के बाद हम गङ्गा के तट पर निवास करते देखते हैं। इस भिक्षु का नाम ही इस कारण “गङ्गातीरियो भिक्खु” अर्थात् गङ्गातीरवासी भिक्षु पड़ गया था। उसने इसी रूप में अपनी स्मृति खोदते हुए कहा है, “मैंने गङ्गा नदी के किनारे तीन ताल पत्तों की कुटिया बनायी है। “तिण्णं मे तालपत्तानं गङ्गा-तीरे कुटी क्ता।”^२ मोग्गलिपुत्त तिस्स और सम्भूत साण-

वासी के अहोगङ्ग पर निवास का उल्लेख हम पहले कर ही चुके हैं। दूत जातक में उल्लेख है कि बोधिसत्त्व ने अपने एक पूर्व जन्ममें काशी ग्राम के एक ब्राह्मण के रूप में गङ्गा नदी के तट पर ध्यान किया था। “गङ्गातीरस्मि-शायतो।” इसी प्रकार तक्क-जातक में भी बोधिसत्त्व के एक बार गङ्गा नदी के किनारे पर तपस्या करने का उल्लेख है।

गङ्गा नदी के भागीरथी (भागीरसी) नाम से भी पालि परम्परा परिचित है। अपदान (भाग प्रथम, पृष्ठ ५१; भाग द्वितीय, पृष्ठ २४३) में कहा गया है कि यह नदी हिमवन्त से निकल कर उत्तरापथ की हंसवती नामक नगरी में होकर बहती है^३। जातक की अनेक कथाओं में यन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण); देखिए थेर-गाथा, पृष्ठ ५४ (भिक्षु धर्मरत्न कृत हिन्दी अनुवाद)।

३. महाभारत के सभा-पर्व (अध्याय ४८) में हंसकायन (हंसकायनाः) लोगों का उल्लेख है। यदि हम पालि की हंसवती नगरी का सम्बन्ध इन लोगों से मान सकें तो हमें हंसकायन प्रदेश को कश्मीर के उत्तर-पश्चिम में हुंज और नगर के प्रदेश से मिलाने के डॉ० मोतीचन्द्र के प्रयत्न को (ज्योग्रेफीकल एण्ड इकोनोमिक स्टडीज इन दि महा-भारत, ९२-९३) अप्रामाणिक मानना पड़ेगा; क्योंकि वहाँ गंगा या भागीरथी नदी के होने का कोई प्रश्न ही नहीं है। कुछ भी हो, इतना निश्चित जान पड़ता है कि पालि की हंसवती नगरी भारत में ही कहीं गंगा नदी के किनारे थी। थेरीगाथा की अट्ठकथा (परमत्थदीपनी) में कहा गया है कि धम्मदिन्ना, उब्बरी और सेला (शैला) नामक भिक्षु-णियाँ जो बुद्ध के जीवन-काल में क्रमशः राजगृह, श्रावस्ती और आलवी राष्ट्र में पैदा हुई थीं अपने पूर्व जन्मों में एक बार हंसवती नगरी में भी जन्म ले चुकीं थीं। आज इस हंसवती नगरी का पता लगाना कठिन है। दक्षिणी बर्मा में हंसवती नामक एक नगरी थी जिसे आजकल पेगू से अभिन्न माना जाता है। इसे पालि की हंसवती नगरी तो नहीं माना जा सकता, परन्तु यह सम्भव है कि भारत की हंसवती नगरी की अनुस्मृति में ही इस नगरी की स्थापना की गयी हो।

१. जित्द पहली, पृष्ठ १७०

२. थेरगाथा, पृष्ठ २६ (महापण्डित राहुल सांकृत्या-

गङ्गानदी के लिए भागीरसी (भागीरथी) नाम का प्रयोग किया गया है। यह उल्लेखनीय है कि महाकवि अश्वघोष ने भी बुद्ध-चरित (१५।१४) में भागीरथी नदी का उल्लेख काशी नगरी के प्रसंग में किया है। उत्तर पंचाल और दक्षिण पंचाल की सीमा भागीरथी नदी ही बनाती थी। पंचाल देश का प्रसिद्ध आलवी नगर सम्भवतः गङ्गा नदी के आसपास ही कहीं स्थित था, क्योंकि वहाँ के निवासी (आलवक) यक्ष को हम भगवान् बुद्ध से यह कहते देखते हैं, “मैं तुम्हारे पैरों से पकड़ कर गङ्गा के पार फेंक दूँगा।” “पादेसु वा गहित्वा पारगङ्गाय खिप्पेय्यं।” इसी प्रकार की बात गया के सूचिलोम यक्ष ने भी भगवान् के प्रति कही थी।^१ इससे यह भी जान पड़ता है कि “गङ्गा-पार” का प्रयोग सम्भवतः एक मुहावरे के रूप में बुद्ध-काल में होता था, क्योंकि गङ्गा नदी आजकल गया से करीब ५५ या ५६ मील दूर उत्तर में होकर बहती है। यह भी सम्भव है कि उन दिनों यह गया के कुछ अधिक निकट हो। जातक में अनेक जगह “अधोगङ्गा,” “उदुगङ्गा,” “उपरिगङ्गा” और “पारगङ्गा” जैसे प्रयोग मिलते हैं, जो गङ्गा के सम्बन्ध में स्पष्ट और प्रत्यक्ष ज्ञान की सूचना देते हैं।

गङ्गा नदी के द्वारा नावों में बैठकर लोग बुद्ध-काल में

१. आलवक-सुत्त (सुत्त-निपात)

२. सूचिलोम-सुत्त (संयुत्त-निकाय)

यात्रा करते थे और माल का भी परिवहन होता था, इस के साक्ष्य पालि साहित्य में प्राप्त हैं। गङ्गा के मुहाने से लेकर चम्पा, पाटलिपुत्र, वाराणसी और सहजाति तक माल लाया-ले जाता था। वैशाली के वज्जिपुत्तक भिक्षु नावों में बैठकर वाराणसी होते हुए गङ्गा के मार्ग के द्वारा सहजाति आये थे। पाटलिपुत्र से ताम्रलिप्ति (ताम-लित्ति) तक गङ्गा के मार्ग के द्वारा भिक्षुणी संघमित्रा गयी थी। इसी प्रकार देवानं पियतिस्स के राजदूत ताम-लित्ति तक लंका से समुद्री मार्ग द्वारा आकर ताम्रलिप्ति से पाटलिपुत्र तक गंगा के मार्ग द्वारा ही गए थे और इसी मार्ग से होकर लौटे थे। समुद्वाणिज जातक और अलीन-चित्त जातक में हम देखते हैं कि वाराणसी के समीप के वड्ढकीग्राम के सब बड़ई अपने परिवारों को लेकर एक बड़ी नाव में बैठकर गंगा के मार्ग द्वारा भाग गए थे और समुद्र के समीप एक उर्वर द्वीप में जाकर बस गए थे। यह बुद्ध युग की अथवा उससे पहले की परिस्थितियों का सूचक ही हो सकता है। इसी प्रकार महाजनक जातक और संख जातक में हम क्रमशः चम्पा (कालचम्पा नगर) और वाराणसी (मोलिनी) के व्यापारियों को सुवर्णभूमि (दक्षिणी बर्मा) जाते देखते हैं। ये व्यापारी गंगानदी के द्वारा पहले ताम्रलिप्ति पहुँचते थे और फिर वहाँ से सुवर्णभूमि जाते थे। सीलानिसंस जातक से भी गंगानदी के द्वारा समुद्र से लेकर वाराणसी तक का आवागमन सिद्ध है।



जहाँ तथागत ने ८ वॉ वर्षावास किया था

भर्ग प्रजातंत्र की राजधानी—चुनार

श्री अनन्त

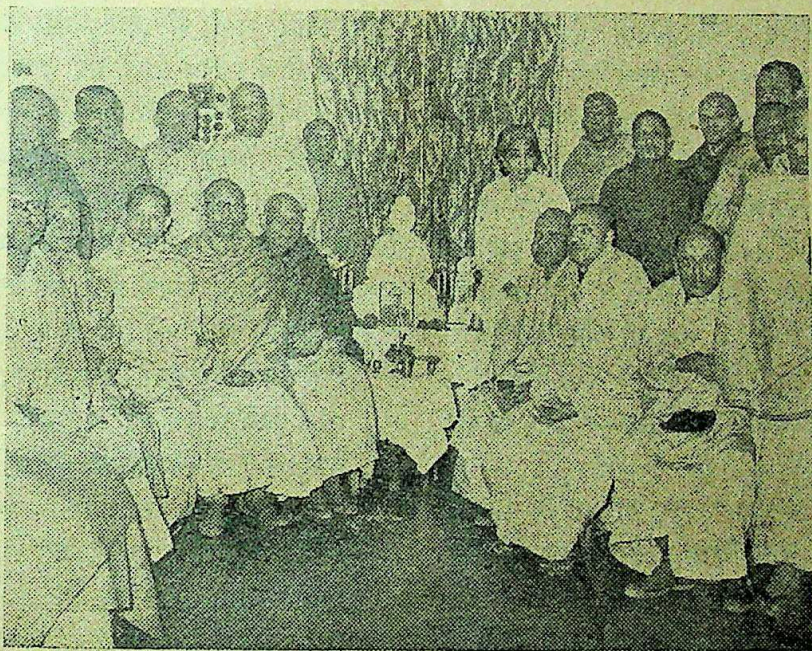
भारतीय प्राचीन गणतन्त्रों के इतिहास में भर्गों के गणतन्त्र का प्रायः सर्वत्र उल्लेख आया है। यद्यपि बुद्ध-कालीन सोलह सहाजनपदों में भर्ग देशका समावेश नहीं है, किन्तु इसका वर्णन बड़े सम्मान के साथ विशेष रूप से किया गया है। ईसा पूर्व छठीं शताब्दी में उत्तरी भारत में बुली, कालाम, कोलिय, मल्ल, मौर्य, विदेह, लिच्छवि और भर्ग—इन

८ जातियों के गणतन्त्रों का होना पाया जाता है। इन गणतन्त्रों में निर्वाचन प्रणाली से शासन-कार्य होता था। ये गणतन्त्र वर्तमान पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा उत्तरी बिहार-राज्य में फैले हुए थे। भर्ग गणतन्त्र काशी के दक्षिण और पूर्व के प्रदेश में गंगा-पार से लेकर विन्ध्याटवी तक विस्तृत था,

जिसकी राजधानी सुंसुमारगिरि थी। आजकल के मिर्जापुर जिले का गंगा से दक्षिणी भाग और कुछ आस-पास का प्रदेश ही प्राचीन भर्ग गणतन्त्र है। इसकी सीमा गंगा-टोंस कर्मनाशा नदियाँ एवं विन्ध्याचल पर्वत का कुछ भाग रही होगी। इसकी राजधानी सुंसुमारगिरि नगर मिर्जापुर जिले का वर्तमान चुनार कस्बा ही रहा।

बौद्ध-ग्रन्थों में भर्ग गणतन्त्र का उल्लेख तो विशेष रूप से अवश्य हुआ है, किन्तु यहाँ की शासन-व्यवस्था के सम्बन्ध में बहुत प्रकाश नहीं पड़ता। प्रायः वर्णन सुंसुमारगिरि के सम्बन्ध में ही प्राप्त हैं। सुंसुमारगिरि नगर एक पहाड़ी के पास अवस्थित था, जिसकी आकृति मकर-सदृश थी। किन्तु, पाँचवीं शताब्दी के पालिग्रन्थों के प्रसिद्ध

भाष्यकार आचार्य बुद्धघोष ने 'पर्यच-सूदनी' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि इस नगर के निर्माण के दिन निकटवर्ती जला-शय से मगर का शब्द सुन पड़ा था, इसीलिए इसका नाम सुंसुमारगिरि पड़ा था। सुंसुमारगिरि छठी शताब्दी ईस्वी पूर्व में एक समृद्ध नगर था। इस नगर के पास भेषकला वन (भेषकलवन भी)



डा० अम्बेडकर के प्रथम स्मृतिदिवस पर दिल्ली में विभिन्न देशों के भिक्षुओं को भोजन-दान दिया गया था। चित्र में श्रीमती अम्बेडकर पीछे खड़ी हैं। आगे भिक्षु आर्यवंश, भिक्षु बुद्धरक्षित आदि बैठे हैं।

नामक एक मृगदाय था, जिसमें रहनेवाले पशुओं को अभय-दान प्राप्त था। उसी मृगदाय में एक बुद्ध-विहार का निर्माण हुआ था। इस विहार को चण्डप्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता से उत्पन्न उदयन के पुत्र बोधिराजकुमार ने बनवाया था। इस राजकुमार ने बचपन में ही बुद्ध-दर्शन किया था। इसकी माता ने इसे

तथागत के कौशाम्बी में विहार करते समय धाय के हाथ, बुद्ध-वन्दना के निमित्त बचपन में ही भेजा था।

सुंसुमारगिरि में ही बोधिराजकुमार का कोकनद नामक प्रासाद था, जिसमें भोजन के लिए भिक्षुसंघ के साथ तथागत को उसने निमन्त्रित किया था। उस समय उसने नीचे से लेकर ऊपर तक सीढ़ियों पर नये वस्त्रों को बिछवा दिया था, जिसके ऊपर से होकर तथागत प्रासाद पर जाते, किन्तु तथागत ने उस चैलपंक्ति को हटवा दिया था। उन्होंने उस समय कहा था कि मैं जनता का हित देखते हुए ही ऐसा कर रहा हूँ, क्योंकि भावी जन इसी का अनुकरण करेंगे। ग्रन्थों से विदित होता है कि बोधिराजकुमार को कोई सन्तान न थी।

प्रसिद्ध नकुलगृहपति के माता-पिता सुंसुमारगिरि के ही रहनेवाले थे। भगवान् बुद्ध पर उनकी ऐसी अचल श्रद्धा थी कि उससे प्रभावित होकर उन्हें तत्कालीन उपासक-उपासिकाओं के संघ में श्रद्धालुओं (विश्वासकों) में सर्वश्रेष्ठ (उत्तम) की उपाधि मिली थी। नकुल-पिता सुंसुमारगिरि का प्रधान नगर-श्रेष्ठ था। जिस समय भगवान् बुद्ध वहाँ के भेषकलावन मृगदाय में विहार करते थे, उस समय यह दम्पति बुद्ध-दर्शनार्थ विहार में गई थी और तथागत को देखते ही यह कहते हुए उनके पैरों पर गिर पड़ी थी—
“पुत्र ! तुम इतने समय से हम लोगों को छोड़कर कहाँ विचरण कर रहे हो ?”

तथागत ने उन्हें उपदेश देते हुए कहा था कि पाँच सौ पूर्वजन्मों में ये मेरे माता-पिता होकर उत्पन्न हुए थे, इसीलिए इस जन्म में भी इन्हें पुत्रवत् स्नेह हो आया है। उपदेश के अन्त में दोनों को ‘स्रोतापत्ति’ नामक ज्ञान की प्रथमावस्था प्राप्त हो गई थी। जब भगवान् दूसरी बार भी सुंसुमारगिरि गए, तब उन दोनों ने उन्हें अपने घर भोजन कराया और अपने पारस्परिक पवित्र गृही-जीवन के मैत्री सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हुए एक दूसरे का अनुमोदन किया था।

सुंसुमारगिरि के विहार में रहते हुए अग्रश्रावक आयु-प्मान् मौदगल्यायन स्थविर ने मार को फटकारा था। प्रायः सभी प्रधान भिक्षुओं ने भेषकलावन मृगदाय में विहार किया था। भगवान् बुद्ध तो अनेक बार सुंसुमारगिरि गए

थे। और, हम यह भी जानते हैं कि सुंसुमारगिरि से दक्षिण की ओर आगे उन्होंने यात्रा नहीं की थी। तथागत की चारिका में सुंसुमारगिरि नगर दक्षिणी सीमा के रूप में प्रख्यात है। इस नगर में दिए गए उपदेशों में से इस समय त्रिपिटक में केवल बोधिराज सुत्त, अनुमान सुत्त, मारतज्जनीय सुत्त, नकुलपिता सुत्त आदि कुछ ही सूत्र विद्यमान हैं।

यह सबसे महत्वपूर्ण बात है कि तथागत ने अपना आठवाँ वर्षावास (चौमासा) सुंसुमारगिरि के भेषकलावन मृगदाय में ही व्यतीत किया था। वाराणसी से उरुवेला, गया तथा मगध की ओर से कौशाम्बी या कौशाम्बी से सहजाति, पारिलेयक होकर मगध की ओर जाने के समय सुंसुमारगिरि मार्ग में पड़ता था। गया से भरहुत और विदिशा की ओर जाने में भी यह मार्ग में पड़ता था। यही कारण था कि यह पर्यटनशील भिक्षुओं के समागम का प्रधान केन्द्र हो गया था। यहाँ के कुछ तपस्वी भिक्षुओं ने इस स्थान का और भी आकर्षण बढ़ा दिया था। उनमें सिरिमन्द एक महाप्रतापी भिक्षु थे। उनकी अमरगाथाएँ आज भी थेरगाथा नामक ग्रन्थ में उपलब्ध हैं। उन्होंने सुंसुमारगिरि-वासियों को इस प्रकार उपदेश दिया था—

“दोष को छिपाने से वह बढ़ता है,
प्रकट करने से वह नहीं बढ़ता;
इसलिए किए दोष को प्रकट करो,
इससे वह बढ़ेगा नहीं।
संसार मृत्यु से पीड़ित है, जरा से घिरा है,
तृष्णा रूपी तीर से आहत है,
और इच्छा रूपी अग्नि से सदा तप्त है।
अल्प या बहुत साधना द्वारा,
दिवस को खाली न जाने दें।
जो रात बीतती जाती है,
उससे जीवन भी कम होता जाता है।
चलते, ठहरते या लेटते,
आखिरी रात आ जाती है,
अब तुम्हें प्रसाद करने का समय नहीं।”

‘धम्मपद’ का यह प्रसिद्ध बुद्ध-उपदेश सुंसुमारगिरि का ही है—

करुणा-भैरवी

२१९

अत्तानं चे पिथं जञ्जा,
रक्खेय्य तं सुरक्खितं ।
तिण्णमञ्जतरं यामं,
पटिजग्गेय्य पण्डितो ॥

अर्थात् अपने को यदि प्रिय समझे तो सुरक्षित रखे ।
बुद्धिमान् मनुष्य तीनों में से किसी एक प्रहर में अवश्य
जागरण करे ।

भर्ग प्रजातन्त्र वत्स-राज्य के साथ ही अपनी प्रभुसत्ता
खो बैठा था और पीछे इस पर भारशिवों का प्रभुत्व हो
गया था । उस समय इस राज्य की सीमा के अन्तर्गत
भरहुत, गोरगी आदि स्थान और टोंस का बेसिन भी सम्मि-
लित हो गया था, किन्तु इनका प्रजातन्त्रात्मक शासन ईस्वी
पूर्व की शताब्दियों में ही समाप्त हो गया था । बारहवीं

शताब्दी के अन्त तक मिर्जापुर जिले का यह प्रदेश चारिका-
निरत भिक्षुओं और उपासक-उपासिकाओं से सुशोभित
था । सुंसुमारगिरि के प्रसिद्ध बुद्ध विहार के नष्टावशेष अभी
अन्तिम साँस लेते खड़े थे । विन्ध्यपर्वतमाला में यत्र-तत्र
गुहाओं में रहनेवाले भिक्षु प्रदेश में भिक्षाटन भी किया
करते थे, किन्तु यवन-आक्रमणकारियों के शिकार होने के
पश्चात् उनके पद-चिह्न तक उस प्रदेश से मिट गए ।

उस प्राचीन भर्ग प्रजातन्त्र की राजधानी सुंसुमारगिरि
के नष्टावशेषों पर किले बन गये और उनका रूप परिवर्तित
हो गया, फिर भी उन्हें पहचानना कठिन नहीं है । वर्तमान
चुनार की पग-पग की भूमि तथागण के चरणों से पवित्र
हुई है और उसके रज में भिक्षुओं का तप-त्याग रमा
हुआ है ।

करुणा-भैरवी

सुश्री विद्यावती मालविका बी० ए०

संस्कृति में अलख जगाने को,
वह बनी भैरवी आई थी ।

समरसता मानव जीवन की,
सोई थी काली रातों में ।
मानवता विह्वल होती थी,
प्रतिपल कटुता आघातों में ॥

प्राची की मधुलेखा सी वह,
संस्कृति में भरी ललाई थी ।

सुख स्वप्न देखती आँखों को,
अपने निष्ठुर व्यवहारों से ।
वह एक कुहुक बन जगा गई,
मैत्री की मृदु मनुहारों से ॥

दशबल की शुभ वाणी बनकर,
कल्याणी करुणा आई थी ।

आज शान्ति की पुण्य प्रेरणा,
उससे ही जन मन पाया ।
आज जीत कर हार गई है,
तर्क जाल की नव माया ॥

किशलय के सुरभित अंचल में,
लतिका-सी सौरभ लाई थी ।

संस्कृति में अलख जगाने को,
वह बनी भैरवी आई थी ।

ऐतिहासिक कहानी,

(समय—बारहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण)

सुगतपुरी

भिक्षु धर्मरक्षित

युगों से अजस्र प्रवाहिनी खाणुका नदी कलकल निनाद करती गतिमान् थी। मल्ल वसुन्धरा की कण्ठमाला-सी हिरण्यवती भी पूरब से आकर उसका आलिंगन करती थी और इन दोनों के संगम से थोड़ी दूर हटकर खाणुका के तीरे सुगतपुरी का प्रसिद्ध विहार था। यह विहार दोनों सरिताओं द्वारा सिञ्चित भूभाग के दक्षिणी छोर पर स्थित मल्ल जनता का एक दर्शनीय स्थान था। कुशीनारा के शालवन से लगे हुए बलिहरण वनखण्ड की वन-पंक्तियाँ सुगतपुरी तक पहुँचती थीं और संगम की ओर से हिरण्यवती-तट की ओर मुड़ी हुई थीं। सुगतपुरी को अनूपिया, कुशीनारा, पावा आदि मल्ल जनपद के प्रमुख नगरों से मार्ग आते थे। विहार में कोई बीस भिक्षु रहते थे। प्रधान विहार की बुद्धमूर्ति अद्भुत शक्तियों की धनी मानी जाती थी। ग्राम में सभी धर्मावलम्बी मिलजुल कर प्रेम से रहते थे। शाक्य, मल्ल और कोलिय प्रायः बौद्ध थे। कृषि-कर्मन्त तथा वाणिज्य इन्हीं तक केन्द्रित था। यही श्री-सम्पन्न थे। अन्य इनके आश्रित और निर्धन थे।

प्रतिमास की पूर्णिमा और अमावस्या को विहार में उपोसथ व्रत मनाया जाता था, चारों ओर के ग्रामों से झुण्ड-के-झुण्ड गाँत गाते उपासक-उपासिकाओं का समूह आता था। विहार में भिक्षुओं को भोजनदान देता था, धर्मोपदेश सुनता और रात्रि-जगौनी करता था। आज आश्विन पूर्णिमा थी। आकाश में पूर्व की ओर से चातुर्मास की कौमुदी से पूर्ण चन्द्र अपनी सोलहों कलाओं से युक्त हो निकल चुका था। भिक्षुसंघ ने प्रवारणोत्सव मना लिया था। मन्दिर में श्रद्धालु-जन बुद्धपूजा करने में लीन थे। त्रिशरण-पञ्चशील के उच्चस्वर हो रहे थे। रह-रह कर विहार में शंख, पणव, शृंग आदि बज उठते थे। विहार प्रदीप-पंक्ति से जगमगा रहा था। अगरु-धूप की सुगन्ध

वायु में सादकता भरती-सी दिशाओं में व्याप्त हो रही थी। परिवेण के मध्य एक सुन्दर मण्डलमाला बनी हुई थी और उसे भली-भाँति सजा दिया गया था। उसमें धर्म-कथिक का धर्मासन लगा हुआ था। धर्मासन के पास सुगतपुरी के ग्राम प्रामोख्य का ज्येष्ठ पुत्र सिंहयश पहले से ही आकर बैठ गया था, जिससे धर्मोपदेश के समय उसे स्थान मिलने में कठिनाई न हो। आज संघराज धर्म-रुचि महास्थविरपादका अभिधर्म पर प्रवचन होने वाला था। सिंहयश को वहाँ बैठे थोड़ी ही देर हुई थी कि दिन भर के कृषिकर्मन्त में लगे रहने के कारण उत्पन्न श्रान्ति से नींद आने लगी। वह वहीं बैठे-बैठे ऊँघने लगा।

“अरे यश ! तुम यहाँ क्या कर रहे हो ? क्या यहीं पूजा हो रही है ?” हेमलता ने पीछे से आकर सिर पर हाथ रखते हुए पूछा।

“कौन ? लता ? तुम यहाँ कैसे आ गई ?”

“हाँ, लता ही। क्यों नहीं आती ? तुम लोग गाँव-घर छोड़कर मन्दिर में आ जुटे हो, सबके घर ताले लगे हुए हैं, बच्चे तक गाँव में नहीं हैं, थोड़े से जो तैथिक हैं, वे भी तमाशा देखने यहाँ आ गये हैं, उनकी कुल बधुएँ मात्र घर में हैं, उधर यवनों का भय बना हुआ है, न जाने कब उनके आक्रमण हो जायँ और हमारा सब कुछ जाता रहे !”

“हाँ, लते ! तुम ठीक कहती हो। इस समय हमें मूर्ति की शक्ति नहीं चाहिए, प्रत्युत अपने ही बाहुबल के भरोसे तैयार होना है। मूर्तियाँ भी तो इन्हीं हाथों की कृति हैं। धर्म-पालन उत्तम है, किन्तु इतना आडम्बर ठीक नहीं। हमें अपने राष्ट्र, स्वत्व तथा धन-सम्पत्ति की रक्षा के साथ धर्म की रक्षा करनी है, न कि सबको गँवा कर धर्म के लिए मरते रहना है। बुद्धिमानी तो इसी में है कि हम सभी संगठित होकर मल्ल-भूमि की, मल्ल-संस्कृति

की, मल्ल-मर्यादा की रक्षा करें और यवनों को बतला दें कि उनका आगे बढ़ना विपत्ति में अपने को झोंकना है।" सिंहयश ने खड़े होकर हेमलता के कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा।

"क्या तुमने सुना है कि यवनों ने पश्चिम के हमारे सभी विहारों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है, बुद्ध-मूर्तियों को तोड़ डाला है और भिक्षुओं का वध कर संघारामों में आग लगा दी है?"

"हाँ, लते ! मैंने सुना है और आज ही तो यवनों की सेना ने कुशीनारा के विशाल-स्तूपों को अपवित्र कर दिया है। तथागत की मूर्ति में जड़े हुए हीरे-मोती रत्न ले लिए हैं। आर्य संघाराम तथा मुकुट बन्धन को जला डाला है। हैहयवंशी राजा कुछ भी नहीं कर सके हैं। वे मद्यपी, छूत-शीली नरेश क्या कर सकते हैं। उन्हें तो अपने अन्तः-पुर से ही अवकाश नहीं। उनकी रंगशाला में नर्तकियों के छुमछनन ही सदा होते रहते हैं। वे सभी कार्य

धर्म के विरुद्ध ही कर रहे हैं। नगर की ही क्या, जनपद की सुन्दरी कुल बधुएँ तथा कुल-पुत्रियाँ भी इनकी पापेच्छा एवं कामलिप्सा का शिकार हुआ करती हैं। इन अधर्मियों ने कुशीनारा तथा काश्यपनगर (=कसया) के निकटवर्ती ग्राम सरभञ्जा (=शबया) में बुद्ध-मन्दिर बनवा कर धार्मिक होने का ढोंग रचा है। निगमवासी इनकी सारी चाल समझ रहे हैं। अब कोई भी इनके प्रलोभन में आने को नहीं। सम्भव है कि यवन भी इस बात को जानते हों।"

"तुम्हारा कथन ठीक है यश ! किन्तु अब हमें यों ही समय नहीं गँवाना चाहिए। शीघ्र यवनों का सामना

करने के लिए प्रस्तुत हो जाना चाहिए।" हेमलता ने कहते हुए सिंहयश के कन्धे पर अपना सिर टिका दिया।

"मेरी लते ! चलो हम लोग संघराज से मिलें और उन्हें समझायें कि वे अभिधर्म पर प्रवचन न कर राष्ट्र-संरक्षण का उपदेश करें। इस समय देश-रक्षा का प्रश्न है, हमें संगठित होकर यवनों का सामना करना चाहिए।"

"हाँ, चलो, हम दोनों चलकर उन्हें समझायें।"

❀ ❀ ❀

"तुम लोगों में तरुणाई का मद है। तुम्हें धर्म से क्या ? इतने श्रद्धालु-जन जो एकत्र हुए हैं, वे सब

मूर्ख हैं, और तुम्हीं बुद्धिमान् हो ! जानते हो, जो व्यक्ति धर्म-कार्य में विघ्न डालता है, वह अवीचि नरक में पड़ता है। तुम्हें पाप से डरना चाहिए। तथागत की महिमा से सुगतपुरी का कुछ नहीं बिगड़ेगा।" संघराज धर्म-रुचि ने धमकाते हुए कहा।

"भन्ते ! ऐसी बात नहीं है। तथागत ने सदा देश-

रक्षा की बात कही है। परतन्त्रता से बढ़कर कोई दुःख नहीं और स्वाधीनता से बढ़कर कई सुख। उन्होंने स्वयं शाक्यों के रक्षा-हेतु विडूडभ को रोका था। लिच्छवियों के रक्षा-हेतु मगध के महामन्त्री वर्षकार को समझा कर अजातशत्रु को आक्रामक होने से बचाया था। शाक्य-कोलिय युद्ध के उपस्थित होने पर स्वयं रोहिणी नदी तक यात्रा की थी। तथागत का सारा जीवन लोक-हित-चर्या में ही व्यतीत हुआ था। यदि आज तथागत होते तो अवश्य कहते कि तुम लोग डट कर यवनों का सामना करो, और अपने पवित्र स्थलों को अपवित्र तथा नष्ट-भ्रष्ट होने से बचाओ।"



मूलगन्ध कुटी विहार में लार्ड तथा लेडी पैथिक लारेंस लार्ड की वगल में भिक्षु संघराज जी खड़े हैं।

सिंहयश ने विनम्र भाव से कहा ।

“तो क्या तुम तथागत पर भी यह कलंक लगाना चाहते हो कि वे हिंसा के लिए लोगों को प्रोत्साहित करते थे ?”

“नहीं भन्ते, तथागत शान्तिवादी थे । वे अहिंसा-धर्म के प्रणेता थे । वे जो कुछ आदेश देते अहिंसात्मक ढंग से ही करने के लिए । मेरे कथन का तात्पर्य यह नहीं कि हम यवनों के साथ युद्ध कर रक्तपात मचायें और खाणुका तथा हिरण्यवती की पवित्र निर्मल धारा को रक्तित्म कर दें । मेरा तो कहना है कि हम पूर्ण रूप से तैयार होकर यवनों का अहिंसक ढंग से सामना करें ।”

“यह कैसे सम्भव है यश ?” बीच में बात काटते हुए हेमलता ने पूछा ।

“यह सब सम्भव है । यदि हम अपने सभी अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर उनके सामना के लिए प्रस्तुत हो जायँ, तो हमारी विजयवाहिनी विशाल सेना के सामने यवन-सेना एक क्षण भी नहीं खड़ी हो सकती । वह भय से पलायन कर जायगी । युद्ध करने की परिस्थिति ही नहीं आयगी । और यदि उसने हम पर आक्रमण किया तो उसका उत्तर देना ही होगा । हाँ, हम पहले उन पर आक्रमण नहीं करेंगे, किन्तु अपने नगर, निगम, विहार आदि की रक्षा तो करेंगे ही । क्या तथागत ने काशी जनपद के लिए बार-बार युद्ध होने पर भी प्रसेनजित और अजातशत्रु में से किसी को रोका था ? यह तो राष्ट्रधर्म है । ऐसा करना सर्वथा धर्मसम्मत है ।”

“हाँ, यश ! तुम ठीक कहते हो ।” हेमलता ने अपनी सहमति प्रगट करते हुए कहा ।

“अच्छा, यश ! तुम दोनों की बातें मुझे भी पसन्द हैं । मैं पहले भ्रम में था । मैं नहीं जानता था कि तुम ऐसे धर्मज्ञ और नीतिज्ञ हो । यदि तुम्हारे समान मल्ल जनपद की सभी दम्पति राष्ट्रीयता की भावना से भरे हों, तो इस भूमि के नागरिकों का मस्तक सदा ही भास्वर रहेगा और मल्लभूमि सर्वदा अपराजिता बनी रहेगी ।” संघराज ने प्रसन्नतापूर्वक कहा ।

“भन्ते ! हम विवाहित नहीं हैं, किन्तु हमने ऐसी प्रतिज्ञा की है कि यवन-आक्रमण से अपने विहार, नगर,

निगम आदि की रक्षा करके ही विजयोत्सव के शुभावसर पर प्रणय-सूत्र में बँधेंगे । स्वयम्बर रीति से विवाह करेंगे । हमारी वंशानुगत यही रीति भी है ।”

“हाँ, भन्ते ! मल्लवीर सदा से ऐसा ही करते आ रहे हैं । उनका प्रणय तो कला-प्रदर्शन के उपरान्त ही होता है । क्या आपने सेनापति बन्धुल मल्ल और क्षत्राणी मल्लिका देवी की जीवनचर्या नहीं पढ़ी है ?” हेमलता ने मुस्कराते हुए आँखें नीची कर उभय कपोलों पर अरुणिमा की रेखा दीढ़ते हुए कहा ।

“अच्छा, यश ! पुत्री लते ! मैं भी संकल्प करता हूँ कि नगर, निगम तथा विहार की रक्षा के उपरान्त तुम दोनों का पाणिग्रहण-संस्कार इसी स्थान पर स्वयं कराऊँगा । चलो मैं इस समय जनता को अभिधर्म का उपदेश न कर, देश-रक्षा का ऐसा मंत्र दूँगा कि सब नर-नारी अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हो यवनों के अवरोध के लिए प्रस्तुत हो जायँ । देखो, यश ! तुम पुरुष सेना का संचालन करना और तुम लते ! मातृग्राम-सेना का ।”

“भन्ते ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है ।” सिंहयश और हेमलता ने कह, पञ्चांग प्रणाम कर प्रस्थान किया ।

❀ ❀ ❀

सुगतपुरी की जनता लाठी, भाले, बर्छी, तलवार और तीर-धनुष से सुसज्ज थी । एक ओर से मातृग्राम (=महिला) और दूसरी ओर से पुरुष सैनिक वेश में खाणुका नदी के दोनों किनारे वन-गुम्बों में छिपे थे । सभी घर शून्य थे । द्वारों के किवाड़ खुले हुए थे । गाय-बैल द्वारों पर बँधे थे । विहार में प्रदीप जगमगा रहे थे । मन्दिर का सिंहद्वार भी खोल दिया गया था । काषाय वस्त्रधारी भिक्षु विहार से निकल, दोनों सेनाओं से आगे वनखण्ड में बढ़ कर यवन-सेना की गतिविधि देख रहे थे । संघराज धर्मरुचि हेमलता और सिंहयश की सेनाओं के सेनापति की भाँति कभी इस पार तो कभी उस पार जाकर परामर्श किया करते थे ।

चन्द्रमा के ढलने के पश्चात् कोई १ बजे रात्रि में यवन-सेना के नदी के तीर से होकर आगे बढ़ने की आहट मिली । वनखण्ड से भिक्षुओं ने भी आकर समाचार दिया । उसी समय यवन-सैनिकों ने कुछ निहंग ग्रामीणों को मार्ग में मार डाला और उनके शरीरों को रौंदते हुए युद्ध का दूर्य बजाया । बस, क्या था, दोनों ओर से उभय सेना यवनों

लहाख के गोम्बा

२२३

पर सिंह-सिंहनी की भाँति टूट पड़ी। वसासान युद्ध होने लगा। सिंहयश ने यवन सेनापति का अवरोध किया और हेमलता ने पीछे से धावा बोला। देखते-देखते ही यवनों के मृत-कलेवरों से खाणुका नदी के दोनों तट बिछ गये। यवन-सेनापति भी मारा गया। बचे-खुचे यवन-सैनिक बलिहरण वनखण्ड में तितर-बितर होकर भाग गये। मल्लों की विजय हुई। 'मल्लकन्या हेमलता की जय ! मल्लपुत्र सिंहयश की जय !! संघराज धर्मरुचि की जय !!' के उच्च-घोष के साथ मल्ल-सेना सुगतपुरी की ओर लौट पड़ी। दोनों सेनाएँ खाणुका नदी के उभय पार्श्वों से होकर विहार में आ जुटीं।

भोर हो रहा था। मण्डलमाला में बने धर्मासन पर संघराज विराजमान हुए। उन्होंने हेमलता और सिंहयश को बुलाकर हर्षध्वनि के साथ एक दूसरे का हाथ थमाते हुए मंगलसूत्र बोलना प्रारम्भ किया। दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़े प्रसन्नता से बैठ गए। बैठते ही हेमलता ने लज्जा से सिर झुका लिया और सिंहयश के ऊपर लुढ़क गई। सिंहयशने भी प्रसन्नता से उसे पकड़ लिया।

“यह क्या ?” जन्तता बोल उठी। संघराज चौंक पड़े।

देखा गया कि दोनों के सिर असि-आघात से विक्षत हो गए थे। रुधिर-धारा उनके वस्त्रों से होकर प्रवाहमान थी और वे दोनों प्रणयी प्रसन्न मुद्रा में एक दूसरे का हाथ पकड़े आलिंगनवद्ध स्वर्ग का मार्ग देख रहे थे !

खाणुका और हिरण्यवती सरिताएँ आज भी खनुआ और हिरवा की नारी के रूप में विद्यमान हैं। सुगतपुरी के नष्टावशेष भी कुशीनगर (कुशीनारा) से लगभग २ मील दक्षिण हतवा से पूरव प्राचीन महामार्ग पर एक दीर्घकाल से अपने अतीत का गौरव गुनते पड़े हैं। लोग उन्हें बंजारों की बस्ती कहते हैं और वहाँ के ध्वस्त कूप को धनराशि से भरा हुआ समझते हैं। किन्तु, हेमलता और सिंहयश की वीरता के गान शताब्दियों से विस्मृत हैं। कभी-कभी ही अर्द्धनिशा में, वहाँ के नष्टावशेषों में, खेत के रखवालों को अपनी मचानों पर लेटे हुए किसी के ये मधुर-स्वर सुन पड़ते हैं :—

‘कव होइहें इहाँ विहनवाँ हो,
सुगतपुरिया के सुतल जवान !
दुहुँ अइहें अपनी नगरिया हो,
जस लतिका बनिके नव बिरवान !’

लहाख के गोम्बा

श्री श्रीधर कौल

तिब्बती भाषा में बौद्ध विहार को ‘गोम्पा’ अथवा ‘गोम्बा’ कहते हैं।

लहाख और गोम्बों को देखकर प्रभावित हुए बिना आप नहीं रह सकते। ये विशाल भवन प्रायः पहाड़ियों के शिखरों और अन्य ऊँचे स्थानों पर बनाये गये हैं। इन पर कई मील दूर से दृष्टि पड़ता है। इनकी विशालता और इनका सौंदर्य दर्शकों को विस्मित कर देता है। उनके मन में यह प्रश्न अवश्य ही उठता होगा कि ऐसे ऊँचे स्थानों पर पत्थर आदि सामग्री, जो इनके निर्माण में प्रयुक्त की गयी है, किस परिश्रम से पहुँचायी गयी होगी। गोम्बों की सीमाओं के बाहर पत्थर की दीवारें होती हैं जो कई

गज ऊँची, कई गज चौड़ी और सैकड़ों गज लम्बी होती हैं। इन दीवारों पर के ऊपर के स्तर पर हजारों चपटे पत्थर के टुकड़े होते हैं जिन पर भी ‘ओं मणि पद्मे हुँ’ या ‘डोंआ हुँ’ के मन्त्र अथवा भगवान् बुद्ध की मूर्तियाँ अंकित होती हैं। हजारों की संख्या में पत्थरों पर अक्षर और रेखाएँ खोदने में कितना समय लगा होगा और कितना परिश्रम करना पड़ा होगा, देखने वाले को आश्चर्य होता है। इन दीवारों को ‘मणि’ कहते हैं। यह प्रत्येक ग्राम के आदि और अन्त में अवश्य पाया जाता है। इनके साथ स्तूप, जिनको तिब्बती भाषा में ‘छोरतेन’ कहते हैं, भी होता है जिनमें बड़े-बड़े भिक्षुओं के अस्थिशेष अथवा अन्य धातु रखे जाते हैं।

लहाख के निम्नलिखित गोम्बा सुविख्यात हैं—

(१) हेमिस और चिमरे—इन दो गोम्बों का एक ही प्रधान लामा अर्थात् भिक्षु है। प्रधान भिक्षुओं को तिब्बती भाषा में 'स्कुशोक' (बोलने में 'कुशोक') कहते हैं। इन दो गोम्बों में लगभग ३०० लामा होंगे। इनका सम्बन्ध डुक्य सम्प्रदाय से है, जो लाल टोपी पहनते हैं। स्कुशोक बकुला के प्रचार से प्रभावित होकर इन लामाओं ने छग पान (एक प्रकार की जौ से बनायी हुई मदिरा) का परित्याग कर दिया है। हेमिस गोम्बा के पास शेष सब गोम्बों की अपेक्षा अधिक भूमि है। यहाँ के वार्षिक मेले को, जो जून के आरम्भ में होता है और जिसमें लामा लोग बाजे और मन्त्रों के उच्चारण के साथ भिन्न-भिन्न स्वांगों और विशेष प्रकार के वस्त्रों से सजित होकर धार्मिक नृत्यका प्रदर्शन करते हैं, देखने के लिए दूर-दूर देशों से लोग आते हैं। इस मेले का सम्बन्ध भारतीय बौद्ध-प्रचारक पद्मसम्भव के जन्म दिन के साथ है। पद्म सम्भव ने तिब्बत के प्राचीन धर्म के गुरुओं को अपनी सिद्धियों के प्रभाव से परास्त किया था। वस्तुतः यह नृत्य दैवी और आसुरी शक्तियों के संग्राम का अभिनय है, जिसका अन्तिम परिणाम दैवी शक्तियों की विजय होती है। इस गोम्बा के कुशोक को 'स्तकसंग ररुपा' कहते हैं।

यह गोम्बा लेह से प्रायः २२ मील पर है। अब लेह से यहाँ तक जीप जा सकती है। मेले को देखने के लिए सुदूर प्रान्तों से यात्री आते हैं। यात्रियों की संख्या प्रायः पाँच हजार तक पहुँच जाती है।

२. गौन—इस उपाधि से सम्बन्ध रखनेवाला केन्द्रीय गोम्बा लेह से ८ मीलपर क्यांग ग्राम में स्थित है। इसके साथ लामायुरु और शाङ्गकुल (च्यांग थांग्का एक ग्राम) गोम्बों का सम्बन्ध है। इन तीनों गोम्बों के स्कुशोक की उपाधि 'तुंगदंगछंग' है। इनमें रहनेवाले लामाओं की संख्या प्रायः २०० है। ये 'दिगुङ्पा' सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखते हैं और लाल टोपी पहनते हैं।

३. ठिकसे और दिस्कित—ये दोनों एक स्कुशोक के अधीन हैं। ठिकसे लेह से कोई ११ मील पर है और दिस्कित खरदुङ्गला पर नुवराघाटी में स्थित है। इन दोनों गोम्बों में लामाओं की संख्या लगभग १०० है। इनका सम्बन्ध पीली टोपीवाले गेलुङ्गपा सम्प्रदाय से है।

४. रिजोङ्ग और संरु तन लिङ्ग—इन दो गोम्बों का सम्बन्ध पीली टोपीवाले गेलुङ्गपा सम्प्रदाय से है। लामाओं की संख्या प्रायः ६० होगी। रिजोङ्ग लेह से ३५ मील पर है और संरुतनलिङ्ग नूनरा घाटी के सभूर ग्राम में स्थित है।

५. लिकीर—यह गोम्बा लेह से कोई ३० मील पर है। इस में प्रायः ६० लामा रहते हैं जिनका सम्बन्ध गेलुङ्गपा सम्प्रदाय से है। लिकीर के स्कुशोक के अधीन जारुकार का कर्श गोम्बा और तहासा का क्योसोलेंग गोम्बा भी है। इस स्कुशोक की उपाधि 'ड-री-छङ्ग' है।

६. स्थितुक और सेकर—ये दो गोम्बा एक ही स्कुशोक के अधीन है जिनकी उपाधि 'बकुला' है। इनका सम्बन्ध गेलुङ्गपा सम्प्रदाय से है। लामाओं की संख्या ६० है। वर्तमान स्कुशोक कश्मीर राज्य में राज्यमन्त्री हैं। उन्होंने गोम्बों की एक समिति भी बना ली है जिसके वे प्रधान हैं। वे लामाओं के सुधार की ओर विशेष ध्यान देते रहे हैं। अपने गोम्बों का प्रबन्ध चलाने के लिए उन्होंने एक समिति बनायी है। उनके प्रयत्न का ही परिणाम है कि अब सारे लामाओं ने मदिरापान का परित्याग कर दिया है।

७. टक ठक—यह गोम्बा चाँगला की तलहटी में है। इसमें कोई ४० लामा रहते हैं, जो निगमापा सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखते हैं।

८. तगना—यह डुकपा सम्प्रदाय के लामाओं का गोम्बा है। लामाओं की संख्या २० के लगभग है।

९. माठो—इस गोम्बे के लामाओं की संख्या ३५ के लगभग है। इनका सम्बन्ध सहक्यापा सम्प्रदाय से है।

१०. रंगदुम, कर्शा, पदुम और थुकतल—ये सब गोम्बे जांस्कार प्रान्त में स्थित हैं। इनमें लामाओं की संख्या २०० के निकट होगी। कर्श गोम्बा का उल्लेख ऊपर (५) किया गया है। इन गोम्बों का सम्बन्ध गेलुङ्गपा सम्प्रदाय से है।

१, २, ३, ४, ५, ६ और ८ के स्कुशोकों के सम्बन्ध में यहाँ के बौद्धों का मत है कि वे बोधिसत्व हैं जो गोम्बा का काम चलाने और धर्मप्रचार के लिए बार-बार जन्म लेते हैं। उनके देहान्त पर उनकी खोज की जाती है और जब परीक्षाओं के अनन्तर उनका व्यक्तित्व सिद्ध हो जाता है तब उनको गोम्बा में लाया जाता है, जहाँ उनको स्कुशोक

लहाख के गोम्बा

२२५

के सिंहासन पर बैठाया जाता है। फिर उनकी शिक्षा का योग्य प्रबन्ध किया जाता है। स्कूशोंकी की प्रामाणिकता तभी सिद्ध होती है जब लहासा से इनकी स्वीकृति प्राप्त होती है।

सभी गोम्बों के पूजा के कमरों में भगवान् गौतमबुद्ध, मैत्रेय बुद्ध आदि की मूर्तियाँ स्थापित रहती हैं। बड़े-बड़े गोम्बों की मूर्तियाँ बहुमूल्य होती हैं, क्योंकि इनमें सोना-चाँदी और रत्न पर्याप्त मात्रा में जड़े होते हैं। ग्यारह सिरवाली और सहस्र भुजावाली 'अवलोकितेश्वर' की मूर्ति प्रत्येक गोम्बा में पायी जाती है। पूजा के कमरों में लामाओं के बैठने के लिए आसन और उनकी पुस्तकों के लिए चौकियाँ पंक्तियों में बिछी होती हैं। इनमें मक्खन के बड़े-बड़े दीप होते हैं जो निरन्तर जलते रहते हैं। प्रत्येक गोम्बा में बड़े वाद्ययन्त्र होते हैं जिनको बजानेवाले भी लामा ही होते हैं। यह बाजा पूजा के समय अथवा किसी बड़े व्यक्ति का स्वागत करने के लिए और जैसा ऊपर कहा गया है, धार्मिक नृत्यों में बजाया जाता है।

जब भी कोई यात्री किसी गोम्बा में आता है वह भगवान् बुद्ध की मूर्ति के सामने सामान्यतः तीन बार दण्डवत् प्रणाम करता है। कई लामा और गृहस्थ सहस्रों बार किसी नियत अवधि में प्रणाम करने का प्रण लेते हैं। वह प्रत्येक दिन के लिए प्रणामों की कुछ संख्या नियत करते हैं और अपने प्रण को निवाहते हैं। गोम्बे की परिक्रमा सबके लिए अनिवार्य कभी-कभी पवित्र स्थानों की मीलों लम्बी परिक्रमा दण्डवत् प्रणाम करते-करते अर्थात् लेट-लेटकर पूरी की जाती है। प्रणाम करते-करते 'ओं मणि पद्मे हुँ' मन्त्र का जाप किया जाता है। किसी-किसी गोम्बा की परिधि पर बड़े-बड़े घूमने वाले लकड़ी के चक्र होते हैं जिन पर यह मन्त्र अंकित होता है। परिक्रमा करते हुए यात्री इन चक्रों को घुमाना एक पुण्यकर्म समझते हैं। कई गोम्बों में भिक्षुणियाँ भी होती हैं जिनको तिब्बती भाषा में 'चोमो' कहते हैं। इनके लिए गोम्बा में भिक्षुओं से पृथक् निवास-स्थान होता है।

गोम्बों में लामाओं के लिए अलग-अलग कोठरियाँ होती हैं जिनमें वह सामूहिक रूप से पूजा आदि के समय को छोड़कर, उठते-बैठते, सोते, पढ़ते, माला फेरते और

ध्यान-अभ्यास करते हैं। यहाँ लामाओं और अन्य लोगों को पढ़ाने का प्रबन्ध किया जाता है। धार्मिक और दार्शनिक ग्रन्थों के अतिरिक्त ज्योतिष और आयुर्वेद भी पढ़ाया जाता है। यह कहना कोई अयुक्ति न होगी कि लहाख में बौद्ध संस्कृति को इन्हीं गोम्बों ने जीवित रखा है। प्रायः लामा लोग पाठ्यग्रन्थों को कण्ठस्थ करते हैं और उनका अर्थ समझने का कष्ट नहीं करते। ऐसे बहुत थोड़े लामा हैं जो पढ़ी हुई पुस्तकों के अर्थ बता सकें।

प्रत्येक गोम्बा भित्तिचित्रोंका संग्रहालय है। दीवारें भगवान् बुद्ध, उनकी जीवन-कथा, भिन्न-भिन्न देशों के विख्यात भिक्षुओं, धार्मिक नेताओं, सुधारकों और बौद्धधर्मों (तिब्बत का प्राचीन धर्म) अथवा तान्त्रिक प्रथासम्बन्धी देवी-देवताओं के चित्रों से भरी होती हैं। अच्छी और सुमदा के गोम्बों के भित्तिचित्र कश्मीरी कलाकारों के हाथों से बने हैं। इनमें एक विचित्र लालिल्य पाया जाता है। यह अत्यन्त शोचनीय है कि ये चित्र अब मिटते जा रहे हैं।

भित्तिचित्रों के अतिरिक्त गोम्बों में पटचित्र और धातु आदि की मूर्तियाँ बड़ी संख्या में पाई जाती हैं। किसी-किसी गोम्बा में दो मंजिल ऊँची मैत्रेय बुद्ध (जिसको तिब्बती भाषा में 'चम्बा' कहते हैं) की मूर्तियाँ देखी जाती हैं। पूरे गोम्बा में ऐसी ही बड़ी भगवान् बुद्ध की धातु की मूर्ति है जो जगविख्यात है और जो मूर्तिकला का अद्भुत नमूना है। इन मूर्तियों में अंगों का अनुपात मुखमण्डल था। अलौकिक सौन्दर्य, विशेषकर आँखों की ध्यानमग्न अवस्था की अभिव्यक्ति, दर्शकों को विस्मित किये बिना नहीं छोड़ती।

कई गोम्बों ने धर्मशालाएँ बना रखी हैं जिनमें कोई भी मुसाफिर चाहे वह किसी भी धर्म से सम्बन्ध रखता हो, स्वतन्त्रता से रह सकता है। इनको तिब्बती भाषा में 'लबरांग' कहते हैं। कभी-कभी इनके व्यवस्थापक मुसलमान होते हैं। कई गोम्बों के ऊपर की ओर और उनसे कुछ दूर मकान बनाये गये हैं जिनमें भिक्षु-भिक्षुणी किसी नियत समय के लिए, जो कभी-कभी कई वर्ष भी होता है, ध्यान अभ्यास के लिए एकान्तवास करते हैं। इस समय विभाग में वह एक क्षण के लिए भी बाहर नहीं हो सकते, न इनको रखने के लिए ही कोई व्यक्ति, एकाध सम्बन्धी को छोड़, इनके पास जा सकता है।

प्रत्येक बड़े गोम्बे में कंग्यूर (तिब्बती त्रिपिटक) की १०६ और तंग्यूर ('कंग्यूर' का भाष्य) की ३५३ पुस्तकें ल्हासा से लायी जाती हैं। इनको रेशमी बस्तों में बड़े आदर से अल्मारियों में सुरक्षित रखा जाता है और इनसे ही एक पुस्तकालय बनता है। इनके अतिरिक्त कई बड़े गोम्बों में और पुस्तकें भी होती हैं। कई गोम्बों में प्राचीन चीनी ढंग के मुद्रणालय भी हैं। वहाँ कपड़े के टुकड़ों पर विशेष मन्त्र मुद्रित किये जाते हैं जिनको गृहस्थ लोग अपने घरों की छतों पर झंडियों में लगाते हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि गोम्बा पूजा-ध्यान आदि स्थान के कलामन्दिर और शिक्षणालय भी हैं और इनके बिना यहाँ के बौद्धों का धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन असम्भव है।

जब किसी गृहिणी के एक से अधिक लड़के या लड़कियाँ होती हैं तो वह प्रायः बड़े लड़के अथवा लड़की को छोड़कर शेष संतति में से एक या एक से अधिक लड़कों या लड़कियों को किसी गोम्बा में प्रविष्ट करने के लिए रखती है। लड़कों को लामा का वेश और लड़कियों को चोमो का वेश धारण कराया जाता है। उनको किसी गोम्बे में ले जाया जाता है, जहाँ एकत्रित हुए लामाओं का, जो धर्म-ग्रन्थों के विशेष भागों का पाठ करते हैं, चाय से सत्कार किया जाता है। चोमो बनते ही लड़की का मुण्डन कराया जाता है, जैसे लामा बनते ही लड़के का। दोनों के नाम बदले जाते हैं मानों उनका दूसरा जन्म आरम्भ हुआ। कभी-कभी बड़ी अवस्था में भी कई पुरुष और स्त्रियाँ लामा या चोमो बनती हैं। चोमोओं की संख्या लामाओं की अपेक्षा बहुत थोड़ी है। गोम्बों में प्रविष्ट होने के पश्चात् इनकी शिक्षा का प्रबन्ध किया जाता है और इनको गोम्बे के किसी विशेष काम पर लगाया जाता है। सुशिक्षित होने पर ये गृहस्थों के घरों में जन्म-मरण आदि के अवसरों पर पूजा-पाठ करते हैं और कुछ दक्षिणा प्राप्त करते हैं। कइयों के पास पर्याप्त पूँजी एकत्रित होती रही है और पूर्व काल में इनमें से कई व्याज पर रुपया देकर अपनी पूँजी को बढ़ाते रहे हैं, परन्तु अब इन बातों का सुधार हो चुका है। लामाओं के वास्तविक कर्तव्य अर्थात् धर्म-प्रचार की ओर भी अब विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। जैसा ऊपर कहा गया है, इस समय लामाओं की

अधिक संख्या धर्म-ग्रन्थों को केवल कण्ठस्थ करती है। उनमें बहुत थोड़े विद्वान् पाये जाते हैं। कुछ लामा विद्या-लाभ के लिए ल्हासा जाते हैं जहाँ वे १० से १५ वर्ष का विद्यार्थी जीवन बिताते हैं। स्कुशोकों को ल्हासा की यात्रा अवश्य ही करनी पड़ती है। केवल ल्हासा में शिक्षा ग्रहण करने और वहाँ के वातावरण से पूर्णतया प्रभावित होने के कारण इन लामाओं और स्कुशोकों का दृष्टिकोण कुछ संकीर्ण-सा होता है और बाहर के जगत् की विचारधाराओं का इनको थोड़ा ही ज्ञान होता है। इस दृष्टि को दूर करने के लिए भी स्कुशोक बकुला ने लामाओं को विद्यालाभ के लिए सारनाथ भेजने की प्रथा प्रचलित कर ली है। हेमिस गोम्बा के स्कुशोक, जिनकी उम्र कोई १५ वर्ष की है, इस समय हिन्दी-अंग्रेजी आदि का अध्ययन कर रहे हैं।

गोम्बों की व्यवस्था के दो विभाग हैं—धार्मिक और व्यावहारिक। धार्मिक विभाग का मुख्य कार्यवाहक 'लोबुन' होता है जो पूजा की अध्यक्षता करता है। इसके नीचे 'उमजुत' होता है जो पूजा के आरम्भ कराने का अधिकार रखता है। यह पूजा के आरम्भ की घोषणा तालियाँ बजाकर करता है। 'उमजुत' का सहायक 'उचुंग' कहलाता है। पूजा आदि का व्यवस्थापक और अनुशासक 'दुसलिम्बा' कहलाता है।

व्यवहार विभाग के मुख्य अधिकारी को 'छगजोत' कहते हैं। यह आय-व्यय सम्बन्धी सारे कार्यों को चलाता है। गोम्बे की सारी पूँजी (धन, खाद्यपदार्थ आदि) इसी के हाथ रहती है। इस विभाग का दूसरा अधिकारी 'ड्वन-यर' होता है। यह पूजा की सारी सामग्री की रखवाली करता है। इसका सहायक 'उचग' कहलाता है। गोम्बे की जमीनों के स्थानीय व्यवस्थापक को 'न्यरपा' कहते हैं। यह छगजोत की अधीनता में काम करता है।

जब तक स्कुशोक युवावस्था को प्राप्त नहीं होता, छगजोत असीम अधिकार का भागी रहता है। स्कुशोक के अध्यापक को 'ग्यरगन' कहा जाता है और जो विद्वत्ता और पाण्डित्य के आधार पर चुन लिया जाता है। जब तक यह स्कुशोक के अध्यापन का काम करता है उसका गोम्बे की व्यवस्था पर कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ता है। युवावस्था को पहुँचने पर स्कुशोक सारे अधिकार स्वयं

लद्दाख के गोम्बा

२२७

सँभालता है, परन्तु पदाधिकारियों के कर्तव्य में कोई परिवर्तन नहीं होता। पदाधिकारियों का चुनाव प्रायः लामाओं की सभा में होता है। लामाओं की परीक्षाएँ भी होती हैं जो नियत धर्म-ग्रन्थों को जबानी सुनाने तक सीमित होती हैं। गोम्बों का सारा काम लामाओं के द्वारा ही किया जाता है, किन्तु आय-व्यय का हिसाब रखने और अन्य दफ्तरी कामों के चलाने के लिए गृहस्थ भी नियुक्त किये जाते हैं। कभी-कभी गोम्बों ने इस काम को चलाने के लिए मुसलमानों को नियुक्त किया है। इन गोम्बों में हेमिस का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है।

गोम्बों की आय का मुख्य स्रोत उनकी जमीनें हैं जो उनको पुराने राजाओं और साधारण जनता ने अपनी श्रद्धा से दान दी हैं। दूसरा स्रोत जनता के चढ़ावे हैं। जब यात्री इन गोम्बों में जाते हैं तब वे कुछ न कुछ अवश्य भेंट चढ़ाते हैं। जब स्कुशोक किसी गाँव में निमन्त्रित किये जाते हैं तब वहाँ प्रत्येक घर की ओर से उनके सामने रुपया, भस्म, फल आदि रखे जाते हैं। प्रायः लोग उनके सामने 'खतक' रखते हैं। यह एक डेढ़ गज लम्बा और कोई चार गिरह चौड़ा रेशम जैसे कपड़े का टुकड़ा होता है जिससे लद्दाख में बड़े आदरणीय पुरुषों और स्त्रियों का उसी प्रकार सत्कार किया जाता है जिस प्रकार भारत में फूलों की मालाओं से। जब स्कुशोक किसी गाँव में पधारते हैं तब लोग वाद्य यन्त्रों से उनका स्वागत करते हैं। किसी गोम्बे से लाया हुआ एक लामा भी पहले ही गाँव में उपस्थित होता है और वह भी नरसिंघा बजाकर स्वागत में भाग लेता है। गाँव की स्त्रियाँ लस्सी या पानी से भरे घड़े हाथ में लिए हुए पंक्ति में खड़ी होती हैं। इस पंक्ति में पुरुष भी होते हैं। जब स्कुशोक, जो घोड़े पर सवार होते हैं, इस पंक्ति के पास से गुजरते हैं तब इसमें खड़े लोग बड़े विनम्र भाव से प्रणाम के लिए सिर झुकाते हैं और स्कुशोक उनके सिरों को अपने हाथ से स्पर्श करते जाते हैं, जिसको वे लोग 'वरदान' समझते हैं।

लद्दाख की प्राकृतिक परिस्थिति कुछ ऐसी है कि यहाँ भिक्षुओं के लिए भिक्षा से निर्वाह करना असम्भव है। गोम्बों में लामाओं की संख्या उन ग्रामों के घरों की संख्या की अपेक्षा, जिनमें वह स्थित हों, बहुत अधिक होती है। हेमिस गोम्बा को लीजिये। यहाँ लामाओं की संख्या सैकड़ों तक पहुँचती है और हेमिस गाँव में अधिक से अधिक दस-बारह घर होंगे। निकट से निकट गाँव चार-पाँच मील पर होगा। इतने थोड़े-थोड़े घरों के लिए उतनी बड़ी संख्या में लामाओं को दैनिक भिक्षा देना कल्पनातीत तो है ही, साथ हमें स्मरण रखना चाहिये कि गोम्बों को लामाओं की वेश-भूषा के अतिरिक्त और बहुत सी बातों पर रुपये का व्यय होता है। यदि उनके पास वह जमीन न हो जो उनको सैकड़ों वर्ष पूर्व उनकी आवश्यकताओं को देखकर दी गयी है तो उनका अस्तित्व ही असम्भव होता। यही कारण है कि कश्मीर में बड़ी जमींदारियाँ समाप्त होने के बाद भी गोम्बों के पास उनकी जमीन रहने दी गयी। बौद्ध जनता ने एक स्वर से प्रबल माँग की कि वह कानून जिसके अधीन कोई भी व्यक्ति १८२ कनाल से अधिक जमीन नहीं रख सकता, गोम्बों पर लागू न किया जाय। स्वयं उन किसानों ने, जिनको गोम्बों की जमीन मिल सकती थी, स्पष्ट घोषणा की कि वे कदापि गोम्बों की जमीन लेने के भागी न होंगे।

पिछले कई वर्षों से लद्दाख में राजनीतिक जागृति के साथ धार्मिक जागृति भी हो रही है। लामा अपने कर्तव्य की ओर ध्यान देने लगे हैं और गोम्बों का भविष्य साधारण जनता के विचार-विनिमय का विषय बना हुआ है। इस समय बहुत थोड़े लामा विद्यालय के लिए ल्हासा जा सकते हैं। लेह के महाविद्यालय में लामा प्रविष्ट हो सकेंगे और इसका पाठ्यक्रम विस्तृत और आधुनिक आवश्यकताओं के अनुसार होने के कारण इनको ल्हासा की शिक्षा की अपेक्षा उक्त महाविद्यालय की शिक्षा से अधिक लाभ होगा और वे अपने महत्वपूर्ण कर्तव्य को निबाहने में पूर्णतः सफल होंगे।

अजन्ता और बाघ की चित्रकला

श्री मधुकर

चित्रकला का स्थान अन्य कलाओं में सर्वश्रेष्ठ है। यह एक ऐसी कला है जिसके द्वारा कलाकार अपने मन के भावों को तूलिका और रंगों के सहारे भिन्न-भिन्न भाषा-भाषियों तक ही नहीं, बल्कि अशिक्षितों तक भी पहुँचा सकता है। इसलिए चित्रकला का स्थान हमारी संस्कृति के प्रकार के प्रकाश का मार्ग बन कर फलता-फूलता रहा है। बौद्ध काल की चित्रकला भारत के इतिहास में एक प्रमुख स्थान रखती है। एक समय था जब भारत ही नहीं, विश्व का बहुत विशाल भाग बौद्ध साहित्य, चित्रकला और संस्कृति से आच्छादित था। इस बौद्ध कालीन युग में जहाँ मूर्तिकला, स्थापत्यकला और साहित्य ने महान् कार्य किया वहाँ चित्रकला भी इनसे पीछे नहीं रही, क्योंकि बुद्ध के पूर्व जन्म की कथाएँ जो जातक कथाओं के नाम से प्रसिद्ध हैं, सफलतापूर्वक तूलिका द्वारा व्यक्त की जा सकती थीं, उतनी अन्य किसी साधन द्वारा नहीं। अब हम यहाँ पर संक्षेप में अजन्ता और बाघ की प्रमुख शैलियों का वर्णन करेंगे।

अजन्ता

यह प्रसिद्ध कला-केन्द्र नवनिर्मित बम्बई राज्य के औरंगाबाद स्टेशन से ६० मील दूर है। वहाँ से बसों द्वारा अजन्ता पहुँचने का साधन उपलब्ध हो सकता है। हम पर्वतों, जंगलों, ऊँचे-नीचे घुमावदार रास्तों को पार करके अजन्ता पहुँचते हैं। यहाँ का रमणीय पर्वतीय प्रदेश सहज ही दर्शकों का मन मोह लेता है। इन गुफाओं को देखकर हमारा ध्यान उन अंग्रेज अधिकारियों की ओर आकृष्ट हो जाता है जिन्होंने इस प्राचीन कला-केन्द्र को १८१९ में ढूँढ़ निकाला था और तभी से विश्व के सभी कलाकारों की आँखें इसकी ओर लगी हुई हैं।

इन चित्रों में,—“मैत्री, करुणा, प्रेम, क्रोध, लज्जा, हर्ष, उत्साह, चिन्ता, घृणा आदि सभी प्रकार के भाव पद्मपाणि अवलोकितेश्वर, प्रशान्त तपस्वी और देवोपम

राजपरिवार से लेकर क्रूर व्याध, निर्दय बधिक, साधुवेपथारी धूर्त, वारवनिता आदि सब तरह में रत दम्पति और शृंगार में लगी नारियों तक सकल मानव-व्यापार अंकित हैं।”

इन चित्रों की विषय-सामग्री जातक-कथाओं के अनेक दृश्य और बुद्ध और बोधित्व के चित्र हैं। अतिरिक्त इसके विषय, फल-फूल, वृक्ष, देवी-देवता, पशु-पक्षी, अप्सराओं, किन्नरियों और यक्षों के सुन्दर मुग्धकारी चित्रण हैं, जो कि रिक्त स्थानों को अलंकृत करने के लिए चित्रित किए गये हैं।

पहली गुफा में हमें चार चित्र अपनी ओर आकर्षित करते हैं। पहला चित्र गौतमबुद्ध और यशोधरा के विवाह के उपरान्त का है। नवदम्पति का यह चित्र मूल कविता-का भावात्मक चित्रण है। दूसरा चित्र जातक की ‘शिवि’ कथा का चित्रण है, जिसमें बोधिसत्व इसी जन्म में ‘शिवि’ के रूप में थे। वह अपने शरीर का मांस काट-काट कर बाज को खिला कर एक कबूतर की रक्षा कर रहे हैं। यह चित्र महाकारुणिक की करुणा का प्रतीक है। तीसरा चित्र पद्मपाणि बुद्ध का है, इसमें उनके शरीर का गठन, मुख की सौम्यता पर चिन्ता और करुणा के भाव चित्रित हैं। यह चित्र बुद्ध के गृह-त्याग की मुद्रा को ध्वनित करता है। चौथा चित्र बुद्ध की तपस्या का है। बुद्ध अविचलित ध्यान-मुद्रा में बैठे हैं, उनके चारों ओर मार अपनी सेना के साथ छाया हुआ है। एक ओर भयंकर मूर्तियाँ हैं, तो दूसरी ओर अपूर्व सुन्दरियाँ वासनाओं को उभारती हुई खड़ी हुई हैं। यहाँ कुमार सिद्धार्थ के मुँह पर शान्त रस का अच्छा चित्रण हुआ है।

दूसरी गुफा में एक बालिका की क्षमा-याचना का चित्र भावभंगिमा की दृष्टि से अधिक सफल है। इस बालिका की उँगलियों का रेखांकन तथा उसके झुके शरीर का अंग प्रत्यंग क्षमा-याचना के समर्पण का हृदय-द्रावक रूप है। इसके अतिरिक्त ‘हंस जातक’ की कथा, ‘माया

अजन्ता और बाघ की चित्रकला

२२९

का स्वप्न' तथा 'लुम्बिनी की यात्रा' के चित्र भी कम ध्यान आकर्षित नहीं करते हैं।

नवीं और दसवीं गुफा के चित्र धुँधले और अस्पष्ट हैं, किन्तु सोलहवीं में अनेक सुन्दर और आकर्षक चित्र हैं। अधिकांश चित्र कथावस्तु की कोई स्पष्टता नहीं रखते तो भी भगवान् बुद्ध के गृहत्याग का चित्र जिसके स्वप्न में दीन यशोधरा राहुल को वक्षस्थल से चिपकाए अनिमित्त सोई हुई है। एक ओर दासियाँ भी निद्रातीत हैं। भगवान् बुद्ध के मुख की शान्ति की अभय मुद्रा दर्शनीय है। दूसरा महत्त्वपूर्ण चित्र इस गुफा का एक राजकुमारी का मरणोन्मुख चित्रण है। राजकुमारी की बड़ी करुण मुद्रा है। जैसा कि इस चित्र के सम्बन्ध में कहा गया है—“करुणा भाव तथा कहानी के त्रुटि रहित ढंग के इस चित्र से बढ़ कर कोई चित्रकला के इतिहास में नहीं हो सकता!” अन्य चित्रों में “सुतसोम” जातक कथा, नंद का धर्म परिवर्तन, बुद्ध का जन्म, उनका विद्याध्ययन आदि के चित्र चित्रित हैं, जो कला के सुन्दर उदाहरण हैं।

सत्रहवीं गुफा के चित्र अधिकतर बुद्ध की जन्मभूमि कपिलवस्तु के हैं। ये चित्र अजन्ता के अन्य चित्रों से अधिक ध्यान आकर्षित करते हैं। भगवान् तथागत बुद्धत्व प्राप्त करके अपनी जन्मभूमि लौटे हैं। उनके एक हाथ में भिक्षापात्र है और दूसरी ओर राहुल को लिए भाविनी यशोधरा का चित्र है। यशोधरा राहुल के अतिरिक्त और कौन सा अमोल रत्न भिक्षा दे सकती है। एक ओर बुद्ध के मुख पर शान्त मुद्रा का साम्राज्य है उधर यशोधरा का मुख भी आत्म समर्पित करता दिखाई पड़ता है। भगवान् बुद्ध के नेत्र विश्व-कल्याण में लीन-से हैं; तो यशोधरा के नेत्र श्रद्धा के आँसू से गीले हैं। यह चित्र किसी संगीतकी ध्वनित लहरियों में गूँजते-से लगते हैं। दूसरी विशेषता इन चित्रों की यह है कि पूरे मनुष्य के आकार में बने हैं।

अन्य चित्रों में एक निराश प्रौढ़ मनुष्य अपने दाहिने हाथ को फैलाए तथा बाएँ हाथ में एक डण्डा पकड़े ढोड़ी का अवलम्ब लिए खड़ा है। यह निराशा का सफल चित्रांकन है। ‘गजजातक’ की कथा में हाथियों का बड़ा साँल और स्वाभाविक चित्रण है! भगवान् बुद्ध किसी पूर्व जन्म में हाथी के रूप में बोधिसत्व थे, यही इसकी कथा है।

अन्य चित्रों में ‘कपिराज जातक’, ‘मत्स्य जातक’, ‘महाहंस-जातक’, तथा ‘मातृ पोषक जातक’, कथाओं का चित्रण है। पशु-पक्षियों, अप्सराओं और किन्नरियों के चित्रण भी कम सुगंधकारी नहीं हैं। अजन्ता के चित्रों में भावसंयोजन, रेखाओं की सौन्दर्य पूर्णता, हाथ और पैरों की स्वाभाविक मुद्राएँ, रंगों का विधान तथा उनका मनोवैज्ञानिक प्रभाव, नारी का शारीरिक सौन्दर्य और फल-फूल-पत्तों, पशुपक्षियों के अलंकारिक नमूने आज भी कलाकारों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं, यही उनकी विशेषताएँ हैं।

बाघ

अजन्ता की तरह बाघ की गुफाएँ भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। इसके चित्रों से भी प्राचीन बौद्ध कला का अच्छा दिग्दर्शन हो जाता है। यहाँ पर पहुँचने के लिए उज्जैन या इन्दौर से भी पहुँचा जा सकता है। बाघिनी नदी के किनारे होने के कारण यह बाघ की गुफाएँ कहलाई। इन गुफाओं के पास केवल एक डाक बैंगला है, किन्तु वहाँ पर खाने-पीने का कोई साधन नहीं है। सम्पूर्ण वातावरण निर्जन पहाड़ियों और सघन जंगलों से ढँका हुआ है। यहाँ पर आदि निवासियों के अतिरिक्त और अन्य मानव कम दिखाई देते हैं।

इन गुफाओं के चित्र अजन्ता और जातक की कथाओं के आधार पर चित्रित किए गये हैं। क्योंकि अजन्ता और बाघ में कुल १५० मील का अन्तर है, वह भी नर्मदा नदी के होने के कारण हो गया है। अतः ये चित्र अजन्ता के चित्रों से कुछ साम्य रखते हैं। अधिकतर चित्र अस्पष्ट और नष्ट हो गए हैं, किन्तु कुछेक चित्र भगवान् गौतम बुद्ध के जीवन पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। गुफाओं की संख्या आज-कल नौ है। उनमें से आज भी कुछ गुफाएँ जीर्ण अवस्था में हैं। सम्पूर्ण गुफाओं के वातावरण को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ की अनेक गुफाएँ सुरक्षा के अभाव में चिर निद्रित हो गई हैं। आज भी शेष गुफाओं में इतना अन्धकार रहता है कि बिना प्रकाश की सहायता से इनमें चित्रों को देखना असम्भव-सा है।

चौथी और पाँचवीं गुफाओं के चित्र अपनी भाव-भंगिमा के कारण अपूर्व हैं। एक चित्र जो अधिक हृदय-द्रावक है, वह रानी और उसकी सखी का है। रानी

वेदना की साकार मूर्ति है। वह अपने दायें हाथ में अपने मुँह को रुसाल से ढँके हुए है। बाएँ हाथ की हस्तमुद्राएँ करुण रस में अधिक सहायक हुई हैं। एक चित्र सात गायिकाओं का है, कुछ के हाथ में मंजीर, कुछ के हाथ में मृदंग, कुछ के हाथों में डंडे, अन्य वाद्य लगे हैं। इनका गाते हुए नृत्य करना अजन्ता के चित्रों की ओर ध्यान आकर्षित करता है। प्रत्येक नायिका के मुँह पर भाव-समानता दर्शनीय है। इस प्रकार के नृत्य करते गाते चित्र यहाँ नहीं हैं। एक बोधिसत्व का चित्र अपनी रूप-शृंगारिता, केश-विन्यास और सौम्य आकृति के लिए प्रसिद्ध है। इस बोधिसत्व का भाव-संयोजन चित्रकला का एक अनुपम आदर्श है।

इसके अतिरिक्त घोड़े के सवार का चित्र तथा एक

राज-समारोह का चित्र भी बड़ा ही स्वाभाविक है। राजा को लिए एक हाथी बड़ी मन्द गति से चल रहा है। हाथी के ऊपर केसरी झूल पड़ी है। पीछे एक सेवक चँवर और छत्र लिए चल रहा है। यह चित्र राज्य-समारोह का प्रतीक है। इसके अतिरिक्त सैकड़ों प्रकार की छतों, दीवारों, खम्भों पर गाय, बछड़े, पक्षी, हंस प्राकृतिक सौन्दर्य आदि के चित्रों की अभिव्यक्ति दर्शकों को मुग्ध कर लेती है।

आज भारतीय चित्रकला में अजन्ता और वाघ के चित्रों का कितना स्थान है, वह सर्वविदित है। ये बौद्धकालीन चित्र उस समय के महान् कलाकारों का ध्यान दिलाते हैं, जिन्होंने रंग और तूलिका के सहारे अपने मन के भावों को अभिव्यक्त किया था, जो आज भी किसी व्यक्ति को चित्र-कला की प्रेरणा देने के लिए पर्याप्त हैं।

प्रगति-गान

कुमारी यशोधरा शास्त्री

आओ चलें हम सब से आगे,
दुनिया अपने पीछे भागे।

देखो आये नये जमाने,
बुद्ध के गाये मीठे गाने,
बुद्ध के गीत सुहाने,
चलें धर्म का नाम बढ़ाने।

आओ चलें हम सब से आगे,
दुनिया अपने पीछे भागे।

जोश से आगे बढ़ते जायें,
तूफानों से लड़ते जायें,
विद्या से झोली भरते जायें,
खूब प्रगति हम करते जायें।

आओ चलें हम सब से आगे,
दुनिया अपने पीछे भागे।

हम नौजवान हैं हिम्मत वाले,
बुद्ध-धर्म के हमीं सहारे,
दिल में हो यदि हमारे,
तोड़ के लायें नभ के तारे।

आओ चलें हम सब से आगे,
दुनिया अपने पीछे भागे।



उत्तर प्रदेश में छः लाख नवदीक्षित बौद्ध, लखनऊ में ३००० व्यक्तियों ने बौद्धदीक्षा ली

लखनऊ में १४ और १५ दिसम्बर को दयानिधान-पार्क में हुए अछूतों के धर्मान्तर समारोह में लगभग तीन हजार व्यक्तियों ने बौद्धधर्म ग्रहण किया। इस सम्मेलन में भारत स्थित कम्बोडिया, वियतनाम, स्याम, जापान, बर्मा, लंका, पाकिस्तान, नेपाल आदि देशों के बौद्ध भिक्षु सम्मिलित हुए थे जिनकी संख्या २६ थी। इनके अतिरिक्त डाक्टर अम्बेडकर के पुत्र श्री यशवन्तराव अम्बेडकर, श्री बी० के० गायकवाड़ एम० पी०, श्री हरिदास कट्टी एम० पी० और सारनाथ के भिक्षु धर्मरक्षित तथा भिक्षु-शासनश्री भी गये थे। भदन्त आनन्द कौसल्यायन इस द्विदिवसीय समारोह के संचालक थे और संयोजक थे बुद्ध विहार लखनऊ के भिक्षु प्रज्ञानन्द।

समारोह में प्रायः सभी प्रमुख व्यक्तियों के भाषण हुए। सबने अछूतों को बौद्धधर्म अपनाने की सलाह दी। भारतीय बौद्ध महासभा के प्रधान मन्त्री ने सूचित किया कि प्राप्त आँकड़ों के अनुसार आगरा, अलीगढ़, मेरठ, उज्ज्यानी, बरेली आदि स्थानों में हुए धर्मान्तर समारोह के फलस्वरूप उत्तर प्रदेश में अब तक छः लाख व्यक्ति बौद्ध हो चुके हैं।

कुशीनगर के श्री चन्द्रमणि महास्थविर ने धर्म-दीक्षा और उपदेश दिये। डाक्टर अम्बेडकर के २२ नियमों की प्रतिज्ञाएँ भी कराई गयीं।

इस अवसर पर डाक्टर भीमराव अम्बेडकर की अस्थियाँ भी आयी थीं, जो अब लखनऊ में ही रहेंगी और उनकी स्थापना के लिए एक भवन का निर्माण होगा।

चन्द्रमणि महास्थविर संघनायक निर्वाचित— १५ दिसम्बर को प्रातःकाल लखनऊ बुद्ध-विहार में भारतीय

बौद्ध-भिक्षु-संघ की स्थापना हुई। कुशीनगर के वयोवृद्ध श्री चन्द्रमणि महास्थविर भारतीय भिक्षु-संघ के संघनायक निर्वाचित हुए और सारनाथके भिक्षु शासनश्री महास्थविर उपसंघनायक। कार्यकारिणी समिति में भिक्षु धर्मरक्षित (वाराणसी), भिक्षु चन्द्रिमा (वाराणसी), भिक्षु धर्माधार- (कलकत्ता), भिक्षु वीरधर्मवर (नयी दिल्ली), भदन्त आनन्द कौसल्यायन (वर्धा) तथा भिक्षु धर्मालोक (नेपाल) रखे गये और कोषाध्यक्ष निर्वाचित हुए उत्तर प्रदेशीय नियोजन विभाग के संयुक्त मन्त्री तथा लखनऊ के पुराने बौद्ध उपासक श्री गंगाचरणलाल।

इस संघ का उद्देश्य भारत में बौद्धधर्म के प्रचार-कार्य को अनुशासित करना तथा योग्य व्यक्तियों को भिक्षु बनाना है।

बर्मा के प्रधान मन्त्री सारनाथ में—बर्मा के प्रधान मन्त्री ऊ नू ८ दिसम्बर को दून एक्सप्रेस से सपत्नीक वाराणसी आये। आपके साथ भारत-स्थित बर्मा राजदूत तथा २७ यात्री थे। स्टेशन पर महाबोधि सभा की ओर से स्वागत किया गया। भिक्षु संघरत्न और भिक्षु धर्मरक्षित के साथ लड़ाखी छात्र भी गए थे।

श्री नू सारनाथ में बुद्ध जयन्ती-आवास में ९ की शाम तक रहे। उन्होंने मूलगन्ध कुटी विहार और धम्मके स्तूप की प्रतिदिन पूजा की और वहाँ बैठकर ध्यान लगाया।

भारतीय महाबोधि सभा द्वारा भारत में हुई बौद्ध धर्म की नवजागृति बतलायी जाने पर श्री नू ने कहा कि मैं भारत के नव बौद्धों के लिए हिन्दी, गुजराती, मराठी, बँगला और तमिल—इन पाँच भारतीय भाषाओं में पुस्तकें प्रकाशित कर निःशुल्क वितरण करना चाहता हूँ। उनके योग्य पुस्तकों की सूची शीघ्र मेरे पास भेजी जाय।

सर्वाधिक विशाल अशोक स्तम्भ प्राप्त—नेपाल के वयोवृद्ध श्री धर्मालोक महास्थविर ने सारनाथ में बतलाया कि तौलिहवा बाजार के १ मील दक्षिण गोंटिहवा नामक ग्राम में खोदने के बाद एक नवीन अशोक स्तम्भ पाया गया है। यह स्तम्भ भूमि में नीचे धँसा हुआ था। उसके ऊपर एक किसान ने घर भी बना लिया था।

आगे उन्होंने बतलाया कि यह स्तम्भ अबतक प्राप्त सभी स्तम्भों से विशाल है। १० फुट नीचे तक खोदने पर इसका आधार मिला है। यह एक विशाल पत्थर में गड़ा हुआ है। इस पर चारों ओर लेख था, जो किसी द्वारा हथियार से खुरच कर नष्ट कर दिया गया है।

श्री धर्मालोक का अनुमान है कि जहाँ यह अशोक स्तम्भ है, वह स्थान ही बुद्ध का निवास-स्थान निग्रोधाराम है, जो कपिल वस्तु से कुछ दूरी पर था। आज कल तौलिहवा बाजार के पास तिलौरा कोट नामक स्थान को ही कपिलवस्तु माना जाता है, जो बस्ती जिले के शोहरत गढ़ रेलवे स्टेशन से १२ मील उत्तर नेपाल राज्य में वाण-गंगा नदी के किनारे स्थित है।

स्मरण रहे इस स्तम्भ को श्री धर्मालोक ने ही अपने व्यय से खुदवाया है।

६० स्तूप प्राप्त—इटालियन पुरातत्व दल ने पाकिस्तान सरकार के पुरातत्व विभाग की सहायता से भूतपूर्व स्वात राज्य के मिगोडा और लुद्दीग्राम नामक गाँवों में बौद्ध और गान्धार काल की कुछ दुर्लभ वस्तुएँ भूगर्भ से निकाली हैं। मिगोडा में ६० छोटे-छोटे स्तूप और प्राचीन सिक्कों से भरे बर्तन प्राप्त हुए हैं। इन सिक्कों से स्तूपों के निर्माण के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होने की आशा है। इनमें अधिकतर सिक्के ईस्वी पूर्व की द्वितीय शताब्दी के हैं। जो पटोलिना (द्वितीय शताब्दी का प्रारम्भ) और वासुदेव (प्रथम शताब्दी) के शासनकाल के हैं।

लार्ड पैथिक लारेंस सारनाथ में—१६ दिसम्बर को सायंकाल ४ बजे लार्ड पैथिक लारेंस सपत्नीक सारनाथ आये। आपने मूलगन्ध कुटी विहार, संग्रहालय आदि देखा।

महाबोधि सभा की ओर से मूलगन्ध-कुटी-विहार में आपका स्वागत किया गया। भिक्षु संवरत्न ने आपको

कुछ बौद्ध साहित्य भेंट किये। आपने सारनाथ के विकास की संगलकामना की और सारनाथ आने के प्रति अपनी प्रसन्नता प्रकट की।

श्रीमती अम्बेडकर सारनाथ में—स्वर्गीय डाक्टर भीमराव अम्बेडकर की पत्नी श्रीमती अम्बेडकर १८ दिसम्बर को दिन में सारनाथ आयीं। आप बौद्ध तीर्थों की यात्रा करते हुए यहाँ आयी थीं। आपने सारनाथ के सभी दर्शनीय स्थानों का निरीक्षण किया तथा मूलगन्ध कुटी विहार और बोधिवृक्ष की पूजा की। भगवान् बुद्ध की अस्थियों की वन्दना की और उनका दर्शन किया। डाक्टर अम्बेडकर के पुण्य के निमित्त सारनाथ में तीर्थयात्रा हेतु आये हुए लंका के ४० भिक्षुओं तथा अन्य स्थानीय सभी भिक्षुओं को भोजन कराने के लिए १०१) आपने दिये।

रात्रि में यह ज्ञात होने पर कि श्री चन्द्रमणि महास्थविर वाराणसी आये हुए हैं और आज ही कुशीनगर जा रहे हैं, भिक्षु धर्मरक्षित के साथ जाकर स्टेशन पर अपने गुरु के दर्शन किये।

आपकी इच्छा सारनाथ में रहकर बौद्धधर्म का अध्ययन करने की है। अभिधर्म पर एक ग्रन्थ लिखने का भी विचार है। आप सारनाथ में कुछ भूमि लेकर एक अम्बेडकर-भवन का निर्माण करना चाहती हैं और उसमें डाक्टर अम्बेडकर का एक स्तूप तथा मूर्ति बनवाना चाहती हैं। स्तूप में डाक्टर अम्बेडकर की अस्थियाँ रहेंगी।

आपने गत १४ अक्टूबर, १९५६ को डाक्टर अम्बेडकर के साथ ही नागपुर में श्री चन्द्रमणि महास्थविर से बौद्ध-दीक्षा ली थी। आपके हृदय में अपार पतिभक्ति तथा तथागत के प्रति श्रद्धा है।

आप मोटरकार से दिल्ली से आयी थीं और प्रातःकाल यहाँ से प्रयाग के लिए रवाना हो गयीं।

दार्जिलिंग में बौद्धदीक्षा—१४ दिसम्बर को दार्जिलिंग के 'बंगाल बौद्ध समिति भवन' में एक हिन्दू और एक ईसाई ने बौद्धदीक्षा ली। उनके नाम हैं श्री मोहनकुमार प्रधान और श्री विमलाकुमारी प्रधान।

समिति के आयोजन से की गई एक जनसभा में यह दीक्षा-संस्कार सम्पन्न हुआ, जिसका सभापतित्व डा० डी० भांजा ने किया। श्री भांजा ने भाषण करते हुए कहा कि

बौद्ध-जगत

२३३

पृथ्वी के धर्मों में बौद्धधर्म प्रधान रूप ले रहा है। बौद्धधर्म एक ऐसा धर्म है, जो कि किसी प्रकार का जाति-भेद नहीं मानता। प्रत्येक व्यक्ति को इसे अपनाना चाहिए। श्री कल्याण मित्र बरुआ के भाषणोपरान्त प्रधान मन्त्री श्री अमृत लाल बरुआ ने उपस्थित व्यक्तियों को धन्यवाद दिया।

आगरा में प्रथम अम्बेडकर स्मृति दिवस—
डा० भीमराव अम्बेडकर का प्रथम स्मृति दिवस ६ दिसम्बर को आगरा में बुद्ध विहार, चक्कीपाट में मनाया गया। प्रातः दस बजे से एक विशाल जुलूस प्रारम्भ हुआ, जो सारे नगर का चक्कर लगाकर सन्ध्या समय बुद्ध विहार पर सभा में परिणित हुआ। इस सभा के अध्यक्ष भदन्त आनन्द कौसल्यायन थे।

अध्यक्षपद से भाषण करते हुए उन्होंने कहा कि बीसवीं सदी की सबसे बड़ी घटना यह थी कि लाखों नर-नारियों ने एक महापुरुष के कहने पर सहर्ष धर्म-परिवर्तन करके बौद्धधर्म की दीक्षा ले ली। यह एक महान् चमत्कार था जो संसार के इतिहास में अनूठा स्थान रखेगा। केवल किसी के कहने मात्र से लाखों व्यक्ति सहर्ष अपना धर्म-परिवर्तन कर दें, ऐसा उदाहरण शायद ही संसार में कहीं मिल सके।

आगे आपने कहा कि आज से ढाई हजार वर्ष पहले चातुर्वर्णीय व्यवस्था के विरुद्ध भगवान् बुद्ध ने अहिंसक क्रान्ति का विगुल बजाया था और जब ढाई हजार वर्ष तक और कोई व्यक्ति ऐसा पैदा नहीं हुआ जो इस गन्दी वर्ग व्यवस्था के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ता। केवल डा० भीमराव अम्बेडकर ही ऐसे महापुरुष हुए जिन्होंने भगवान् बुद्ध के बाद चातुर्वर्णीय व्यवस्था के विरुद्ध क्रान्ति का झण्डा ऊँचा किया।

आपके भाषण के बाद दो प्रस्ताव सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुए जिनके द्वारा डा० साहब की जन्म-तिथि और स्मृति-दिवस तथा बुद्ध-जयन्ती की सार्वजनिक छुट्टी रखने की सरकार से माँग की गयी।

सभा में श्री किशनचन्द, श्री मधुकर आदि ने कविता-पाठ किये और 'समाज-सुधार-छात्र-परिषद्' तथा 'भारतीय नवयुवक समाज सेवक संघ' द्वारा क्रमशः श्री भगवान सिंह विकल और श्री प्रेमचन्द्र तैत्रिय ने मानपत्र भेंट किये।

सभा में लगभग दस हजार व्यक्ति उपस्थित थे, जो शान्ति पूर्वक डेढ़ घण्टे तक भाषणों को सुनते रहे।

अम्बेडकर कन्या-विद्यानिकेतन में—६ दिसम्बर को प्रातःकाल ८॥ बजे से अम्बेडकर कन्या विद्या निकेतन कटरा वजीर खाँ जमुना त्रिज आगरा की प्रबन्धकारिणी की ओर से बाबा साहब डा० भीमराव अम्बेडकर की प्रथम वर्षी महात्मा प्रेमदास की अध्यक्षता में मनाई गई। जिसमें सर्वप्रथम सभापति महोदय के आज्ञानुसार सभी उपस्थित

व्यक्तियों ने दो मिनट खड़े होकर बाबा साहब को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की, इसके बाद निकेतन की छात्राओं ने प्रार्थना-गायन किया और कार्यकारिणी के सदस्यों ने एवं विद्यार्थियों ने उनकी जीवनी पर प्रकाश डाला और उन्होंने अपने-अपने वक्तव्य में बताया कि बाबा साहब भारत की एक महान् विभूति थे। जिन्होंने मानव समाज के कल्याण के लिए अपना सर्वस्व निछावर कर दिया। उन्होंने अपने भाषण में यह भी कहा कि बहुत से लोग बाबा साहब के बारे में यह कहा करते हैं कि डा० अम्बेडकर अछूतों के ही नेता थे। ऐसा उनका कहना बिल्कुल



श्रीमती सावित्री ठाकुर, जिनका देहान्त ११ सितम्बर को दिल्ली में हो गया।

गलत है। वास्तव में देखा जाय तो बाबा साहब की सेवायें समस्त देशवासियों के हित की थीं। जिन्होंने भारत की पड़लित, अपमानित जनता के अभ्युत्थान एवं परित्राण के लिए जीवन भर संघर्ष किया और अन्तिम समय तक वे इसी प्रयास में रहे।

खड़गपुर में स्मृति दिवस—खड़गपुर में भारतीय बौद्ध महासभा के तत्वावधान में ६ दिसम्बर को रावण मैदान में डा० अम्बेडकर की पुण्यतिथि श्री हरिश्चन्द्र खेड़ले की अध्यक्षता में मनाई गयी, उसमें लगभग २०० नरनारियों ने भाग लिया था। श्री एस० एन० बरुआ के नेतृत्व में सब ने त्रिशरण और पंचशील का पाठ किया।

दो मिनट तक मौन रहकर डा० साहब को श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

कामठी में—बुद्ध विहार, सिद्धार्थनगर, कामठी में ६ दिसम्बर को प्रातः ७ बजे डा० अम्बेडकर स्मृति दिवस मनाया गया।

कामठी में बुद्ध विहार के निर्माणार्थ एक जमीन ली जा चुकी है। जनता उत्साहपूर्वक धर्मकार्य में योगदान कर रही है।

वर्धा में—६ दिसम्बर को वर्धा में 'नगर बौद्ध समिति' की ओर से अम्बेडकर स्मृति दिवस बड़ी सादगी और गम्भीरता से मनाया गया। नगर के बौद्ध मण्डली प्रथम अम्बेडकर चौक में इकट्ठी हुई, उसके बाद त्रिशरण का उच्चारण करते हुए हिन्दी नगर—बुद्ध विहार के भव्य मैदान में जमा हो गयी। वहाँ प्रथम डा० साहब को आद्रांजलि अर्पण की गयी और बाद में श्रामणेय सुमेध द्वारा त्रिशरण और पंचशील का ग्रहण कराया गया। इस कार्यक्रम में नगर की बौद्ध मण्डली प्रमुखता से उपस्थित थी।

आगरा में श्री देवप्रिय बलिसिंह का स्वागत—भारतीय महाबोधि सभा के महामंत्री श्री देवप्रिय जी का स्वागत आगरा के बुद्ध विहार में १७ दिसम्बर ५७ को, जब आप लखनऊ से आये थे, बड़े उत्साह के साथ हुआ। सायंकाल ६ बजे से उनका प्रवचन हुआ था। इनके साथ बर्मा की महिलायें भी थीं।

श्री देवप्रिय जी ने बतलाया कि आज मैं बड़ी प्रसन्नता प्रतीत कर रहा हूँ कि इस आगरा की ऐतिहासिक नगरी में बौद्ध भाइयों ने मेरा स्वागत किया है। इसके लिए मैं बड़ा आभारी हूँ यहाँ पर ढाई लाख लोगों ने दीक्षा ली है यह बड़े ही आनन्द की बात है। आगे आपने बौद्ध धर्म की सही शिक्षाओं को अपनाने और बाबा साहब अम्बेडकर के बताये सच्चे रास्ते पर चलने की अपील की। ऐसा करने से ही इस प्रदेश का और दुनिया का कल्याण होगा।

आपने उपाली की दीक्षा का दृष्टान्त देकर बतलाया कि-संसार में आज से २५०० वर्ष पूर्व सिर्फ भगवान् बुद्ध ने ही जाति-पाँति के विरुद्ध जन-आन्दोलन आरम्भ किया

था। और यहाँ पर बौद्ध धर्म था। यहाँ पर जातिभेद नहीं था, भारत, ने गौरवपूर्ण संस्कृति का प्रसार देश-विदेश में किया। किन्तु जबसे वहाँ बौद्ध धर्म नहीं रहा जाति-भेद फिर शुरू हुआ और देश टुकड़े-टुकड़े हो गया, पराधीन हो गया और पूर्णरूप से असंगल हुआ।

आपने बतलाया कि भगवान् बुद्ध ने यहाँ समता का प्रचार किया। इतिहास जानता है कि ब्राह्मणों ने ही यहाँ जाति-भेद शुरू किया है। सिन्धु में जब बौद्ध राजा था सभी को घोड़ेपर चढ़ने का अधिकार था किन्तु जब वहाँ पर ब्राह्मण राजा हुआ उसने यह अधिकार अनेक से छीन लिया। जिसका यह परिणाम हुआ कि थोड़े से अरबों ने पराधीन किया।

श्री देवप्रिय जी ने कहा कि फिर यहाँ पर बौद्ध धर्म आ रहा है। संसार को इस धर्म और संस्कृति से कितना लाभ हुआ है, इसीलिए आज हमारा राष्ट्रीय झण्डा, और देश का चिह्न सब बौद्ध संस्कृति की ही नकल है। अगर हम विदेशों में अपना सिर ऊँचा कर सकते हैं तो वह बौद्ध-धर्म के ही कारण।

अन्त में आपने सभी बौद्धों से आचरण शुद्ध, सफाई और शिक्षा की अपील की और कहा कि बगैर ऐसा किये हमारे बौद्ध होने से क्या लाभ होगा ?

श्री देवप्रियजी के बाद बर्मा की महिला डा० माकिनटिन एम. बी. बी. एस. ने बड़े आनन्द-विभोग भाव में अपने हृदय के उद्गार प्रदर्शित किये। आप बर्मा के प्रधान मन्त्री श्री ऊ नू के साथ भारत के बौद्ध तीर्थों की यात्रा के लिए आई थीं।

डा० टिन ने नारी समाज से कहा कि वे भी पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिला कर चलें। अपनी इस यात्रा में आगरा के इस स्वागत को जिन्दगी में न भूलनेवाली घटना कहा। आपने सभी से भगवान् बुद्ध की 'मेत्ता' की अपील की। 'मेत्ता' का महत्त्व कितना है इसकी बड़ी सुन्दर व्याख्या की।

दूसरे दिन श्री देवप्रिय जी ने अम्बेडकर कन्या पाठशाला, कटरा वजीर खाँ में प्रवचन किया और बौद्धों में शिक्षा पर बल देने को कहा।

उक्त दोनों अवसरों पर कई हजार बौद्धों ने प्रवचन

बौद्ध-जगत्

२३५

मुना । और उसी दिन की गाड़ी से आप कलकत्ता वापस हो गये ।

कन्या विद्या निकेतन का निरीक्षण—१८ दिसम्बर को मध्याह्न में महाबोधि सभा के प्रधान मन्त्री श्री देवप्रिय बलि सिंह अम्बेडकर कन्या विद्यानिकेतन, कटरा वजीर खाँ, जमुनावृज, आगरा में पधारे । सर्वप्रथम प्रबन्धकारिणी के के उपाध्यक्ष ने आपका पुष्पमालाओं से स्वागत किया । उन्होंने यहाँ के कार्य-भार की बड़ी सराहना की और अपने वक्तव्य में बताया कि आप लोगों ने बौद्ध-धर्म अपना लिया है इसकी मुझे बड़ी खुशी है क्योंकि बौद्ध-धर्म ही एक ऐसा धर्म है जिससे जाति-पाँति भेद-भाव शीघ्र ही नष्ट होकर सभी मनुष्य एक सूत्र में बँध सकते हैं । बाबा साहब ने जो मार्ग आप लोगों को बतलाया है यदि उस पर ध्यान देकर कार्य करें तो आपका शीघ्र ही कल्याण हो जायगा । उन्होंने कहा कि मुझसे जो सेवा बन पड़ेगी मैं इस पाठशाला की करूँगा । आपने छात्राओं की तरफ संकेत करते हुए कहा कि आप ध्यान से पढ़ें क्योंकि शिक्षा ही एक ऐसी चीज है जिससे आप भली प्रकार सभ्य तथा योग्य बन सकती हैं और समाज में समानता का स्थान पा सकती हैं ।

आगरा में बुद्धमूर्ति की स्थापना—२ जनवरी को आगरा में प्रातःकाल पंजाब मेल से महाबोधि सभा के महामंत्री श्री देवप्रिय बलिसिंह नेपाल की सौम्य बुद्धमूर्ति लेकर राजामण्डी स्टेशन पर आये । आगरा के बौद्धों ने हजारों की संख्या में स्टेशन पर ही एकत्रित होकर बुद्ध प्रतिमा का शानदार स्वागत किया । इसके पश्चात् एक विशाल जुलूस नगर के प्रमुख बाजारों से गुजरता हुआ बुद्ध विहार के मैदान में सभा के रूप में बदल गया । रास्ते में स्त्री-पुरुषों ने श्री देवप्रिय जी एवं सुन्दर बुद्धमूर्ति का पुष्पवर्षा करके स्वागत किया । जुलूस लगभग एक मील लम्बा था, जिसमें सभी बौद्ध मोमबत्ती और अगरबत्ती लेकर नगर से गुजरे थे । स्थान-स्थान पर स्थानीय बौद्धों ने बुद्ध-द्वार, देवप्रिय-द्वार और अम्बेडकर-द्वार सजा कर जुलूस में उत्साहवर्धन किया ।

बुद्ध विहार पर झण्डों, और बिजली की रोशनी का विशेष प्रबन्ध था । सायंकाल चार बजे से सभा शुरू हुई, जिसमें लगभग ५० हजार नरनारियों ने भाग

लिया । भारतीय बौद्ध महासभा आगरा की ओर से श्री देवप्रिय जी को इस मूर्तिदान और सहयोग के गठबंधन का अभिनन्दन पत्र श्री मधुकर ने पढ़ा । इसके बाद श्री देवप्रिय जी का ओजरवी भाषण प्रारम्भ हुआ ।

अपने भाषण में श्री देवप्रिय जी ने बतलाया कि बौद्ध धर्म अपनी प्राचीनता के साथ आज फिर भी नया है । इसमें वह तत्व हैं जो कि सभी युगों को प्रवाहित करने की विशेषता रखते हैं । हिन्दू धर्म में अद्वैत वर्ग के साथ कैसा वर्तव्य होता है : इसपर आपने बड़ा मनोवैज्ञानिक प्रकाश डाला ।

बौद्ध धर्म की समानता पर बोलते हुए आपने बतलाया कि भगवान् बुद्ध पहले ऐतिहासिक पुरुष थे जिन्होंने ऊँच नीच की दीवार को तोड़कर समानता का सिंहनाद फूँका था । आगरा का बौद्ध धर्म में क्या स्थान है इस पर बोलते हुए कहा कि भगवान् बुद्ध के श्रीचरण आगरा की भूमि पर पड़े थे । आगरा और मथुरा के आसपास ही भगवान् ने जमुना पार की थी, इसलिए आगरा का स्थान भी ऐतिहासिक दृष्टि से कम नहीं है ।

अन्त में श्री देवप्रिय जी ने आगरा के बौद्धों को संगठन में रहने की अपील की, और बतलाया कि महाबोधि सभा और भारतीय बौद्ध महासभा दोनों ही यहाँ के बौद्धों में प्रगतिशील संगठन की चेष्टा करेंगी ।

सभा के अन्त में श्रामणेर कौन्डिन्य और श्री देवप्रिय जी ने बुद्ध विहार में काँसे की बुद्ध मूर्ति को गाथाओं के उच्चारण के साथ प्रतिष्ठित किया ।

अनिच्छा वत सङ्घारा—अखिल नेपाली भिक्षु संघ के मन्त्री भिक्षु सुबोधानन्द ने इस दुःखद समाचार की सूचना दी है कि श्रामणेर चूलपन्थ का देहावसान १ दिसम्बर को काठमांडू में हो गया ! आप बलम्बू के रहने वाले थे और आपने पूज्य श्री चन्द्रमणि महास्थविर से १८ वर्ष पूर्व श्रामणेर-दीक्षा ली थी । आप नेपाल में रह कर बनेपा के चन्द्रकीर्ति विहार तथा बलम्बू के प्रणिधिपूर्ण विहार की देखरेख करते थे । आपने नेपाल में बुद्धशासन की अभिवृद्धि के लिए प्राणपन प्रयत्न किया था । आप एक सुवच, धर्मवृद्धिकामी और सुव्रती श्रमण थे ।

इधर कुछ दिनों से आप मलेरिया से पीड़ित थे। आपकी दवा काठमाण्डू के श्रीघ विहार में हो रही थी, किन्तु आपका रोग असाध्य ही होता गया और १ दिसम्बर रविवार को रात्रि में ३ बजे आपका शरीरान्त हो गया। आपका अन्त्येष्टि संस्कार आनन्द कुटी के पास किया गया।

आपके पुण्यार्थ नेपाल के बौद्धों ने १० दिसम्बर को अनेक पुण्यकर्म किये, जिनमें परित्राण पाठ, संघभोजन-दान, प्रदीप-पूजा आदि प्रधान रूप से उल्लेखनीय हैं। श्री प्रज्ञानन्द महास्थविर तथा भिक्षु सुबोधानन्द ने आपके जीवन-कार्य पर प्रकाश डाला। नेपाल के उपासकों ने बड़ी भक्ति-भावना से पुण्य-कार्यों का सम्पादन किया।

बौद्धधर्म की पुस्तकें बाहर अधिक—भारत में बौद्धधर्म की बहुत कम पुस्तकें हैं। चीन में इनकी संख्या अधिक है। चीन के यात्री श्री हुएनसांग भारत से २०० पुस्तकें चीन ले गये थे, वे पुस्तकें अब भारत में अप्राप्य हैं। इस बात की सूचना शान्ति-निकेतन के विश्वभारती

के जापानी प्राध्यापक श्री कासुगाई ने ७ जनवरी को प्रयाग की एक सभा में दी।

भारतीय बौद्धसंघ का वार्षिक अधिवेशन— ४ जनवरी को श्रावस्ती में भिक्षु उ महेन्द्र के सभापतित्व में भारतीय बौद्धसंघ का वार्षिक अधिवेशन हुआ, जिसमें ४ प्रस्ताव स्वीकृत हुए—(१) कपिलवस्तु का शोध खनन-कार्य हो, (२) भिक्षु धर्मरक्षित द्वारा अनूदित पालि-दर्शन-ग्रन्थ अभिधम्मसंग्रह का प्रकाशन, (३) नवबौद्धों की यथासाध्य सहायता, (४) निमन्त्रित होने पर संघ द्वारा मार्ग-व्यय आदि देकर दीक्षा-समारोहों के लिए अपनी ओर से भिक्षुओं तथा प्रतिनिधियों को भेजना। संघ के प्रधान मन्त्री भिक्षु उ चन्द्रिमा पूर्ववत् निर्वाचित हुए।

दीक्षा-समाचार—ज्ञात हुआ है कि इस मास के आरम्भ में सारनाथ में ५, जबलपुर में ३००, और खड़गपुर में १००० व्यक्तियों ने बौद्ध-दीक्षा ली।

रामतीर्थ ब्राह्मी तैल

(रजिस्टर्ड) स्पेशल नं० १ (औपधियुक्त)

इसके इस्तेमाल से दिमाग में वृद्धि होती है। इससे बाल धुँधराले तथा काले होकर चमकीले होते हैं। गंजापन दूर कर नये बालों की वृद्धि होती है। स्मरण शक्ति तथा नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। गाढ़ी निद्रा आती है। प्रत्येक ऋतु में स्त्री-पुरुषों तथा बालकों को अपूर्व लाभ मिलता है।



बड़ी शीशी के लिए मय डाकखर्च और पैकिंग ५॥॥ का मनिआर्डर भेजें और ३॥॥ का छोटी के लिए। वी० पी० नहीं भेजी जाती।

फोन—६२८९९

श्री रामतीर्थ योगाश्रम

उमेशधाम, विन्सेन्ट, स्ट्रीट नं० २

दादर (सेण्ट्रल रेलवे) बम्बई १४

टेलिग्राम-प्राणायाम, दादर, बम्बई

संयुक्त निकाय

दो भागों में

अनुवादक

भिक्षु जगदीश काश्यप

भिक्षु धर्मरक्षित

सुत्त-पिटक के तीसरे ग्रन्थ संयुक्त निकाय का हिन्दी अनुवाद दो भागों में प्रकाशित हो गया है। पृष्ठ संख्या क्रमशः ५२८ तथा ४४२। दोनों भागों का मूल्य क्रमशः ७) और ६) है।

बुद्धोपकृत बौद्धयोग का उत्कृष्ट ग्रन्थ

विशुद्धि मार्ग

भिक्षु धर्मरक्षित

द्वारा हिन्दी में अनूदित

‘विशुद्धि मार्ग’ पालि-साहित्य का एक अमूल्य ग्रन्थ-रत्न है। इसमें बौद्ध-दर्शन की विवेचनात्मक गवेषणा के साथ योगाभ्यास की प्रारम्भिक अवस्था से लेकर सिद्धि तक की सारी विधियाँ सुन्दर ढंग से समझाई गई हैं। इस ग्रन्थ में बौद्धधर्म का कोई भी ऐसा अंग नहीं है जो अद्वैता हो। एक प्रकार से इसे बौद्धधर्म का विश्वकोश कहा जा सकता है। यद्यपि विशुद्धिमार्ग प्रधानतः योग-ग्रन्थ है, तथापि बौद्धधर्म का जैसा सुन्दर निरूपण इसमें किया गया है, वैसा अन्य किसी भी ग्रन्थ में प्राप्त नहीं है। योगियों के लिए तो यह गुरु के समान निर्देश करने वाला महोपकारी ग्रन्थ है।

यह दो भागों में मुद्रित हो गया है। पहले भाग में समाधि निर्देश पर्यन्त ११ परिच्छेद हैं और दूसरे में शेष। पहला भाग ४३० पृष्ठों का है और दूसरा ३५०। दोनों के मूल्य क्रमशः १०) और ८) हैं। ग्रन्थ का आकार रायल है।

प्रातिस्थान :—

व्यवस्थापक, महाबोधि पुस्तक भण्डार,
सारनाथ, वाराणसी।

पालि व्याकरण

भिक्षु धर्मरक्षित
द्वारा लिखित

पालि सीखनेवालों के लिए परम उपयोगी पुस्तक। इससे सुन्दर और सरल पुस्तक आज तक कोई दूसरी उपलब्ध नहीं। हाईस्कूल से एम. ए. तक कोसों में स्वीकृत। मूल्य २॥

प्रातिस्थान—

व्यवस्थापक, महाबोधि पुस्तक-भण्डार,
सारनाथ, वाराणसी।

बौद्धधर्म ही मानवधर्म

स्वर्गीय बाबा साहेब डाक्टर भीमराव अम्बेडकर द्वारा लिखित तथा भिक्षु धर्मरक्षित द्वारा सम्पादित अद्भुत पुस्तक। सभी बौद्धों को इसे अपने पास रखना चाहिए। बाबा साहेब की अन्तिम इच्छा क्या थी? इसमें पढ़ें।

मूल्य १)

इसका मराठी संस्करण भी छप रहा है।

प्रातिस्थान—

व्यवस्थापक, ममता प्रकाशन, कबीरचौरा, वाराणसी

भारत सरकार से “रजिस्टर्ड”

सफेद दाग का शत्रु

इस रामबाण दवा से स्त्री, पुरुष, बालकों के शरीर पर के दाग ऐसे निकल जाते हैं कि वह कहाँ थे इसका पता नहीं लगता। हजारों ने अनुभव करके प्रशंसापत्र भेजे हैं। मूल्य ५) रु०। डा० व्यय १॥) रु०। अधिक विवरण मुफ्त मँगवाकर देखिये।

वैद्य के० आर० चोरकर (ध० दू०)

मु० पो० मंगरुलपीर, जि० अकोला (विदर्भ)

सफेद कोढ़ के दाग

यह ऐसे निकल जाते हैं कि वे कहाँ थे इसका पता भी नहीं लगता।

भगवान जी जैन पाचोरा (खानदेश) की पुत्री का कोढ़ अच्छा हो गया और आपने हमको ५१) रु० इनाम दिया। ऐसे कई इनाम मिले और कोढ़ के हजारों लोग अच्छे हो गये। मू० ६) रु० डा० ख० १५ आ०, विवरणपत्र मुफ्त मगावें। नक्कालों से सावधान रहें।

वैद्य वी० आर० चोरकर, आयुर्वेद भवन (ध०दू०)

मु० पो० मंगरुलपीर, जि० अकोला (विदर्भ)

हिन्दी में बौद्धधर्म की पुस्तकें

नागरी लिपि में पालि ग्रन्थ

सूचीपत्र के लिए = के टिकट के साथ लिखें।

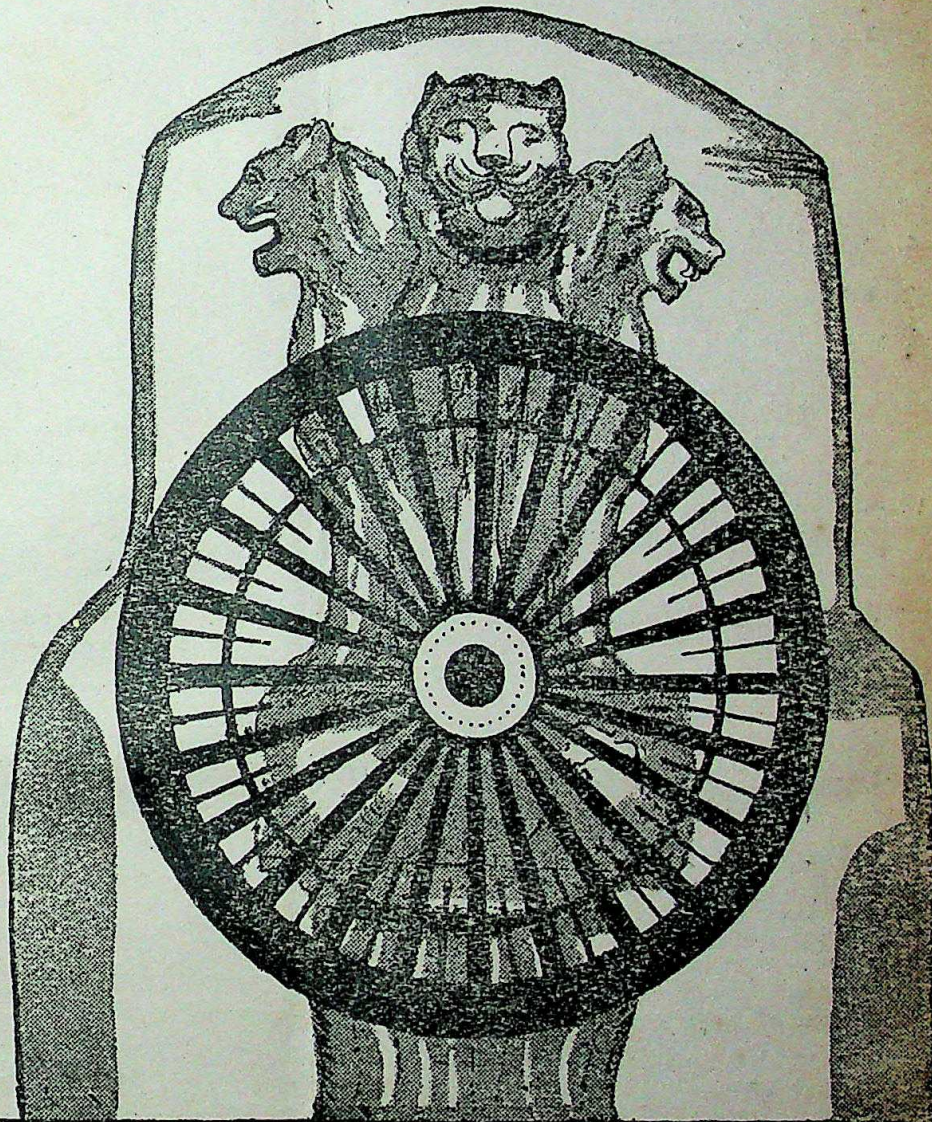
प्राप्ति स्थान :-

महानोधि पुस्तक भण्डार, सारनाथ, वाराणसी ।

प्रकाशक—भिक्षु एम० संघरत्न, महाबोधि सभा, सारनाथ, वाराणसी (बनारस)

मुद्रक—श्रीमत्प्रकाश कपूर, ८८, नमनगली, दिल्ली-११००५५, कबीर साहित्य संग्रहालय, कबीर साहित्य, प्रकाशनालय (प्रनारस) ५२२६४-१४

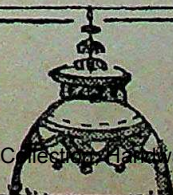
धर्मदूत



महाबोधि समा का मासिक मुख-पत्र

मार्च
वर्ष २२
अंक ११

एक अंक का १/-
वार्षिक ४/-



विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१. बुद्ध-वचनामृत—‘जो धर्म को देखता है वह मुझे देखता है’	२५९
२. बौद्ध धर्म और भारतीय संस्कृति—श्री उपेन्द्रनाथ राय	२६०
३. भगवान् बुद्ध का सन्देश—काका कालेलकर	२६४
४. जागरण-गान (कविता)—श्री केदारमान, ‘व्यथित’ नेपाल	२६७
५. धर्मान्तर नहीं भ्रमान्तर—श्री चन्द्र आश्वत्थायन	२६७
६. ब्रह्म-विहार—भिक्षु ऊ चन्दोभास	२७०
७. अमिताभ का वैराग्य (कविता)—श्री चन्द्रदत्त कौशिक	२७१
८. आन्ध्र में बौद्धधर्म—श्री वी० रामकृष्ण राव	२७२
९. हमारे शास्ता—भिक्षु अश्वघोष	२७३
१०. भगवान् बुद्ध के शील और विचार	२७६
११. सुरापान का त्याग—श्री प्रेमचन्द तैन्निय	२७९
१२. बौद्धदर्शन में जीवन का व्यावहारिक निरूपण—श्री शालिग्राम सिंह	२८०
१४. बौद्ध-जगत	२८३

‘धर्मदूत’ के नियम—

- १—‘धर्मदूत’ भारतीय महाबोधि सभा का हिन्दी मासिक मुखपत्र है। ‘धर्मदूत’ प्रति पूर्णिमा को प्रकाशित होता है।
- २—‘धर्मदूत’ के ग्राहक किसी भी मास से बनाये जा सकेंगे।
- ३—पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक-संख्या एवं पूरा पता लिखना चाहिये, ताकि पत्रिका के पहुँचने में गड़बड़ी न हो।
- ४—लेख, कविता, समालोचनार्थ पुस्तकें (दो प्रतियाँ) और बदले के पत्र सम्पादक के नाम तथा प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र और चन्दा व्यवस्थापक के नाम पर भेजना चाहिये।
- ५—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने या न करने, घटाने-बढ़ाने या संशोधन करने का अधिकार सम्पादक को है। बिना डाकखर्च भेजे अप्रकाशित कविता या लेख लौटाये न जा सकेंगे। जिस अङ्क में जिनका लेख या कविता छपेगी वह अङ्क उनके पास भेज दिया जायगा।
- ६—‘धर्मदूत’ में केवल बौद्धधर्म, कला, संस्कृति, साहित्य, पुरातत्व आदि सम्बन्धी लेख ही प्रकाशित किये जा सकेंगे।
- ७—किसी लेखक द्वारा प्रकटित मत के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।
- ८—‘धर्मदूत’ का वार्षिक मूल्य ४) और आजीवन ५०) है।

व्यवस्थापक

“धर्मदूत” सारनाथ, वाराणसी

धर्मदूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सार्न । देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्जे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवल परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ । महावग्ग, (विनय-पिटक)

‘भिक्षुओ ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिये, लोक पर दया करने के लिये, देव-ताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो । भिक्षुओ ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्था में कल्याणकारक धर्म का उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो ।’

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष २२

सारनाथ,

मार्च

बु० सं० २५०१

ई० सं० १९५८

अङ्क ११

बुद्ध-वचनमृत

‘जो धर्म को देखता है वह मुझे देखता है’

“भिक्षुओ ! धर्म-श्रवण के पाँच फल होते हैं । कौन से पाँच ? न सुने हुए को सुनता है, सुने हुए को ठीक करता है, सन्देह को मिटाता है, दृष्टिको सीधा करता है, उसका चित्त प्रसन्न होता है । मेरे कहे हुए धर्म को सत्कारपूर्वक न सुनने वाले, न पाठ करनेवाले, न देशना करने वाले सुन्दर सुगन्ध-रहित पुष्प के समान असफल होते हैं, किन्तु सत्कार-पूर्वक धर्म-श्रवण करनेवाले को महाफल प्राप्त होता है ।

“धर्म धर्म का आचरण करनेवाले व्यक्ति की रक्षा करता है, धर्मका पालन सुख लाता है, धर्म के पालन में यह गुण है कि धर्मचारी दुर्गति को नहीं प्राप्त होता । धर्म धर्मचारी की वर्षाकाल में बहुत बड़े छाते की भाँति रक्षा करता है ।

“वक्कलि ! जो धर्मको देखता है, वह मुझे देखता है और जो मुझे देखता है वह धर्म को देखता है । धर्म को देखने वाला मुझे देखता है और मुझे देखनेवाला धर्म को देखता है ।

“भिक्षुओ ! मैं बड़े की भाँति पार जाने के लिए तुम्हें धर्म का उपदेश देता हूँ, पकड़ कर रखने के लिए नहीं ।”

—मज्झिम निकाय १, ४, ८

बौद्धधर्म और भारतीय संस्कृति

श्री उपेन्द्रनाथ राय

संसार के समूचे इतिहास में दो-तीन ऐसे धार्मिक अथवा सामाजिक आन्दोलन मिलते हैं, जिन्होंने सम्पूर्ण विश्व को मैत्रीपूर्ण एकता के सूत्र में बाँधा हो और तमाम बाहरी भेदभावों से ऊपर उठकर जीवन के उच्चतर मूल्यों की खोज के लिए उश्रुक किया हो। बौद्धमत का इनमें सर्वप्रथम स्थान है। भारत, सिंहल, कम्बोडिया, नेपाल, भूटान आदि देशों को एशिया और योरप के सुदूर देशों के सम्पर्क में रखने में यह आज भी एक बड़ा योग दे रहा है, अतीत में समस्त सभ्य संसार की प्रगति का श्रेय तो मुख्यतः इसे है ही। नाना देशों में नाना जलवायु में रहने वाली जातियों के बीच इस धर्म ने स्थानीय परम्पराओं के साथ मिलकर जो रूप धारण कर लिये हैं उनके कारण बौद्धधर्म वस्तुतः एक अन्तर्राष्ट्रीय धर्म ही कहा जा सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि बौद्ध संस्कृति अनेक जातियों के सम्मिलित कर्तृत्व एवं सत्प्रयास का विकसित रूप है और वह सही अर्थों में मानव धर्म कहा जा सकता है। किन्तु इस अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप के होते हुए भी यह भूला नहीं जा

सकता है कि सम्मासम्बुद्ध की जन्मभूमि भारत ही है और बौद्धधर्म मूलतः भारतीय चिन्तन की ही उपलब्धि है, यह बिल्कुल और बात है कि अन्य श्रेष्ठ उपलब्धियों की भाँति उनमें से यह सर्वोच्च भी समूचे संसार के लिये है।



जापान की एक बुद्धमूर्ति

भावनाओं का विरोध करने पर झट अभारतीय घोषित कर देते हैं। इस अभारतीयकरण की हास्यास्पद प्रक्रिया का ही परिणाम है कि जिस भारत को तथागत की जन्मभूमि के रूप में चीन, जापान आदि देशों के बौद्ध श्रद्धा की दृष्टि से देखते रहे हैं।

दुर्भाग्यवश इस महत्त्वपूर्ण तथ्य को भुला देने की चेष्टा कुछ ना-समझ लोग कर रहे हैं। जब पाश्चात्य 'पण्डितों' ने बौद्धधर्म को अनार्य मस्तिष्क की उपज कहा अथवा क्षत्रियों द्वारा ब्राह्मणों की प्रभुता को चुनौती देने के लिए निकाला गया मतवाद मात्र बताया तो बौद्धधर्म की महत्ता को इस प्रकार घटाकर दिखाने की उनकी कुचेष्टा का अर्थ समझना सरल था। किन्तु आज जब कुछ उसी ढंग की बातें हमारे देश के कुछ शिक्षित जन करते हैं तो आश्चर्य होता है। इनकी प्रवृत्ति यह है कि जातिवाद अथवा नारीनिन्दा की संकीर्ण

बौद्धधर्म और भारतीय संस्कृति

२६१

बौद्धों को भारतीय संस्कृति के विरोधीके रूप में देखने वाले महानुभाव न तो 'संस्कृति' शब्द के अर्थ से परिचित हैं और न 'भारतीयता' से, अन्यथा वे ऐसा कहने का साहस न करते। उनकी दृष्टि में कुछ-एक पोथियों में जितना लिखा है, यों कहिये कि जितना अपने लिये सुविधाजनक है वही 'भारतीय' है और जो कुछ परम्परा से चला रहा है संस्कृति की सीमा उसी तक है। लेकिन इस संकुचित दृष्टिवाले इतिहास को भूल जाते हैं जो यह बताता है कि परिवर्तन संसार का नियम है और इस परिवर्तन के साथ-साथ भारतीय समाज में अनेक ऐसे दोष आ गये हैं जिनका दूर होना नैतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिए अपरिहार्य है। भारतीयता उसी को कहा जा सकता है जो भारतीय जीवन में उच्चतर नैतिक चेतना एवं सामञ्जस्य ला सके। जहाँ तक संस्कृति का प्रश्न है, वह भी वैधी बधाई चीज नहीं। संस्कृति का उद्देश्य जातीय जीवन की महत्वपूर्ण उपलब्धि की रक्षा करना और उन कुसंस्कारों को दूर करना ही है जो समाज की चेतना को आच्छन्न करते और अविद्या को बढ़ावा देते हैं। भारतीय संस्कृति जैसी किसी चीज की वांछनीयता करते और अविद्या को बढ़ावा देते हैं। भारतीय संस्कृति जैसी किसी चीज की वांछनीयता हम इन्हीं शतों के साथ स्वीकार कर सकते हैं और तभी उसकी कसौटी पर बौद्ध-धर्म को कसने का प्रश्न उठता है।

इस सम्बन्ध में कुछ और कहने के पूर्व इतना और स्मरण रखना चाहिये कि पश्चिम के कुछ इतिहासकारोंके इस अटकल का कोई आधार नहीं कि भगवान् बुद्ध का आविर्भाव जिस कुल में हुआ, वह रक्त में उस जाति से भिन्न था जिसने वेदों एवं उपनिषदों की विचारधाराओं को जन्म दिया और जो सम्यक्सम्बुद्ध के आविर्भाव के पूर्व वर्ण-व्यवस्था को स्वीकार कर चुकी थी। इस विषय में बौद्ध एवं बौद्धेतर ग्रन्थ पूर्णतः सहमत हैं कि शाक्य सूर्यवंश से ही उद्भूत थे और उसी क्षत्रिय कुल से सम्बन्धित हैं जिसने रघु, अज, दिलीप और राम को जन्म दिया था। जाति को भगवान् बुद्ध ने कोई महत्व नहीं दिया, केवल प्रसंगवश ही बौद्ध ग्रन्थों में शाक्यों का इतिवृत्त प्राप्त होता है। एक उच्चकुल में उत्पन्न होकर भी

कुलीनता के दम्भ पर उन्होंने अम्बट्ट सुत्त, वसिट्ट सुत्त एवं अन्य स्थलों पर जो आघात किया है उसको क्षोभ-मूलक प्रतिक्रिया मानना इसलिए असंगत सिद्ध होता है। भगवान् बुद्ध के लिए वह समस्त सम्मान सुलभ था जो जन्म वर्णव्यवस्था पर आधारित समाज किसी भी राजकुलोत्पन्न व्यक्ति को देता था किन्तु श्रेत्रस् का ही ध्यान कर उन्होंने उसे ठुकरा दिया।

इसे समझ लेने के बाद यह जानना मुश्किल नहीं कि ब्राह्मणों की प्रधानता का प्रत्याख्यान वह क्यों करते हैं। जन्म से ही किसी को अच्छा या बुरा घोषित कर देना और उसके नैतिक जीवन को संकुचित कर देना धर्म छोड़कर चाहे जो कहा जा सकता है। अतः मानवमात्र के हित सुख की कामना रखनेवाले तथागत के लिए उसका खण्डन करना स्वाभाविक ही नहीं अनिवार्य कहा जायगा। इस प्रसंग में ध्यान रखने योग्य है कि उनकी आलोचना आलोचना के लिए ही नहीं है। वासिट्ट-सुत्त में ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को अस्वीकार करते हुए उन्होंने इस पर जोर दिया है कि शील एवं प्रज्ञा द्वारा प्रत्येक व्यक्ति श्रेष्ठत्व पा सकता है जिस प्रकार जल से स्नान करके हर व्यक्ति अपने शरीर को शुद्ध कर सकता है। यही बात सोणदण्ड सुत्त में भी है जहाँ कि हम सोणदण्ड ब्राह्मण को अन्ततः भगवान् बुद्ध का समर्थन करते हुए पाते हैं। अम्बट्ट-सुत्त और सुनक सत्त की भाषा बहुत सशक्त है और जातिवाद का खण्डन बहुत प्रभावशाली ढंग से उनमें किया गया है। वहाँ भी हम यही देखते हैं कि उनका ध्येय खण्डनमात्र नहीं है, अपने समय के ब्राह्मणों के दम्भपूर्ण आचरण एवं जातिवाद का खण्डन करते समय वे पिछली पीढ़ी पर अपनी श्रद्धा बनाये रखते हैं। इनकी आलोचना का सार प्रायः यही है कि पुराने ब्राह्मणों के आचरणों को भुलाकर मनमाना चलनेवाले ब्राह्मणों का श्रेष्ठता का दावा ठीक नहीं है। उदाहरणार्थ, अम्बट्ट सुत्त के निम्न अंश को लिया जा सकता है—

“तो क्या अम्बट्ट! तूने वृद्ध महलक ब्राह्मणों आचार्यों-प्राचार्यों को यह कहते सुना है कि जो वे ब्राह्मणों के पूर्वज ऋषि० थे; क्या वे ऐसे सुस्नात, सुविलसित अंगराम लगाये; केश-मोछ सँवारे, मणिकुण्डल आभरण पहने, स्वच्छवस्त्र-

धारी पाँच कामगुणों से लिस, युक्त, घिरे रहते थे, जैसे कि आचार्य सहित तू है ?” “नहीं हे गौतम !”

“ऐसे क्या वह शालि का भात, शुद्ध मांस का सेवन, कालिमा रहित सूप, अनेक प्रकार की तरकारी खाते थे, जैसे कि आज आचार्य-सहित तू ?” “नहीं हे गौतम !”

“ऐसे क्या वह शालि का भात, शुद्ध मांस का सेवन, कालिमारहित सूप अनेक प्रकार की तरकारी खाते थे, जैसे कि आचार्य सहित तू है ?” “नहीं हे गौतम !”

“ऐसे क्या वह (साड़ी-) वेष्टित कमनीय गात्रवांली स्त्रियों के साथ रमते थे, जैसे कि आचार्य सहित तू ?” “नहीं हे गौतम !”

“इस प्रकार अम्बष्ट ! न आचार्य-सहित तू ऋषि है, न ऋषित्व के मार्ग पर आरुढ़ ।...”

सुनख सुक्त में भगवान् कहते हैं—“भिक्षुओं ! यह पाँच पुराण ब्राह्मण धर्म इस समय कुत्तों में दिखाई देते हैं । कौन से पाँच ?...भिक्षुओ ! इस समय ब्राह्मण ब्राह्मणी के पास भी जाते हैं ; अ-ब्राह्मणी के पास भी । (किन्तु) भिक्षुओ ! कुत्ते कुतियों के पास ही जाते हैं ; अ-कुतियों के पास नहीं ।...पहले भिक्षुओ ! ब्राह्मण ऋतुमती ब्राह्मणी के पास ही जाते थे, अ-ऋतुमती के पास नहीं । आज-कल...अ-ऋतुमती के पास भी...। पहले भिक्षुओ ! ब्राह्मण ब्राह्मणी को न खरीदते थे, न बेचते थे, परस्पर प्रेम के साथ ही सहवास करते थे आजकल ब्राह्मण ब्राह्मणी को खरीदते भी हैं, बेचते भी हैं, परस्पर प्रेम के साथ भी...अप्रेम के साथ भी...। पहले...ब्राह्मण, सन्निधि का, धान्य का, चाँदी सोने का संग्रह नहीं करते थे । इस समय संग्रह करते हैं ।...पहले भिक्षुओ ! ब्राह्मण सायंकाल के भोजन के लिए सायं, प्रातःकाल के भोजन के लिए प्रातः खोज करते थे । इस समय भिक्षुओ ! कुत्ते संध्या को संध्या के भोजन के लिए खोज करते हैं और प्रातः प्रातः के लिए ।...यह पाँच पुराण ब्राह्मण धर्म इस समय कुत्तों में दिखाई देते हैं ।”

इस उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है भगवान् इस नैतिक पतन को कितनी चिन्ता की दृष्टि से देखते थे । नैतिक दृष्टि से खोखले लोगों की महत्ता को स्वीकार करेगा ही कौन ? दूसरी ओर विश्वामित्र, वशिष्ठ, जामदग्न्य आदि ऋषियों

का नाम सर्वत्र आदर के साथ ही लिया गया है । जातिवाद के विरोध में अम्बष्ट-सुक्त में बुद्ध ने ब्रह्मा सनत्कुमार की इस आशय की गाथा उद्धृत की है जो विद्या और आचरण युक्त है, वह देव-मनुष्यों में श्रेष्ठ है । तथागत के इस मत का समर्थन हम महाभारत में युधिष्ठिर और विदुर को भी करते पाते हैं । युधिष्ठिर नहुषोपाख्यान में कहते हैं—

जातिरत्र महासर्प, मनुष्यत्वे महामते ।
संकरत्वात्सर्ववर्णानां दुष्परीक्ष्येति मे मतिः
सर्वे सर्वापत्यानि चनयन्ति सदानयः ।
तस्माच्छीलं प्रधानेष्टं विदुर्थं तत्त्वदर्शिनः ॥

और विदुर और भी जोर देकर कहते हैं—

न कुलं वृत्तहीनस्य प्रमाणायति मे मतिः ।
अन्तेष्वपि हि जातानाम् वृत्तरेव विशिष्यते ॥

महाभारत के इन अंशों का समय जो भी हो, इससे इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि आसवाक्य का अनुसरण करनेवालों को भी जातिवाद की निस्सारता स्वीकार करनी पड़ी है । इस प्रकार यह मानने में किसी भी विचारशील व्यक्ति को आपत्ति न होगी कि बुद्ध ने जातिवाद की संकीर्णता से मुक्त करके भारतीय संस्कृति के उन तत्वों को बल प्रदान किया जो कि किसी भी जाति के लिए नैतिक उत्कर्ष के कारण होते हैं ।

वैदिक युग के सीधे-सादे विश्वासों ने बुद्ध के समय में कितना विकृत रूप धारण कर लिया था यह उस समय में पनपनेवाले नाना मतों पर दृष्टि डालने से स्पष्ट हो जाता है । विकास-क्रम ने समाज में जो जटिलता ला दी थी, और नाना वर्गों के बीच स्वार्थ का जो संघर्ष चल रहा था उस युग के चिन्तन पर भी उसका प्रभाव पड़ने लगा था । जिह्वालोलुपता और स्वार्थनिष्ठा ने अन्धविश्वासों के साथ मिलकर एक ओर तो यज्ञ-यागादि के जटिल विधानों, विविध आडम्बरपूर्ण अनुष्ठानों एवं पशुबलि के हिंसक कार्यों को धर्म की संज्ञा प्रदान कर दी थी और दूसरी ओर इसकी प्रतिक्रिया में अतीत से पूर्णतः सम्बन्ध-विच्छेद का प्रतिपादन करनेवाली, अपने सांस्कृतिक स्वत्व की उपेक्षा करनेवाली नेतिवादी विचार धाराएँ प्रगट हो रही थीं । एक ओर ऐश्वर्य एवं विलासिता में डूबा हुआ अभिजात

बौद्धधर्म और भारतीय संस्कृति

२६३

वर्ग अपने कृताकृत को ईश्वरीय इच्छा और पूर्व-सुकृतों की दुहाई देकर पृष्ठ करने में लगा हुआ था दूसरी ओर उनके दावे को अस्वीकार करते हुए, उनके “जन्मसिद्ध” महत्त्व को ठुकराते हुए नाना प्रकार के हेतुवादी ईश्वर और आत्मा के साथ-साथ समूचे कर्म सिद्धान्त का ही प्रत्याख्यान कर रहे थे। यह स्थिति सामाजिक चिन्तन में असन्तुलन और असामञ्जस्य की द्योतक थी और इसका परिणाम समाज की नैतिक भावना के लिए अहितकर ही सिद्ध होता। सामञ्ज-फल सुत्त और ब्रह्मजाल सुत्त का अध्येता इसे लक्ष्य किये बिना नहीं रहेगा कि इस दुरवस्था का बुद्ध ने कर्मसिद्धान्त की सम्यक् व्याख्या करके अन्त कर दिया और समाज में नैतिकता को सुप्रतिष्ठित किया। आश्चर्य ही क्या कि सम्पूर्ण भारतीय समाज उन्हें अपनी श्रद्धा अर्पित करे और अबौद्ध भी उन्हें विष्णु का अवतार बताते हुए उनके उपदेशों की व्याख्या अपनी रुढ़ भावनाओं के अनुकूल करने का प्रयास करें ?

बुद्ध यज्ञ-यागादि कर्मों को कोई विशेष महत्त्व नहीं देते थे बल्कि पशु बलियुक्त यज्ञों के विरोधी थे। कूटदन्त सुत्त में उन्होंने सोलह परिष्कारों वाली त्रिविध यज्ञ सम्पदा का वर्णन किया है जो राजा महाविजित ने अपने ब्राह्मण पुरोहित की सम्मति से किया था। उसके विषय में वे कूटदन्त से कहते हैं—“ब्राह्मण ! उस यज्ञ में गायें नहीं मारी गईं, बकरे-भेड़ें नहीं मारे गये, मुर्गे-सुअर नहीं मारे गये, न नाना प्रकार के प्राणी मारे गये। न परहिंसा के लिए वृक्ष काटे गये। जो भी उसके दास, प्रेम्ब, कर्मकर थे, उन्होंने भी दण्डतर्जित, भय-तर्जित हो, अश्रुमुख, रोते हुए सेवा नहीं की। जिन्होंने चाहा उन्होंने किया, जिन्होंने नहीं चाहा उन्होंने नहीं किया। जो चाहा उसे किया, जो नहीं चाहा उसे नहीं किया। घी, तेल, मक्खन, दही, मधु, गुड़ से ही वह यज्ञ समाप्ति को प्राप्त हुआ।” ऐसा हिंसा-विहीन यज्ञ जो पूर्व-काल में होता था, बुद्ध की दृष्टि में बुरा नहीं था बल्कि अपेक्षाकृत श्लाघ्य ही था। किन्तु कूटदन्त को भगवान् बताते हैं कि ऐसा यज्ञ, ऐसा अनुष्ठान अधिक सामग्री और कम फल वाला है। कुलो में शीलवान् प्रजजितों के लिये दिया जाने वाला नित्यदान इसकी अपेक्षा अल्प-सामग्री

अल्प-समारम्भ वाला और महा फलदायी है। चारों दिशाओं में बुद्ध विहारों को बनवाना इससे भी बढ़कर है। बुद्ध, धर्म और संघ की शरण जाना उससे भी बढ़कर और अष्टाङ्ग-पथ पर चलते हुए क्रमशः निर्वाण प्राप्त करना सबसे बढ़कर है। इस प्रकार सदाचार और सधर्म को अनुष्ठानिक कृत्रिमता से ऊपर रखकर बुद्ध भारतीय संस्कृति के लिए क्या कर गये हैं, इसे समझा ही जा सकता है।

हिंसात्मक यज्ञों के प्रसंग में वेदों और ऋषियों की निन्दा करने की प्रवृत्ति उस युग में दिखाई पड़ने लगी थी। नास्तिक मांसभक्षण और पशुबलि का विधान करने वाले ऋषियों को राक्षस कहते थे और वेदों की घृणा की दृष्टि से देखते थे। बुद्ध के सामने किसी की निन्दा करने या आँख मूँदकर किसी की बात मान लेने का प्रश्न ही नहीं था। हिंसा और पशुयज्ञों का विरोध करते हुए भी वे अपने पूर्वजों के प्रति अश्रद्धा की बात ठीक नहीं समझते थे। इसीलिये वे पुराने ब्राह्मणों के आचरण की ‘ब्राह्मण-धर्मिय सुत्त’ में प्रशंसा ही करते पाये जाते हैं। वेदों के हिंसामूलक मंत्रों को वे परवर्ती लोभपरायण आचरणभ्रष्ट ब्राह्मणों की रचना मानते हैं। वेदों का अर्थ तरह तरह से किया जाता है और उसके कोई भी दो भाष्यकार एक मत नहीं हो पाते। वस्तुतः वैदिक युग में होता क्या था, इस प्रश्न पर भी इतिहासकारों में मतभेद हो सकता है किन्तु बुद्ध के उपर्युक्त मन्त्रों से पूर्वजों के प्रति उनकी सद्भावना तो सिद्ध ही हो जाती है।

भारतीय संस्कृति का सर्वाधिक मान्य तत्त्व है समस्त दिशाओं को धर्म के साक्षी रूप में देखना और माता-पिता आदि पञ्च देवों की उपासना। इसका जितना सुन्दर विवेचन सिंगाल-सुत्त में किया गया है। तबके ही उठकर नहा-धोकर भींगे वस्त्र, भींगे केश दिशाओं को नमस्कार कतने वाले सिंगाल से बुद्ध कहते हैं—“गृहपतिपुत्र ! आर्य-धर्म में छः दिशाओं इस प्रकार नमस्कार नहीं किया जाता।... जब गृहपतिपुत्र ! आर्य-श्रावक के चार कर्म-क्लेश दूर हो गये रहते हैं ; चार स्थानों से वह पाप-कर्म नहीं करता ; वह छः अपायमुखों का सेवन नहीं करता ;— वह इस प्रकार चौदह पापों से दूर हो, छः दिशाओं को आच्छादित कर दोनों लोकों के विजय के लिए लगता है ;

तो उसका यह लोक भी सुसेवित होता है और परलोक भी ।... गृहपतिपुत्र ! ये छः दिशायें जाननी चाहिये— (१) माता-पिता को पूर्व दिशा... (२) आचार्यों को दक्षिण दिशा... (३) पुत्र-स्त्री को पश्चिम दिशा... (४) मित्र-अमात्याओं को उत्तर दिशा... (५) दास कर्मकर को नीचे की दिशा... (६) श्रमण-ब्राह्मणों को ऊपर की दिशा... ।” ध्यान देने की बात यहाँ यह है कि यहाँ स्त्री को भी गृहस्थ के लिये सुसेव्य बतलाया गया है जो मध्य युग के ‘सकल ताड़ना के अधिकारी’ जैसे विचारों के प्रतिकूल और आर्य-संस्कृति के ‘यन्त्र नार्यस्तु पूज्यते’ वाले आदर्श के अनुकूल ही है ।

महापरिनिब्बान सुत्त में तथागत ने वज्रियों के विषय में कहा है कि जब तक बज्जी सन्निपात-बहुल होंगे, एक-

मत रहेंगे, अप्रज्ञस को प्रज्ञस नहीं करेंगे और न प्रज्ञस का उच्छेद, वृद्धों का समुचित सम्मान करेंगे, कुल-स्त्रियों और कुमारियों के प्रति अभद्र न बनेंगे, चैत्र्यों का पूजन करेंगे और उनके लिये पहिले किये गये दान-बलि को लुप्त नहीं करेंगे तथा अहितों की रक्षा करेंगे तब तक उनकी वृद्धि ही होगी, परिहानि नहीं । इन सात अपरिहाणीय धर्मों पर ध्यान देने से बुद्ध का सामाजिक और सांस्कृतिक आदर्श बहुत स्पष्ट हो जाता है । किसी भी समाज के सांस्कृतिक सत्त्व की सम्यक् रक्षा और समुचित विकास के लिये इन सात अपरिहाणीय धर्मों से बढ़कर दूसरा मार्ग नहीं है और यह स्वाभाविक ही है भारतीय संस्कृति के अनन्य प्रतिनिधि बुद्ध अपने चिरस्मरणीय उपदेश में इन पर इतना बल दे गये हैं ।

भगवान् बुद्ध का सन्देश

श्री काका कालेलकर

- भगवान् बुद्ध का सन्देश सबको सुनाने के लिए एक बड़े संघ की स्थापना हुई । हजारों-लाखों भिक्षु उस संघ दाखिल हुए । उनके रहने के लिए एक बड़े प्रदेश में इतने विहार बनाये गए कि उस प्रदेश का नाम ही बिहार हो गया । सारिपुत्त और मोगल्लान जैसे धर्म पुरुषों ने सिंह नाद करके बुद्ध वाणी का प्रचार किया । एक से बढ़ कर एक पवित्र स्थल भिक्षु धर्माचरण द्वारा समाज का कल्याण करते गए ।

तो भी सम्राट् अशोक ने जिस तरह बुद्ध का सन्देश चारो दिशाओं में फैलाया, उसने जिस श्रद्धा से अपनी सारी साम्राज्य-शक्ति अपने संकल्प के पीछे लगाई, उसके आधार पर बुद्ध का सन्देशा उसके नाम से पहचाना जाने लगा । जो मारे उसकी तलवार, जो सफलता पूर्वक चलायें उसका कारोबार और प्राण-पण से जो-जो कुछ बताये उसका संदेशा—यह है सृष्टि का नियम । आज भी हम देखते हैं कि गान्धी जी का सन्देश के एक हिस्से को आज भी दुनिया नेहरू के पंचशील के तौर पर पहचानती है ।—

आज जब दुनिया के बड़े-बड़े राष्ट्र धन सम्पत्ति और राज्य सत्ता की तिलोत्तमा को अपने वश में करने के लिए सन्द-उपसुन्द भाइयों के जैसे-जैसे आपस में लड़ रहे हैं, तब मानवता के उपासकों को बुद्ध भगवान् का ढाई हजार वर्ष पहले का कल्याणकारी सन्देश याद आ जाये, यह विल्कुल स्वाभाविक है ।

और अहिंसा के रास्ते स्वराज्य पाने के बाद जो राज्य अंग्रेजी सल्तनत के साथ दोस्ताना संबन्ध बाँध सका, उसी राष्ट्र को प्रान्तीय पुनर्रचना के कारण आपस में लड़ते और द्वेष-ईर्ष्या लाते देख कर भगवान् बुद्ध का स्मरण होना स्वाभाविक है ।

बुद्ध भगवान् के परिनिर्वाण को ढाई हजार वर्ष पूरे हो रहे हैं । ऐसे ऐतिहासिक सांस्कृतिक, और अध्यात्मिक महत्त्व के प्रसंग पर एशिया के ही नहीं किन्तु सारी दुनिया के बौद्ध लोग जब श्रद्धा-भक्ति से भारत की यात्रा करने आये हैं तब उन्होंने स्वयं ही देखा है कि बुद्ध भगवान् का संदेशा कैसे जी रहा है ।

बुद्ध भगवान् के जीवन का एक प्रसंग यहाँ याद आये बिना नहीं रह सकता ।

भगवान् बुद्धका सन्देश

२६५

रोहिणी नदी के इस पार और उस पार शाक्य और कोलीयवंशों के लोग रहते थे। एक ही नदी का पानी पीनेवाले लोग एक माता का दूध पीने वाले भाइयों के जैसे होते हैं, तो भी उनमें पानी के लिए झगड़ा हो ही जाता है। नदी का स्रोत जब क्षीण होता है, तब इस पार के लोग नदी के पार में नहर खोदकर पानी इस पार लाने की कोशिश करते हैं। उस पार के लोग को यह पसन्द नहीं आता। वे पानी को उस पार ले जाने की कोशिश करते हैं। नदी के किनारे को 'कूल' कहते हैं। इस कूल के लोगों का हित समान होता है। वे परस्पर अनुकूल होते हैं उस पार के सामने के कूल के लोग प्रतिकूल कहे जाते हैं। नदी पुत्रों का अनुकूल-प्रतिकूल भेदी होने से झगड़ा शुरू होता है।

शाक्य और कोलिय एक दूसरे के प्रतिकूल होने से दोनों

में विवाद शुरू हुआ। दोनों का निश्चय हुआ कि युद्ध के बिना निपटारा होने का नहीं। संग्राम की तैयारी हुई। बुद्ध भगवान् को जब पता चला, तब जल्दी-जल्दी जाकर वे वहाँ पहुँच गए और कारण पूछा। दोनों तरफ के बीरों को इकट्ठा कर उन्होंने एक ही सवाल पूछा—'नदी के पानी की कीमत अधिक है या भाइयों के खून की कीमत अधिक है? नदी के पानी के लिए भाइयों का खून बहाना

कहाँ की बुद्धिमानी है?" शाक्य और कोलिय मान गए और युद्ध टल गया। (कितना अच्छा जमाना था वह कि बुद्ध भगवान् के एक प्रश्न से दोनों पक्ष समझ गए और संभल गए।)

हमारे जमाने में यूरोप के दो विश्वव्यापी युद्धों के

अन्त में मानव जाति को जो अनुभव हुआ वही बुद्ध भगवान् ने ढाई हजार वर्ष पहले एक गाथा में ग्रंथित किया था।

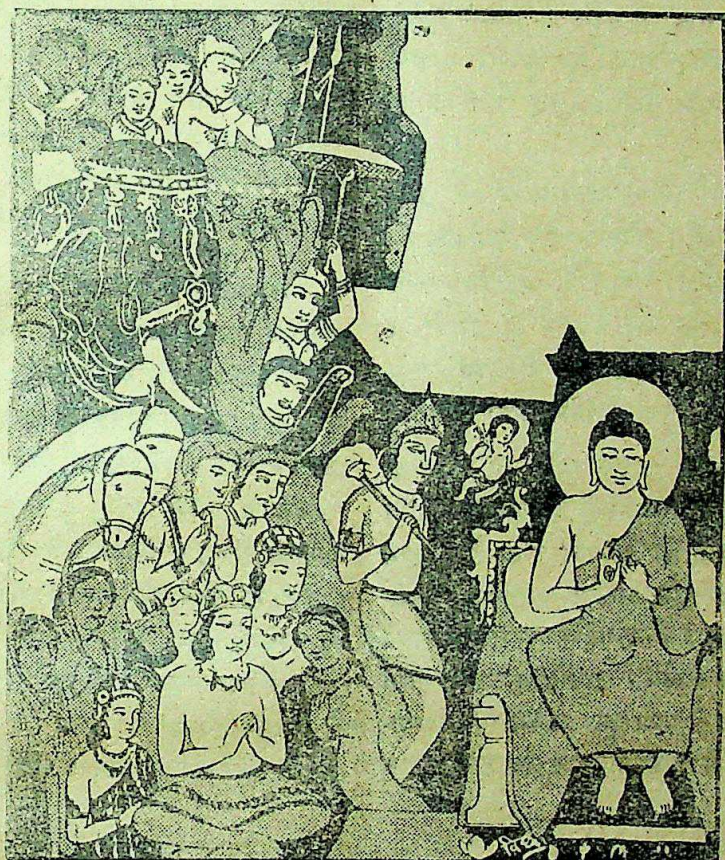
“जयं वेरं पसवति दुक्खं सेति पराजितो।”

युद्ध में जय प्राप्त करने से एक पक्ष मदोन्मत्त होता है और दूसरा पक्ष पराजय के शल्य के कारण अस्वस्थ होता है। पराजित को अच्छी नींद भी नहीं आती और बैर बढ़ता ही जाता है, इसलिए भगवान् बुद्ध ने कहा—

नहि वेरेन वेराणि सम्मन्तीध कुदाचरं।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो॥

वैर से वैर का शमन कभी भी नहीं होता। अवैर से, अहिंसा से द्वेष-बुद्धि छोड़ देने से, प्रेम से वैर का शमन होता है, दुश्मनी टल जाती है। यही है त्रिकालबधित सनातन सिद्धान्त। इसी सनातन सिद्धान्त को अनुशीलन करने का मार्ग बुद्ध ने दुनिया के सामने रखा।

एक ही गाथा में बुद्ध भगवान् का सन्देश इस प्रकार ग्रंथित है:—



मगध-नरेश बिम्बिसार को उपदेश देते हुए भगवान् बुद्ध।

अजन्ता के एक चित्र की अनुकृति।

सर्व पापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा ।
सच्चित्तं परियोदपनं पतं बुद्धान् सासनं ॥

सब तरह के पाप यानी अकुशल कर्म नहीं करना; मनुष्य समाज की हानि हो, जैसा कुछ भी कभी नहीं करना; समाज का जिससे हित हो, उन्नति और प्रगति हो, ऐसे कुशल कर्मों का पालन करना, उन्हें बढ़ावा देना और अपने चित्त को इसतरह काबू में लाना कि जिससे ईर्ष्या, लोभ, अभिमान, मद आदि लोक विनाशकारी वृत्तियाँ कभी मन में उठेही नहीं, यही है बुद्ध भगवान् का अनुशासन ।

बुद्ध भगवान् के जमाने में आत्मा-परमात्मा की दार्शनिक चर्चा बहुत चलती थी । यज्ञ-यागादि कर्मकांड का जाल बहुत फैला हुआ था । चन्द लोग देह-दंडन करके शरीर का शोषण करते थे और धर्म के नाम पर गरीबों पर जुल्म अत्याचार भी करते थे । इस सारी अनावश्यक अन-प्रवृत्ति से ऊब कर उन्होंने अपना अष्टांगिक मार्ग चलाया ।

यज्ञ-यागादि कर्म काण्ड से कुछ नहीं होगा । मनुष्य-जाति की उन्नति के लिए अत्यन्त जरूरी है केवल “धम्म” । धम्म के पालन से हर तरह का कल्याण होता है । धम्म है सदाचार । सच्ची-सम्यक-दृष्टि, सत्कर्म, प्रमाणिक आजी-विका इत्यादि जीवन के आठ विभागों में अगर हम सच्चे रहें तो अधःपात से बच जायेंगे । सर्वांगीण उन्नति होगी और वासनाओं के बन्धन से हम छूट जायेंगे । ‘कल्याणो-धम्मो’ इस एक वचन में बुद्ध भगवान् का सन्देश पूरा पूरा आ जाता है ।

अष्टांगिक मार्ग के साथ बौद्ध धर्म में ‘पंचशील’ की बात आती है । उसमें मनुष्य जाति के लिए सदाचार का रास्ता दिखाया है । “पंचशील” शब्द चीन, जापान, कम्बो-डिया, बर्मा, भारत, लंका, इण्डोनेशिया, श्याम आदि एशिया के देशों में असंख्य लोगों के हृदय तक पहुँच जाता है । इसलिए राष्ट्र-राष्ट्र के बीच अवैर का सिद्धान्त स्थापित करने के लिए जवाहरलाल जी ने जो पाँच सिद्धान्त सुकरार किये, उनका स्वीकार बौद्ध जगत ने ‘पंचशील’ नाम से किया । अब सारी दुनिया में इस अद्यतन पंचशील का स्वीकार हो रहा है । युद्ध से थके हुए राष्ट्र अनुभव करने लगे हैं कि इस पंचशील के बिना मानव जाति का कल्याण हो ही नहीं सकता ।

महाभारत के सर्व संहारकारी युद्ध से ऊब कर और थक कर भारतीय जनता जब असमंजस में पड़ी थी तब बुद्ध ने अहिंसा और अवैर की घोषणा की । हजारों वर्ष के बाद वही पुराना अनुभव दो विश्व युद्धों के द्वारा मानव-जाति ने फिर से किया, राग-द्वेष, ईर्ष्या असूया, मत्सर, अविश्वास, लोभ आदि असामयिक वृत्तियों पर अंकुश लगाकर संयम से विश्वास से और विश्व कुटुम्ब भाव-से हम रहना सीखें तभी मानव-जाति बच सकेगी और प्रगति कर सकेगी । यह अनुभव धीरे-धीरे सबको हो रहा है । यही घोषणा अमृतसर में सारे राष्ट्र ने पवित्र भाव से की है । उसी ‘धम्म’ की हम सब शरण जायें । उसी से हमारा और सबका कल्याण होगा ।



जागरण-गान

श्री केदारमान 'व्यथित' (नेपाल)

नव बौद्धो, तुम जागो ! जागो !
 प्राची में अरुणाई छाई,
 क्या तम ओढ़े तुम सोये हो ?
 बुला रहा है तुम्हें सवेरा,
 क्यों दुःस्वप्नों में खोए हो ?
 नव बौद्धो, तुम जागो ! जागो !
 जागरण बुलाने आया है,
 आवरण हटाओ रजनी का ।
 दलितों की नींद जगाने को,
 जीवन वरदान बनाने को,
 नव बौद्धो, तुम जागो ! जागो !
 महाभारत के तुम हो प्राण,
 अछूतों का करना है त्राण,

प्रहार करो 'बाबा' का बाण,
 पुराण न हो जब तक निष्प्राण !
 नव बौद्धो, तुम जागो ! जागो !
 जग कर ही प्राची ने पाई
 सूरज की आलोकित गरिमा,
 जग कर ही चिड़ियों ने गाई
 मंगलमय जीवन की महिमा,
 नव बौद्धो, तुम जागो ! जागो !
 युग कहता है, सत कोटि चरण
 जोह रहा पद-चिह्न तुम्हारा,
 बड़ो नदी-सा तुम, सागर को
 करना है अभिषेक तुम्हारा !
 नव बौद्धो, तुम जागो ! जागो !

धर्मान्तर नहीं भ्रमान्तर

श्रीचन्द्र आश्वत्थायन

आजकल भारत में ही नहीं, वरन् अन्य राष्ट्रों में भी एक चर्चा है कि भारत में 'धर्मान्तर'—धर्मपरिवर्तन—हो रहा है। सद्धर्म का पुनर्स्थापन हो रहा है। उन पुरुषों के द्वारा, जिन्हें उनकी परिश्रमशीलता के कारण नाना प्रकार के कष्ट सहने को मिलते हैं; जो संतप्त मानवता में अग्रगण्य हैं। आज सद्धर्म को पुनर्जीवित करनेवाले वे मूक, व्रस्त और अवाञ्छित (यद्यपि वे समाज के सर्वाधिक उपयोगी अंग हैं) प्राणी हैं जिनकी दुर्दशा को देखकर मानवता आज भी आठ-आठ आँसू रोती है। उनकी व्रस्तता का मूल कारण भी उनके वास्तविक 'धम्म' का हास ही था। धम्म के अभाव में उनका आत्मभाव लुप्त हो गया और वे भंडके राही दुःख वहनता का उदाहरण बन कर रह गये। तो,

ऐसे मानवों, नहीं-नहीं, पुरुषार्थियों द्वारा अथवा धार्मिक शरणार्थियों द्वारा 'धर्मान्तर' (जैसा प्रत्यक्ष प्रतीत होता है) हो रहा है। किसके इंगित पर यह क्रान्ति-कार्य हो रहा है? हमारे एकमात्र मसीहा स्वाभिमान की प्रतिमूर्ति धर्माधिकारी बाबा साहब के मार्ग दर्शन पर।

भारतीय इतिहास में १४ अक्टूबर १९५६ ई० का पावन दिवस एक महान् क्रान्ति का जन्मदाता है। इस गौरव-गरिमा से महामण्डित दिवस को भारतीय गौरव के इतिहास में एक नवीनतर स्वर्णिम पृष्ठ सम्मिलित हो गया। आज के दिन बाबा साहब डॉ० अम्बेडकर की महान् 'धम्म' विजय सम्पन्न हुई और सद्धर्म की पावन-पताका फहराने लगी। कोटि-कोटि प्राणियों में प्राण-आलोड़न

हुआ और लाख-लाख प्राणी अपने कर्णधार के स्वर में स्वर मिलाकर एक विस्मृत उद्बोध को दुहरा उठे :—

“बुद्धं सरणं गच्छामि, धम्मं सरणं गच्छामि, सर्वं सरणं गच्छामि।”

और पञ्चशील ग्रहण के पावन सदोच्चारण से भारत का अतीत लहलहा उठा, वर्तमान गा उठा और भविष्य जगमगा उठा। उस दिन ‘धर्मान्तर’ की नींव पड़ी। उस दिन सहस्राब्दी से अधिक के मूक दासत्व ने मानसिक मुक्ति पायी। स्वर स्वच्छन्द हुए और मानवता बाबा साहब की यश-गाथा को गाने लगी। भविष्य में यह दिन अमर होगा कि “आज धर्मान्तर हुआ था”।

किन्तु प्रश्न उठता है, क्या यह ‘धर्मान्तर’ ही है? यदि विचार किया जाय तो बात कुछ और ही बनती है। आइये इस पर थोड़ा विचार किया जाय।

धर्मान्तर के प्रश्न का उत्तर देने के लिये एक और प्रश्न करना पड़ेगा। एक ही नहीं कुछ और शंकाएँ भी। क्या धर्मान्तर करने वाले एक धार्मिकता के अनुयायी थे? अथवा ये अधनज्ञे, अधभूखे प्राणी अपने तथाकथित धर्म के अंग माने जाते थे? अथवा वे स्वयं अपने तथाकथित धर्म से संतुष्ट थे? इन सभी प्रश्नों का संक्षिप्त एवं सुस्पष्ट उत्तर होगा—नहीं।

यद्यपि बाह्य दृष्टि से, जैसा आज के हिन्दू धर्माधिकारी मिथ्या भ्रम करते हैं, ये पुरुषार्थी कुछ बातों को मानते हैं। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि वे वास्तव में उस धर्म से संतुष्ट थे और वे उसके पालन करने में आत्म-प्रशंसा को प्राप्त करते थे। वे मानते थे। केवल एक कारण से उनका अपना धर्म लुप्त था। दूसरे, समाज के खुले अत्याचारों से थोड़ी-बहुत रक्षा पाने के लिये। किन्तु रक्षा के बदले में उन्हें सर्वदा ही शोषण मिला। उनकी सेवा और सहृदयता के लिये उन्हें घृणा का पुरस्कार मिला। फिर भी इतना होने पर भी यह सन्दिग्ध है कि वे अपने त्यागे धर्म के मानने वाले थे।

इस बात पर विचार करने के लिये निम्नलिखित बातों को आधार मानना पड़ेगा :—

(१) उनका समाज सम्पर्क और रीतियों का ऐक्य;

और (२) उनकी धार्मिक-धारणा, धार्मिक श्रद्धा और धार्मिक व्यवहार।

जहाँ तक सामाजिक सम्पर्क का प्रश्न है तो, यह एक अनहोनी बात थी। सदियों से दलित वर्गीय व्यक्ति सामाजिक आधार पर हिन्दू समाज से भिन्न रहे। उनको अस्पृश्य ठहरा कर भविष्य का सुख भी बन्द कर दिया। जनसम्पर्क होता भी तो कैसे? रहने के लिये ग्रामों के बाहर स्थान। आने जाने के मार्ग भिन्न। सम्मिलन भूल से न हो जाय इसलिये उनके चिह्न भी नियुक्त किये। तो समाज सम्पर्क एक ढकोसला रहा। शोषित प्राणी कभी भी समाज के अंग नहीं माने गये।

रीतियों की एकता का प्रश्न भी इसी प्रकार का है। हिन्दू समाज में उन रीतियों की निन्दा होती आई है जिनको दलित समाज मानता है। उनमें स्त्री स्वातंत्र्य पर्याप्त रूप में पाया जाता है। जब कि तथाकथित सवर्णों में स्त्री का दासत्व हृद से भी बढ़ कर था। नारी सहयोग देती है, पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर सेहनत करती है और गृहस्थ के भारको भी भलीभाँति सम्हालती है। तलाक-प्रथा और पुनर्विवाह (जिसे आज सवर्ण हिन्दू भी उचित समझते हैं) को ये मानव अनजाने समय से मानते चले आ रहे हैं। इनकी पञ्चायतें, इनकी क्रियात्मकता किसी अत्यन्त प्राचीनकालीन संघ-पद्धति का स्मरण नहीं करती तो और क्या करती हैं?

तो समाज का सम्पर्क जिस अर्थ में होना चाहिये नहीं हो सका। न अन्य समाज और धर्म के ठेकेदारों ने इन लोगों को उन अधिकारों का उपयोग करने दिया जिससे ये अपने आप को इस तथाकथित समाज सूत्र के एक अंग बन सकते।

दूसरा आधार इन लोगों का धार्मिक व्यवहारादि को लेकर बनता है। इस कसौटी पर भी कस कर देख लिया जाय कि इनकी धार्मिक-मान्यता किस प्रकार की थी। धर्म का प्रश्न इन लोगों के सम्मुख किस रूप में रहा, और इन्होंने उसका क्या समाधान निकाला विचारणीय है।

भारतीय व्रस्त समाज ही नहीं, वरन् अन्य समाजों में भी धार्मिक ऐक्य का अभाव है। इसलिये इन शताब्दियों के भटके जन समूहों में भी नाना प्रकार की धार्मिक

धारणाएँ प्रचलित हैं। कुछ तो वज्रयान और तंत्रयान की बहुत सी बातों को मानते चले आ रहे हैं। कुछ तथाकथित श्रेष्ठ सवर्णों से अधिक घुलन-मिलन करने के लिये नाना प्रकार के कल्पित देवी देवताओं की भी पूजा करते हैं। कुछ अभी तक किसी निर्णय पर नहीं पहुँचे कि किस विशेष धर्म का पालन किया जाय (इस वर्ग में से उन धर्मावलम्बियों को निकाल दिया जाय जिन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार करके उनका आचरण भी आरम्भ कर दिया है)।

उपरोक्त बातों को देख कर यह बात अवश्य उठेगी कि यदि ये लोग किसी धर्म विशेष को नहीं मानते थे तो ये किसी का अनुगमन करते थे या नहीं?

वात यथार्थतः कुछ महत्त्व रखती है, किन्तु कारण भी सुस्पष्ट है। ये बेचारे शील और आचरण से भटके प्राणी अपनी सद्वर्त्म-पिपासा को लिये नाना प्रकार की भृग-मरीचियों में भटकते रहे। सत्यता और सात्विकता से सर्वदा ही दूर रहनेवाले ये प्राणी प्रत्येक धार्मिक आन्दोलन में भाग लेते रहे। जब-जब श्रेष्ठ धर्म की बात उठी इनकी जिज्ञासा जगी। बौद्ध धर्म की जातक कथाओं में एक चार वणिकों की कथा आती है। उस कथा के अनुसार, चारों व्यक्ति व्यापार करने चले। कहीं रुई मिली, कहीं वस्त्र मिले, कहीं चाँदी मिली, कहीं सोना मिला और कहीं हीरे-जवाहर मिले। जो व्यक्ति रुई के मोह को नहीं त्याग सका वह रुई धर लाया। जो चाँदी को नहीं छोड़ सका वह चाँदी लाया। जो सोने को नहीं त्याग सका वह सोना पाने का अधिकारी बना। किन्तु उनमें जो मेधावी और श्रेष्ठता का उपासक था वह सभी हीनतर वस्तुओं का त्याग करके श्रेष्ठतम धन का अधिकारी बना। ठीक इसी प्रकार इस वर्ग के प्राणी अन्तर्तोगत्वा श्रेष्ठत्व के अधिकारी बन ही गये।

ये लोग धार्मिक भावना की अपेक्षा तार्किक भावना के पुजारी हैं। ये उचित और कटु तर्क उपस्थित करने में समर्थ हैं। इनकी तार्किक भावना का अच्छा-खासा प्रदर्शन उन सत्संगों में होता था जिनमें एक इकतारे और खँजड़ी के सहारे रात-रातभर आत्मज्ञान की शोध में गुजार देते थे। उन सत्संगों की तर्क भावना को देखने का सौभाग्य इन पंक्तियों के लेखक को भी प्राप्त था। जब सुचारु रूप से

किसी शंका का कारण और कारण-जनित प्रमाण आदि से समाधान न हो तब तक समाधान नहीं। जिन ग्रन्थों—श्रमण संस्कृति के ग्रन्थ—को वे मान्य समझते थे उनके प्रमाण देना सरल था। साखी पर साखी और गूढ़ से गूढ़ पद को भी सार्थकताके साथ प्रस्तुत करते थे।

इन्हीं सत्संगों में नाना प्रकार के ढोंग और पाखण्डों की पोल खोली जाती थी। सार ज्ञान के खोजी, राम-कृष्ण के इन काम से तूलित रूपों पर उस प्रकार कभी मुग्ध नहीं हुए जिस प्रकार एक साधारण हिन्दू होता रहता है। ये ही वे प्राणी हैं जो “सत्य वचन है महाराज” के कायल नहीं हैं।

धार्मिक आचरण इनका स्वतन्त्र था यह बात मंली-भाँति स्पष्ट हो जाती है। ये धार्मिक यात्री निरन्तर अपनी धर्म-यात्रा पर चलते रहे। उस यात्रा में समय-समय पर महान् व्यक्ति उदय हुए उन्होंने धार्मिक भावना को बलवती बनाया। किन्तु सर्व श्रेष्ठ और पूरा कार्य करनेवाले नवयुगके महामनीषी बोधिसत्व बाबासाहब थे जो जीवन भर धार्मिक अनुसन्धान करके इन यात्रियों को दिशा ज्ञान कराते रहे। अन्त में उन्हें सही मार्ग देकर अन्तर्धान हो गये।

अन्त में यह सुस्पष्ट करने से कि बाबा साहब ने ‘बौद्ध धर्म’ ही क्यों बतलाया, सब ठीक हो जाता है। बाबा साहब ने अपने अनुशोध पूर्ण ग्रन्थमें यही तो सिद्ध किया कि अछूत लोग पूर्ववर्ती बौद्ध थे। इसी के कारण अछूत ब्राह्मणों से और ब्राह्मण अछूतों से घृणा करते हैं। अतिशूद्रता का कारण भी बौद्धधर्म का अनुयायी होना ही सिद्ध होता है। आचार्य बुद्धघोष ने अपने एक ग्रन्थ सुमंगल विलासिनी में ठीक ही लिखा है:—

तेसं किर अयं लद्धि, ब्राह्मणा ब्रह्मनो मुखतो निक्खन्ता,
खत्तिया उरतो, वेस्सा नाभितो,
सुहा जानुतो, समणा पिट्ठिपादतोति।”

यद्यपि ऋग्वेद के पुरुष सूक्त से यह बात भिन्न है। तो भी कण्ठाग्र करने की पद्धति में यदि उस समय ऐसा ही प्रचलित हो तो मान्य है। इस गाथा से अतिशूद्रता का आभास मिलता है।

तो उपरोक्त बातों से सुस्पष्ट हो जाता है कि आज

के अछूतों ने अपने प्राचीन विस्मृत धर्म को बाबा साहब के करुणिम निर्देशन में पाया। जिस प्रकार सिंह और बकरों की कथा में, जब एक सिंहने बकरों के साथ चरने वाले सिंह को देखकर उसे सिंहत्व का ज्ञान करा दिया और वह सिंह जैसा आचरण करने लगा तो

इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं हो सकता कि वह बकरे से सिंह बना था। हाँ, उसकी भावनाओं का परिवर्तन था। ठीक उसी प्रकार हम भारत के करोड़ों अछूतों ने अपने सद्धर्म को एक लम्बी भूल के पश्चात् अपना लिया तो असल में हमारा धर्मान्तर नहीं भ्रमान्तर ही है।

ब्रह्म-विहार

भिक्षु ऊ चन्दोभास

‘ब्रह्मविहार’ एक पालि शब्द है। जिन धर्मों से श्रेष्ठ-व्यक्तियों की रहन-सहन ब्रह्म जैसी होती है, उन्हें ब्रह्म-विहार कहते हैं। वह धर्म चार प्रकार के हैं—मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा। इन चारों में से किसी एक का प्राणियों पर फैलाकर रहना ब्रह्म जैसे श्रेष्ठ-व्यक्तियों का रहना कहलाता है।

मैत्री

प्रिय, इष्ट, अप्रतिकूल-प्राणियों के प्रति मन में उत्पन्न होनेवाले क्रोध के विरोधी स्वभाव को ‘मैत्री’ कहते हैं। किसी व्यक्ति के प्रति जब मन में क्रोध उत्पन्न होता है तब मन की दशा गरम और सूखी होती है, किन्तु मैत्री-युक्त मन का भाव उक्त व्यक्तियों पर स्नेह पूर्ण और आर्द्र होता है। परिवार और प्रेमिकाओं पर जो प्रेम होता है उसे भी लोग ‘मैत्री’ कहते हैं, लेकिन वह असली मैत्री नहीं, वह तो अपने से सम्बन्धित या संयोजित व्यक्तियों के प्रति मन में उत्पन्न होनेवाली तृष्णा या लोभ ही है, उसे गृहाश्रित प्रेम भी कहते हैं जो उक्त-व्यक्तियों के वियोग में असह्य हो, शोक विलाप की तरफ आदमी को पहुँचा देता है। इसका यह मतलब नहीं है कि रिश्तेदारों और प्रेमिकाओं पर असली मैत्री कभी नहीं हो सकती। कभी-कभी हमें तृष्णा के पीछे छिपी हुई असली मैत्री दिखाई देती है। हाँ, कोई-कोई अपनी प्रेमिकाओं को उनके हित के लिये ईर्ष्या, द्वेष-रहित और खुशी के साथ दूसरों के हाथ सौंप देते हैं। असली बात तो यह है कि नकली मैत्री या तृष्णा अपने से युक्त व्यक्ति को केवल शोक, ईर्ष्या, द्वेष इत्यदि बुरी मनोवृत्तियों की तरफ नहीं ले

जाती बल्कि दूसरों के अहित के लिये भी होती है, किन्तु असली मैत्री तो अपने से युक्त-मन को शान्त बनाकर दूसरों के हित के लिए ही होती है, अतः मैत्री-भावना करते समय हमें तृष्णा-रूपी समीप-शत्रु और क्रोध रूपी दूर-शत्रु इन दोनों से बचने की कोशिश करनी चाहिये। मैत्री फैलाने का ढंग—चाहे बैठे हुए और खड़े हुए भी हो, चाहे लेटे हुए तथा जाते हुए भी हो, मैत्रीयुक्त मन को दूसरे के पास पहुँचा देनेवाला मैत्री भावना करनेवाला कहलाता है। मैत्री भावना दो प्रकार की होती है—मर्यादित और अमर्यादित। जिसमें स्त्री, पुरुष इत्यादि मर्यादा होती है उसे मर्यादित मैत्री-भावना कहते हैं। इसके विपरीत अमर्यादित भावना को जानना चाहिये। फिर मैत्री भावना दस दिशाओं में फैलाई जा सकती है जैसे कि पूर्वदिशा के सब प्राणियों को (= अमर्यादित) अथवा सब स्त्रियों को, सब पुरुषों को, सब मनुष्यों को, सब जानवरों को (= मर्यादित) मन से अन्दाजा करके ‘वैर न हो, शोक-चिन्ता न हो,’ ‘दुःख-कष्ट न हो,’ सुखी होकर अपने शरीर को दीर्घ काल तक धारण करने में समर्थक हो,”—इस प्रकार दूसरी दिशाओं के प्राणियों पर भी मैत्री फैलाना चाहिये।

करुणा

यह दुःखित प्राणियों के दुःख को देख कर सज्जनों के हृदय को कम्पित कराने वाला मन का स्वभाव है, जिससे सज्जन लोग दूसरों के दुःख को हटाना चाहते हैं। यह दूसरे को मारना या सताना चाहने वाले हिंसा या क्रोध से विरोधी धर्म कहा जाता है। इसमें यह ख्याल रखना चाहिये कि

अमिताभ का वैराग्य

२७१

किसी को अपने से सम्बन्धित, दुःखित प्राणियों के प्रति उक्त बातों से पूर्ण करुणा के समान एक भाव मन में उत्पन्न हुआ करता है, जिससे मन मलीन हो जाता है। उसे कहते हैं शोक या दौर्मनस्य। असली करुणा के कारण मन की मलीनता कभी नहीं हो सकती। उसे भी पूर्व दिशा के दुःखित प्राणियों के प्रति 'ये दुःख से छूट जावें' इस प्रकार पूर्ववत् फैलाना चाहिए।

मुदिता

जिस धर्म के कारण सुखी प्राणियों को देखकर सज्जन लोग मुदित होते हैं, मन में उत्पन्न होनेवाले उस धर्म को 'मुदिता' कहते हैं। मुदिता अपने से युक्त मन को ईर्ष्या से बचाती है। जो अपने परिश्रम के अनुसार लब्ध धन-सम्पत्ति के कारण शोक दुःख से दूर होकर खुश होते हैं, प्रसन्न मुख हो जहाँ कहीं भ्रमण करते हैं, उन्हें देखकर दुष्टों के मन में ईर्ष्या-द्वेष उत्पन्न होता है, लेकिन सज्जनों के मन में 'मुदिता' उत्पन्न होती है। कभी-कभी अपने परिवार और मित्रों की धन-सम्पत्ति को देख कर हर्ष-फुलित हो, मुदिता के समान मन में एक भाव उत्पन्न हुआ करता है, वह असली मुदिता नहीं वास्तव में धन-सम्पत्ति के प्रति मन में उत्पन्न होने वाली लोभ से युक्त प्रसन्नता ही है,

क्योंकि मुदिता का सम्बन्ध धन-सम्पत्ति से नहीं, वरन् वह सुखी व्यक्ति से ही सम्बन्ध रखती है। उसे ईर्ष्या का विरोधी स्वभाव कहते हैं। 'ये प्राणी अपनी लब्ध सम्पत्ति से मत छूट जावें' इस प्रकार सुखी प्राणियों को अनुमान करके मुदिता भावना करनी चाहिये।

उपेक्षा

प्राणियों के प्रति घृणा और प्रेम से अलग जो मन में उत्पन्न होने वाला स्वभाव है उसे 'उपेक्षा' कहते हैं। जिसके मन में यह धर्म मौजूद है, वह किसी व्यक्ति से भी—वह चाहे शत्रु एवं सुखी अथवा दुःखी हो—घृणा, दया और प्रेम नहीं करते। जैसे कि सारथी बराबरी में दौड़ने वाले अपने दोनों घोड़ों पर प्रहार नहीं करता। यहाँ यह भी खयाल रखना चाहिए कि मन में उत्पन्न होने वाली जो अज्ञानता या मोह है, वह भी अपनी मूढ़ता के कारण घृणा और प्रेम के बारे में कुछ नहीं जानता। दोनों में यह अन्तर है कि मोह प्राणियों के (विषयों) के यथार्थ कारण को बिना जाने बे प्रवाह होता है। उपेक्षा प्राणियों के यथार्थ कारण को जानती हुई बे परवाह होती है। अतः उपेक्षा भावना करते वक्त 'सब प्राणी अपने कर्मों के अनुसार चलते हैं' इस प्राणियों की मन से अन्दाज करके उपेक्षा भावना करनी चाहिये।

अमिताभ का वैराग्य

श्री चन्द्रदत्त कौशिक

अमिताभ देखने को, सौरभ-सुधा नगर की,
वह दिव्य स्वप्नभावी, साकारता हो जिसकी,
वैराग्य ज्ञान ज्योति, अमरत्व बुद्धपद की,
जो मूल भावना हो, कल्याण के जगत की।
जो भ्रान्ति को मिटा दे सुख-शान्ति को जगा दे,
माया ममत्व बन्धन जो काट कर भगा दे,
अज्ञान को मिटा दे सन्ताप को मिटा दे,
हर जीव के हृदय में जो प्रेम को बहा दे।
जीवन मरण जरा की वे झाँकियाँ जिधर हों,
माया-ममत्व बन्धन की चाबियाँ जिधर हों,

अमिताभ जा रहे थे वे कांतियाँ जिधर हों,
उस ओर उस दिशा में चिनगारियाँ जिधर हों।
चलते हुए उन्होंने कंकाल नर को देखा,
पूछा तभी विवश हो वह कौन जा रहा है?
'यौवन के बाद आता कहते इसे जरा है,
हर एक को सताता वह रूप जा रहा है।'
इस मध्य ही उन्होंने छन्नक को फिर से पूछा,
'बतलाओ शीघ्र यह सब क्यों शोर हो रहा है?'
"मरकर मनुष्य जगसे मरघट में जा रहा है,
इस हेतु से हे राजन्, यह शोर हो रहा है!"

पूछा पुनः विकल हो 'वह कौन आ रहा है, जो जीर्ण वस्त्र पहने, गिड़-गिड़-गिड़ा रहा है?' 'यह काल चक्र सबको, यों ही बता रहा है, कल जो धनाढ्य था वह, इस रूप आ रहा है।' सुन सारथी की बातें, लख झाँकियाँ वतन की, मुरझा गई खिली थीं, जो क्यारियाँ चमन की, बस लौट जाओ छन्नक, अब लौट जाओ छन्नक, यह एक ही ध्वनि थी, उनके अधीर मन की। आते हुए उन्होंने, इक बार फिर से पूछा, 'वह तेज से विभूषित, वह कौन जा रहा है?' "बन्धन से दूर होकर, माया से दूर होकर, सुख-शान्ति का पुजारी, अवधूत जा रहा है!"

रह-रह के उनके आगे, वे दृश्य आ रहे थे, जीवन-मरण जरा के, जो मूर्त्त हो चले थे, ऋषियों से पण्डितों से, यतियों से उसने पूछा, पर हल नहीं हुआ था, वह प्रश्न था अछूता! तब अन्त में उन्होंने, अर्द्धाङ्गिनी को छोड़ा, निज पुत्र को भी छोड़ा, घर-बार को भी छोड़ा, उस नाम को भी छोड़ा, उस राज्य को भी छोड़ा, बनकर परम विरागी, भव बन्धनों को तोड़ा। पर कौन जानता था, सोया हुआ जगेगा, जगकर समस्त भूके, सन्ताप को हरेगा, वह भास्कर बनेगा, सब पाप-पुञ्ज हारी, जिसकी विराटता की, होगी अमिट कहानी!

आन्ध्र में बौद्धधर्म

श्री वी० रामकृष्णराव

कलिंग राज्य के निःसंशय एक अंश गंगम जिला (उड़ीसा राज्य) के जाजुगुड़ा, बम्बई के निकट धाना जिला और सोपारा में भी प्राप्त अशोक के शिलालेखों से यह सिद्ध होता है कि सम्पूर्ण दक्षिण भारत मौर्य साम्राज्य का एक अधिभाज्य अंग था। उसमें एक कलिंगमें तोसाली (धावली) और दूसरा सुवर्णगिरि, जो कर्नूल जिले में जोन्नगिरी हो अथवा रायचर जिले में कनकगिरी, इस प्रकार राज-प्रतिनिधियों के ये दो स्थान थे। आदि-बौद्ध-साहित्य में इन प्रदेशों के आन्ध्र, कलिंग तथा अन्य अनेक स्थानों का बारम्बार उल्लेख है, और इन उल्लेखों से पता चलता है कि बुद्धमत यहाँ उत्कर्षावस्था में था। विद्वान् लोग अपनी शैक्षणिक वृत्ति को अन्तिम स्वरूप देने के लिए आन्ध्र आते थे। जैसा कि जातकों में वर्णित है, शिक्षित, युवक उस समय के महान् विद्यापीठ तक्षशिला में अध्ययन पूरा करने के पश्चात् प्रत्यक्ष अनुभव से लाभान्वित होने के लिए आन्ध्र आते थे। आन्ध्र प्रान्त की अमरावती नगरी में सुमेध नाम से बुद्ध के एक पूर्व जन्म का उल्लेख प्राचीन बौद्ध ग्रन्थ धम्मपद अट्ठकथा में हमें प्राप्त होता है।

इस प्रकार अशोक से पूर्व काल में भी आन्ध्र एवं

दक्षिण के अन्य भागों में बुद्ध-धर्म सुस्थापित हो चुका था, इसके पर्याप्त प्रमाण हैं। इसी से यद्यपि अशोक ने भारत के अनेक भागों में बौद्ध-धर्म प्रचारकों को भेजा परन्तु आन्ध्र में नहीं, क्योंकि वैसे करना गंगाजल को काशी ले जाए जाने की बात थी।

पूर्वी दिशा में घण्टशाला एवं भट्टिप्रोलु और पश्चिम में कोंडापुर एवं तरे के बुद्ध-अवशेषों से इस धर्म के अति प्राचीन स्मारकों का पता पता चलता है। भट्टिप्रोलु, अमरावती तथा जगौयपेट स्थित स्तूपों पर दक्षिण ब्राह्मी लिपि में, जो ईस्वी पूर्व तृतीय सदी की होगी, संक्षिप्त शिलालेख पाये गये हैं। दक्षिण भारत में अब तक प्रकाश में लाई गई लगभग सभी प्राचीन गुफाओं का उत्खनन शातवाहन-शासन काल में हुआ।

राजा कन्हा (कृष्ण) शातवाहन ने बौद्ध-भिक्षुओं की सुख सुविधाओं की देख-भाल के लिए एक महामात्र की नियुक्ति की थी। हालाँ कि सतसई में बुद्ध की पाद-पूजा का उल्लेख है। देश में बौद्ध-भिक्षु स्त्री-पुरुष काफी संख्या में फैले हुए थे। धार्मिक-प्रवृत्ति के लोग, उनमें कुछ बुद्ध-मतानुयायी न होने पर भी, इन भिक्षु गणों के धर्मोपदेश

सुनते थे और उनकी शारीरिक सुविधाओं की ओर ध्यान देते थे। इन्हीं धार्मिकों की सहायता से बौद्ध-भिक्षुओं के निवासार्थ प्रथमतः चट्टानें खोद कर लेगियाँ (गुफायें) और चैत्य गृह (पवित्र अस्थि-अवशेष के स्थान) बने और पश्चात् ईंट-लकड़ी के 'विहार'

बन गए। धार्मिक जन ही कभी-कभी सन्यासी वर्ग की आहार-व्यवस्था के लिए उन्हें भूमि वा ग्राम भी दान में भेंट करते थे। सन्यासी वर्ग को वस्त्र प्रावरण का दान करने की प्रथा भी प्रचलित थी। सर्व साधारणतः पड़ोसी संघों में विपुल धन लगाकर उस पर जो वार्षिक वृद्धि आती थी उससे स्त्री-पुरुषों को वस्त्र प्रावरण खरीदे जाते थे। गौतमी बालाश्री ने भेद्रयानीय शाखा के भिक्षुओं को एक गुफा भेंट की थी। इस महिला के पुत्र ने टेकि-रासी पहाड़ी के बौद्ध भिक्षुओं को २०० निवर्तनों का खेत समर्पित किया था। माता-पुत्र दोनों ने तिरन्हु टेकडियों पर रहने वाले बौद्ध-भिक्षुओं को १०० निवर्तनों का खेत दिया था।

बालुरक (कल्ले) की गुफाओं में रहने वाले महासंघिक बौद्ध-भिक्षुओं के जीवन-निर्वाह के लिए पुलुमखी द्वितीय ने एक ग्राम का दान दिया। उशमदत्त ने गोवर्धन में स्थित भिरश्मी पहाड़ियों में एक

गुफा खुदाई और किसी भेद-भाव के बिना विविध शाखाओं के बौद्ध-भिक्षुओं की आहार-व्यवस्था के लिए ४००० कहापणों के मूल्य की भूमि दान में दी। इसके अलावा उनकी गुफा में वस्त्र किये २० भिक्षुओं के प्रीत्यर्थ बाहरी

जीवन के लिए तथा वस्त्र प्रावरणार्थ धन के प्रबन्ध के लिए ३००० कहापण उसने भेंट दिये। यह राशि दो स्थानीय बुनकर उद्योग संघों में लगाई गई थी। उस काल के अभिलेखों से पता चलता है कि सभी उप-श्रेणियों के अनेक नर-नारियों द्वारा बुद्ध मतानुयायियों को उपर्युक्त प्रकार के दान दिये जाते थे। आन्ध्र में पेद्दवंकूर, येलेश्वरम्, पणिमिरि, गाजुलवंडा, कोण्डापुर, गूडिवाड, भट्टिप्रोलु, अल्लूर, नगौयपेट, अमरावती, नागार्जुन कोंडा, रामतीर्थम्, (संस्कृत में आरामतीर्थ) गारिकपाडु, गोली, पेद्दमहर, चिन्नगंजाम, कनुपीर्त एवं अन्य अनेक स्थानों से सिद्ध होता है कि उस काल में बौद्ध-भिक्षुओं को कितनी लोक-प्रियता प्राप्त थी।



लुम्बिनी का अशोक स्तम्भ

बुद्ध मत के प्राचीन अभिलेखों में आन्ध्र के 'अन्ध्रक भिक्षुओं' का उल्लेख मिलता है। समकालीन शिलालेख आदि के आधार से जान पड़ता है कि दक्षिण के विशिष्ट नगरों में

कुछ पंथों को उत्कर्ष हुआ जैसे नासिक एवं कन्हरी में भद्रयानीय, काले में महासंघिक, सोपारा एवं जुन्नर में धर्मोत्तरीय, अमरावती में चैतियक और नागार्जुन कोण्डा में पूर्वशैल एवं अपरशैल। “क्या बुद्ध मनुष्य है?” क्या बोधिसत्व सामान्य प्राणी है? “क्या अर्हत पूर्णरूपेण विमुक्त है?” और इस तरह के अनेक प्रश्नों पर सैद्धान्तिक मतभेद होने से इस पंथ में अनेक विचार-प्राणियों का उद्भव हुआ जान पड़ता है। इन सैद्धान्तिक मतभेदों को जानने से पहले हमें शिलालेखों में एवं बौद्ध-साहित्य तथा अन्य साहित्यिक कृतियों में कहीं-कहीं किए गए उल्लेखों से प्रकाश में प्राप्त आन्ध्र में बुद्ध-मत के पन्थों उपपत्तियों की संख्या एवं विभिन्नता पर ध्यान देना होगा।

द्वितीय परिपद के पश्चात् बने बुद्धमत के स्थविर एवं महासांघिक इन दो पन्थों से ‘आचार्यवाद’ सिद्धान्त को लेकर महासांघिक पन्थ आन्ध्र में प्रचलित हुआ। विनय एवं धम्म के अपने भाष्य के सम्बन्ध में महासांघिक अधिक उदार थे। डा० भट्टाचार्य के कथनानुसार “नीति-शास्त्र एवं नैतिक अनुशासन के अनुसार आचरण करने वाले को थेरवादी कहते थे, और जो नीतिशास्त्र एवं नैतिक अनुशासन को गौण समझते थे, परन्तु आध्यात्मिक एवं परोपकारी सिद्धान्तों पर ही चलते थे वे महासांघिक कहलाते थे।

महासांघिक पन्थ की गोकुलिक, एक व्यवहारिक, प्रशसिवाद, बहुश्रुतीय, लोकोत्तरवाद एवं चैत्यक अथवा चैतियवाद मतप्रणाली में शाखाएँ थीं। अन्तिम मत प्रणाली के बारे में डा० नालिनाक्षदत्त ने बताया है कि “महावस्तु” में प्राप्त स्तूप वा चैत्य की पूजा को दिए गए अत्यधिक महत्त्व पर से महासांघिकों के एक पन्थ का नाम चैत्यक पड़ा होगा। रॉकहिल द्वारा प्रस्तुत तिब्बती विवरण के अनुसार ‘चैत्यक पर्वत निवासी चैत्यक कहलाते हैं।’ चैत्यकों ने धान्यकटक अथवा अमरावती को इस पन्थ का महापीठ बनाया और वहाँ के महाचैत्य अत्यन्त पूज्य एवं आदरणीय हो गए। अमरावती के शिलालेखों में एक स्तूप का नाम चैत्यिकियानम महाचैतियाय अर्थात् चैत्यकों के महाचैत्य इस प्रकार के उल्लेख हैं। इस पन्थ का नाम भी स्वयं चैत्यिकियानम निकाय है।

चैत्यकों के इस क्षेत्र में पुर्वशैलीय, अपरशैलीय, राजगिरिक एवं सिद्धार्थक उपप्रणालियों का, जिन्हें सामूहिक रूप से अन्धक भी कहते हैं, उद्गम हुआ। चैत्यक विचार प्रणाली को यदि पुर्वशैलीय न समझा गया तो चैत्यक विचारप्रणाली पाँचवीं होगी यह संभव है कि अपरशैलीय एवं पुर्वशैलीय प्रणालियों में मूलतः सैद्धान्तिक अन्तर न हो, परन्तु उनका उद्गम प्रादेशिक-भिन्नता से अथवा क्रमशः पूर्वी एवं पश्चिमी पहाड़ियों से हुआ।

तथापि इस बात का ध्यान रहे कि आन्ध्र प्रदेश में महासांघिक मतप्रणाली का देश के नाम से अन्धक नाम पड़ गया, इससे स्पष्ट है कि इस प्रणाली का यहाँ किस प्रकार भलीभाँति उत्कर्ष हुआ था, और इस क्षेत्र में कृष्णावाटी में स्थिति भग्नावशेषों के बारे में किए गए एवं किये जा रहे उत्खनन से उक्त कथन की बलवती पुष्टि होती है।

जब कि सात अकर्मठ पंथ के नाते वर्गीकृत महासांघिक एवं अन्य तदनुपंगिक पन्थों का उत्कर्ष आन्ध्र में अधिकतर शातवाहन के काल में हुआ। नागार्जुन कोण्डा स्थित शिलालेखों से यह भी सिद्ध होता है कि ग्यारह कर्मठ पन्थों में से एक महिशासक पन्थ तीसरी ईस्वी शताब्दी में अस्तित्व में था।

डा० नलिनाक्षदत्त एवं अन्य विद्वानों के कथनानुसार ऐसा जान पड़ता है कि बुद्ध-निर्वाण के अनन्तर तीसरी शताब्दी में महिशासकों का अस्तित्व रहा और वे सर्वास्तिवाद के अनुगामी थे।

दक्षिण भारतीय बौद्धमत के विद्यार्थियों के लिए महिशासक बहुत बड़ा महत्त्व रखते हैं। क्योंकि वे दक्षिण में आये और महिशा-मण्डल (मैसूर) एवं वनवासी (उत्तर कर्नाटक) में बस गए थेरवादियों के प्रख्यात संघ थे।

इसके अतिरिक्त अब यह उल्लेखनीय है कि महिशासकों का आश्रयदायी संत दक्षिणगिरि का पूरण था जिसका प्रथम परिपद के ७वें नियम के बारे में महाकाश्यप से हुआ मतभेद सुविख्यात है। नियमों एवं सिद्धान्तों का प्राथमिक थेरवाद का निकटतम पालन करते हुये महिशासकों ने थेरवाद की प्राचीनतम शाखा होने का अपना दावा प्रस्थापित किया।

हमारे शास्ता

२७५

इश्वराकु राजकुल सहिष्णुता एवं उदारता के बारे में बहुत ख्यातनाम है। महाराज बाहुबल चन्तात्मूल के शासनकाल में उसकी नाती और बनवास के महाराजा की रानी महादेवी कोदावालिश्री ने यह भव्य विहार बनवाया। उसके साथ नागार्जुन पहाड़ी की तलहटी में चट्टानोंवाली टेकड़ी के सिरे पर स्तूप है और जिसके विहार के भग्नाव-शेषों और उत्कृष्ट शिलालेखों से पता चलता है कि यहाँ

चतुष्कोणाकृति खम्बों का लगभग ६० फुट वाला एक मण्डप था और इसके चारों ओर २० कोठरियाँ थीं।

नागार्जुन कोंडा स्थित सिंहल विहार, यह आंध्र में अवस्थित अत्यन्त सहिष्णु एवं विचारशील दृष्टिकोण का एक और उदाहरण है जिसके कारण यहाँ तत्पश्चात् के काल में एक दूसरे से अत्यन्त भिन्न-भिन्न मत-प्रणालियाँ प्रस्थापित हुई।

(शेष अगले अंक में)

हमारे शास्ता

भिक्षु अश्वघोष

आज के समाज में यह भयंकर रोग फैला हुआ है कि व्यक्ति अपने कर्तव्य का पालन न कर दूसरों के दोषों को ही देखता है। आजकल प्रायः सभी यही कहा करते हैं कि 'पर उपदेश कुशल बहु तेरे' जैसा कहते हैं वैसा करते नहीं। घर-घर गाँव-गाँव और राष्ट्र-राष्ट्र में यही कहा करते हैं कि हमारे पिता जी ऐसे हैं। गाँव के मुखिया भी घूस-खोर हैं और मंत्री भी। दूसरी ओर साधुओं की भी कम बातें नहीं हैं। सारे समाज में आदर्श बातें सुनने को नहीं ही मिलतीं। सचमुच क्या एक दूसरे के दोष देखने से समाज में शान्ति आयेगी? यदि बड़े लोग ही ऐसे हैं, तो मैं क्यों नहीं ऐसा न बनूँ? सोच कर लकीर के फकीर बन जाए, तो समाज की दशा क्या होगी? अपने सुधार का प्रयत्न कोई नहीं करता। इस विषय में शान्ति-नायक गौतम बुद्ध का विचार क्या है? उसे मैं यहाँ संक्षेप में दे रहा हूँ।

बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद भगवान् बुद्ध के बहुत से अनुयायी हो गये थे। उनके अनुयायियों में नाना प्रकार के लोग सम्मिलित थे। उनके सिद्धान्त को बिना समझे भी कापाय वस्त्र धारण करते थे। फलस्वरूप क्या हुआ कोई-कोई नियमों का भी उल्लंघन करते थे। भिक्षु-समाज में ऐसे वातावरण को देख कर लोगों में भ्रम पैदा हो गया था। एक दिन गौतम बुद्ध राजगृह में विचार रहे थे। एक ब्राह्मण ने उनसे पूछा—“भन्ते! क्या आप के सब शिष्य आपका अनुकरण करते हैं?”

“कुछ करते हैं कुछ नहीं करते हैं।”

“यह कैसी बात है कि आप के शिष्य भी आपका अनुकरण नहीं करते?”

“ब्राह्मण! मेरा काम केवल रास्ता दिखा देना है। कोई उसपर चलता है, कोई नहीं चलता।” और उन्होंने यह भी कहा—

अत्तनाव कतं पापं अत्तनाव संकिलिस्सति।

सुद्धि असुद्धि पच्चत्तं नाञ्जमञ्जं विसोधये ॥

अर्थात् अपने किये हुए पाप से अपने ही दुःख भोगना पड़ता है। शुद्धि-अशुद्धि अपने ही द्वारा होती है, दूसरा कोई एक दूसरे की शुद्धि नहीं कर सकता।

इसका तात्पर्य यह न समझना चाहिए कि सभी को बुरा काम करने की स्वतंत्रता है। जैसा चाहे वैसा करे। ऐसी बात नहीं है। बुद्ध-संदेश के अनुसार यथावादी तथा-कारी होना अनिवार्य है। पवित्र चरित्र होना परोपदेशी के लिए परमावश्यक है, परन्तु वातावरण ऐसा हो जाता है कि मनुष्य को विवश होकर बुरा काम करना पड़ता है। इसलिए ऐसे वातावरण को नष्ट करने का प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। उदाहरण के लिए चीन को देखिये।

आज से सात-आठ वर्ष पहले वहाँ भी समाज में भ्रष्टाचार का साम्राज्य था। सभी आचार-हीन-से हो गये थे। इससे देश में परिवर्तन आ गया। मतलब साम्यवादी शासन आ गया। अब वहाँ का वातावरण शान्ति की ओर जा रहा है। सभी को अच्छा मनुष्य बनने की शिक्षा दी

जा रही है कि दूसरे व्यक्ति जैसे भी हों अपने पवित्र बनो। “आप भला है तो जग भला है” वही चीनियों का विचार है। इससे सभी उच्च आदर्श-पथ पर चलने को प्रयत्न करते हैं। तब क्यों समाज में शान्ति नहीं आयेगी। वास्तव में चीनी साम्यवादी होने पर भी भगवान् बुद्ध के सच्चे अनुयायी हैं। वे धर्म को नहीं अपनाते, बौद्ध-विचार को अपनाते हैं और मानव-मानव में भेद नहीं मानते क्योंकि भगवान् बुद्ध का उपदेश है—

न परेसं विलोमानि न परेसं कताकतं ।
अत्तनोव अवेक्खेय्य कतानि अकतानि च ॥

भगवान् बुद्ध के शील और विचार

श्रामणेन नागसेन

जिस मनुष्य के शील तथा विचार श्रेष्ठ हैं, वही श्रेष्ठ है, वही महान् है। मनुष्य में शील का अभाव, उसके जीवन की निस्सारता है और श्रेष्ठ विचारों के अभाव में शील-सम्पन्न रहते हुए भी वह विकास करने में असमर्थ रहता है। अन्धा मनुष्य चक्षु के न होने से किसी वन से नहीं गुजर सकता और लँगड़ा पैर के कारण। अन्धा लँगड़े को ऊपर बैठकर परस्पर सहयोग से दोनों वन को पार कर सकते हैं। इसी प्रकार शील तथा विचार द्वारा मनुष्य जीवन की प्रत्येक समस्या का अन्त कर सकता है। शील के साथ विचार और विचार के साथ शील का होना सोने में सुगन्ध की भाँति महत्वपूर्ण है। शील व्यक्ति का आधार है। शील ही के दुर्ग पर खड़ा होकर मनुष्य अपनी तथा दूसरों की रक्षा करने में समर्थ हो सकता है। नाना प्रकार के तुच्छ विचारों में से, कुमार्ग-आरुढ़ हुए मनुष्यों को वह मेधावी शील-सम्पन्न हो, अपनी विचार-शक्ति से सन्मार्ग की ओर प्रेरित कर सकता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि भगवान् बुद्ध की शिक्षा का सार इन तीन शिक्षाओं में निहित है— शील, समाधि तथा प्रज्ञा। इसको शिक्षात्रय कहते हैं। भगवान् बुद्ध की शील-विशुद्धि के ही कारण उनको निष्कलंक

अर्थात् दूसरों ने क्या किया, क्या नहीं आदि पर न ध्यान दे। अपने किये हुए काम पर ध्यान दे कि वह काम अच्छा है या बुरा। यही विचार आज चीनियों में है। सच-मुच भगवान् बुद्ध कितने आकर्षक और मार्ग-प्रदर्शक हैं। उन्होंने सम्यक् मार्ग को बतला दिया कि इसपर चलने से कल्याण होगा, किन्तु उन्होंने ऐसा कभी जोर देकर नहीं कहा कि तुम्हें इस मार्ग पर ही चलना होगा। वे व्यक्ति की विभिन्न प्रवृत्तियों को जानते थे और उचित मार्ग का प्रदर्शन करते थे। वे एक महान् शास्ता एवं विश्वशान्ति के उपदेशक भी थे। वे ही हमारे भी सर्वोत्तम शास्ता हैं।

कहा जाता है। उनके जीवन में अनेक बार बहुत ही भयानक स्थितियाँ उत्पन्न हुई, और उन्होंने उनका सामना किया, उनसे तनिक भी कम्पायमान नहीं हुए। इसमें सन्देह नहीं कि भगवान् के शील को देखकर उस समय मनुष्य उनसे प्रभावित होते थे और इसी कारण उनका यश फैला हुआ था। उन्होंने आयुष्मान् आनन्द के पूछने पर कहा—

न पुष्प गन्धो पटिवातमेति
न चन्दनं तगर मल्लिका वा ।
सतञ्च गन्धो पटिवातमेति
सन्धा दिसा सप्पुरिसो पवाति ॥

अर्थात्—पुष्प की गन्ध हवा के विपरीत नहीं जाती तथा चन्दन, तगर और चमेली की गन्ध भी हवा के विपरीत नहीं जाती; परन्तु सत्पुरुषों की गन्ध हवा के विपरीत भी जाती है, सत्पुरुष सभी दिशाओं में सुगन्ध बहाते हैं।

चन्दनं तगरं वापि उपपलं अथ वस्सिकी ।
एतेसं गन्धजातानं सीलगन्धो अनुत्तरो ॥

अर्थात्—चन्दन, तगर, कमल तथा जूही इन सभी की सुगन्धों से शील की सुगन्ध उत्तम है। हिंसा, चोरी

भगवान् बुद्ध के शील और विचार

२७७

तथा झूठ से लेकर उग्रोत्तिष-पेशा, जादू-मन्त्र दिखाना तथा अंग विद्या, स्वप्न-विद्या या अन्य इस प्रकार की विद्याओं से जीवन बिताना भी भगवान् बुद्ध ने शील के दोष बताए हैं। जितनी भी शील की संज्ञाएँ हो सकती हैं, भगवान् बुद्ध में वे सब विद्यमान थीं।

जब मनुष्य शील से युक्त हो तो उसके विचार-सम्पन्न होने की बात आती है। मनुष्य के विचार किसी भी सीमा से सीमित नहीं होने चाहिए। विचारों की जड़ समय के प्रभाव से अक्षुण्ण तथा पक्षपात के पंक से ऊपर होकर संकीर्णता के बन्धन से मुक्त होने चाहिए। विचारों का आधार अनुभव, वास्तविकता तथा बहुजन-हिताय-सुखाय होना चाहिए। शुष्क कल्पना अथवा केवल तर्क-संगत होने की गन्ध तक भी उनमें नहीं होनी चाहिए। पृथ्वी पर विचारक होते रहते हैं वे अपने विचार-बल द्वारा मानव-समाज को एक दृष्टि देकर उसके रुख को मोड़ने की क्षमता रखते हैं; परन्तु महत्त्व इस बात में है कि वहाँ किसी विचारधारा से जो समाज में परिवर्तन आया है वह किस हद तक लाभदायक है तथा उसमें कितनी सजीवता है। जब हम भगवान् बुद्ध को एक विचारक के रूप में देखते हैं तो हमें मालूम होता है कि किस प्रकार उन्होंने मानवता को अपनी विचार-धारा में बहा-कर एक सुनिश्चित और सुदृढ़ आधार पर लाकर खड़ा कर दिया है।

निस्सन्देह, यदि कोई मनुष्य निष्पक्षभाव से भगवान् बुद्ध के विचारों का मनन करेगा तो वह उन्हें अपना शास्ता स्वीकार करेगा। यह स्वाभाविक ही है, क्योंकि भगवान् बुद्ध के विचार किसी प्रकार की सीमा में नहीं बँधे हैं। उन्होंने मानव-जाति की समस्या पर विचार किया था। महाभिनिष्क्रमण से पहले उनका हृदय मानव की प्रत्येक उलझन को देख कर ही तो कम्पित हुआ था, राज्य-सुख-भोग को इसीलिए तो छोड़ा था। उसका निराकरण उन्होंने किया, तो फिर क्यों न उनके विचार मनुष्य पर प्रभाव डालेंगे। धक्कता हुआ हृदय उनके विचारों से शान्त होता है।

भगवान् बुद्ध के कभी वचन को ग्रहण, कर कोई भी अशान्त मनुष्य शान्ति लाभ कर सकता है। भगवान् का यही सिंहनाद था—'भिक्खुओ ! मैं तुम्हें दो ही बातें

सिखाता हूँ—दुःख और दुःख से मुक्ति। तभी तो यह सम्भव है कि जीवन की हर समस्या का समाधान बुद्ध-वचन कर सकता है। आर्थिक, मानसिक, राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक सभी समस्याएँ भगवान् बुद्ध की विचारधारा द्वारा हल की जा सकती हैं। क्योंकि मनुष्य के दुःख अनेक प्रकार के हैं इसलिए भगवान् ने भी जैसी की तैसी औषधि दी है। प्रत्येक पहलू से उन्होंने धर्म को प्रकट किया है इसीलिए महाराजा अशोक ने कहा है कि भगवान् ने जो कुछ कहा है, सब अच्छा ही कहा है। भगवान् का धर्म लड्डू की तरह चारों तरफ से मीठा है।

पहला विचार, जो भगवान् बुद्ध ने मनुष्य-जाति के सम्मुख रखा वह है 'मध्यम-प्रतिपदा' यह कोई यूँ ही नहीं बताया गया है। राज-भोग और छः साल कठिन निरर्थक तपस्या के परिणाम को अनुभव करके इसका आविष्कार किया गया है। यह विचार बालू की दीवार नहीं, यह एक सचाई है; जो कि उत्थान के लिए एकाकी मार्ग है। भगवान् ने स्वयं कहा है कि यह आँख खोल देनेवाला मार्ग है। मध्यम-प्रतिपदा हैः—सम्यक् दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यक्-वचन, सम्यक्-कर्मान्त, सम्यक्-आजीविका, सम्यक्-व्यायाम, सम्यक्-स्मृति तथा सम्यक्-समाधि। यह वह मार्ग है जिसको कोई भी मनुष्य किसी भी देश का आचरण कर अपना भला कर सकता है। सबसे अधिक महत्त्व की बात यह है कि इस मार्ग में मनुष्य को किसी प्रकार के अन्ध-विश्वास की आवश्यकता नहीं। किसी देवता अथवा ईश्वर की दासता की कल्पना की आवश्यकता नहीं।

दूसरा विचार भगवान् बुद्ध ने यह रखा कि मनुष्य अपना स्वामी आप है। उन्होंने मनुष्य को स्वतन्त्र विचार करने के लिए प्रेरित किया। कालाम सूत्र में उनके इस विचार की गम्भीरता का पता लग जाता है वहाँ उन्होंने कहा है कि मनुष्य को किसी बात को इसलिए स्वीकार नहीं करना चाहिए कि वह किसी धर्म-ग्रंथ में लिखी है, या बहुत आदमी उस बातको मानते हैं, परम्परा से चली आ रही है अथवा हमारे कोई गुरु आदि कहते हैं; यहाँ तक कि वह तर्क-संगत हो। भगवान् ने कहा कि तुम स्वयं उसको अपने अनुभव की कसौटी पर कसो, यदि वह तुम्हारे लिए और बहुजन के लिए अच्छी है, तो स्वीकार करो, नहीं तो

मत करो। इसीसे उनके विचारों की सजीवता का ज्ञान होता है। उनके विचार सब दोषोंसे रहित हैं। भगवान् ने मनुष्य को अपने कृत्याकृत्य का मनुष्य को ही उत्तरदायी सिद्ध किया है। वह स्वयं अपनी भलाई के लिए विचार सकता है और सन्मार्ग पर चल कर अपना कल्याण कर सकता है। कोई दुनिया की दूसरी शक्ति उसको शान्ति नहीं दे सकती—

अत्तना व कतं पापं अत्तना संकिलिस्सति ।

अत्तना अकतं पापं अत्तना' व विमुज्झति ।

सुद्धि असुद्धि पच्चत्तं नाञ्जो अञ्जं विसोधये,

अर्थ—अपने से किया पाप अपने को मलिन करता है, स्वयं पाप न करे तो स्वयं शुद्ध रहता है। शुद्धि तथा अशुद्धि सबकी अलग-अलग है, दूसरा-दूसरे को शुद्ध नहीं कर सकता।

वास्तविकता यह है कि भगवान् बुद्ध का अनुगामी सदैव अपने अन्दर जागरूक रहता है, क्योंकि वह जानता है कि कोई ईश्वर नहीं, जो माफ कर देगा या दण्ड देगा प्रत्युत वह स्वयं अपने कर्मका प्रतिवेक्षण करता है, वह जानता है कि उसके किए कर्म का विपाक ही उसके सुख-दुःख का कारण हो ता है। भगवान् बुद्ध ने मानव को अपने स्वयं के कल्पित ईश्वर की दासता से मुक्त कर उसको कंधे के भार से रहित कर सच्चे अर्थ में सचेत किया है। इस विचार-देन से भगवान् द्वितीय विचार-दायक हैं।

दार्शनिक-क्षेत्र में भगवान् बुद्ध ने विश्व के अन्य दर्शनों को रद्दी की टोकरी में डाल दिया है। उनके ज्ञान को केवल शब्दों का जंजाल मात्र बताया है। उनके तर्कों को सार-रहित ठहराया है। कार्य-कारण (प्रतीत्यसमुत्पाद) के भेद को खोल कर मानव की सब शंकाओं का समाधान किया है। विश्व की वास्तविकता को उखाड़ कर नेत्रवाले आदमी के सम्मुख रख दिया है उन्होंने सिद्ध कर दिया है कि विश्व का सार निस्सारता में है। यह विचार केवल विचार मात्र नहीं, प्रत्युत वास्तविकता है, जिसको प्रत्येक आँखवाला आदमी देख सकता है, समझ सकता है और यहाँ तक कि अनुभव कर सकता है। यह कार्यकारण वह सचाई है जिसको विज्ञान की संज्ञा दी जा सकती है। यह इसी सचाई के ज्ञान के अभाव का कारण है कि यूरोप में

एक विद्वान् वैज्ञानिक ने जब यह सिद्ध किया कि पृथ्वी गोल है और घूमती है तो बाईबिल के भ्रद्बालुओं ने उस पर आफत ढाई और उसके सिद्धांतों को तो धधकती ज्वाला में जला कर भस्म कर दिया। एक नहीं, सहस्रों ऐसी घटनाएँ हैं, जिनसे इस बात का पता चलता है कि इस सचाई की अनभिज्ञता से मानवता को कितनी ठेस पहुँचती है, और मनुष्य अन्धविश्वास का शिकार बनता है। भगवान् बुद्ध से पहले इस पृथ्वी पर इस नेत्र को देनेवाला, कि संसार केवल कार्य-कारण का समूह मात्र है पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ।

न हेत्थ देवो ब्रह्मा वा संसारस्सत्थि कारको ।

सुद्धधम्मा पवत्तन्ति हेतुसम्भार पट्ठथा ॥

अर्थ—कोई संसार का कर्ता देव या ब्रह्मा नहीं है, हेतु-प्रत्यय के कारण शुद्ध धर्म मात्र प्रवर्तित हो रहे हैं।

कम्मस्स कारको नत्थि, विपाकस्स च वेदको ।

सुद्धधम्मा पवत्तन्ति, एवेतं सम्मदस्सनं ॥

अर्थ—कर्म का कर्ता नहीं है और न विपाक का भोगने वाला। केवल धर्म (=संस्कार) मात्र प्रवर्तित होते हैं—इस प्रकार जाना सम्यक् दर्शन है।

आज विज्ञान-वेत्ता भगवान् बुद्ध के बुद्धत्व को जानने लगे हैं। यही कारण है कि विज्ञान-समुन्नत-पाश्चात्य विचारक बुद्ध की ओर आकर्षित हो रहे हैं।

भगवान् बुद्ध सिंह-स्वभाव के थे; कुक्कुर स्वभाव के नहीं थे। सिंह की ओर यदि कुछ फेंका जाय तो उस फेंकी वस्तु पर ध्यान नहीं देगा, बल्कि जिधर से वह वस्तु आई है उसकी ओर दौड़ेगा जब कि कुक्कुर उस फेंकी वस्तु पर ही चिपटने लगता है। यह वह विचार है जिससे भगवान् ने हर समस्या के मूल कारण का पता लगाया है। यह विचार उनकी अनोखी देन है। इसके अनुसार फल पर विचार न कर फल के कारण पर मन को केन्द्रित करके उस कारण को ही समाप्त करना चाहिए। चोर को न मारे चोर की माँ को मारे। इस सचाई को दृष्टि में रख कर भगवान् ने कहा भी है—

वनं छिन्दथ मा रुक्खं वनतो जायते भयं ।
छेत्त्वा वनञ्च वनथञ्च निव्वना होथ भिक्खवो ॥

सुरापान का त्याग

२७९

अर्थ:—भिक्षुओ ! वन को काटो, वृक्ष को मत, वन से भय उत्पन्न होता है। वन और झाड़ को काट कर वन रहित हो जाओ। प्रत्येक बात का कारण खोजते-खोजते भगवान् बुद्ध ने बताया कि सब कुछ, सारा संसार कारण पर आश्रित है और विशेषता यह है कि किसी एक कारण पर आश्रित नहीं बल्कि अनेक कार्य अनेक कारणों पर आश्रित है—

एकं न एकतो इध नानेकमनेकतोपि नो एकं ।
फलमत्थि, अत्थिपन एकहेतु फलदीपने अत्थो ॥

अर्थ:—कोई एक फल यहाँ एक नहीं है। अनेक भी एक से नहीं हैं। अनेक से भी एक नहीं है। एक-हेतु-फल के प्रकाशन में अर्थ(=प्रयोजन) है।

इस प्रकार अनेक विचारों पर मनन करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भगवान् बुद्ध अनुपम मनो-वैज्ञानिक, वैज्ञानिक तथा विचारक हैं और इन सभी गुणों के होने पर फिर शील-सम्पदा-युक्त हैं, जिससे वे मानव मात्र के लिए एक ऐसे आदर्श हैं, जिसकी समता विश्व में कोई नहीं रखता।

सुरापान का त्याग

श्री प्रेमचन्द तैत्रिय

बौद्धकाल से पूर्व ब्राह्मणों का ही सर्वत्र मान था। वे जैसा कहते थे राजा से लेकर रंक सभी उसे मानते थे। वे यज्ञों में पशुबलि और मद्य का भी उपयोग करते थे, परन्तु जब भारतवर्ष में भगवान् बुद्ध एवं उनके अमृतमयी धर्म का प्रादुर्भाव हुआ तो उन्होंने हिंसावृत्ति को बुरा बताया और अर्पने धर्म के अनुसार मद्यपान को दोष ठहराया। भगवान् के असंख्य शिष्यों ने उनकी आज्ञाओं को शिरोधार्य करके उनका प्रचार किया—चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने शासन में मांसाहार करना, मद्यपान करना, बुरे आचरण करना, असत्य बोलना अपराध घोषित कर दिये थे। भगवान् बुद्ध के शिष्य कौडिन्य ने तो मद्यपान की दूकानों पर उत्तम स्वादिष्ट भोजन रखवा दिये थे। जब कोई व्यक्ति मदिरालय में पहुँचता था तो उसको पहले सुगन्धित फूलों के बीच में सजाकर भोजन पात्र प्रस्तुत किया जाता था। ये भोजन प्रत्येक क्रतु के अनुसार अलग-अलग भाँति के हुआ करते थे। और इनका मूल्य भी बहुत कम होता था। वह व्यक्ति इस पात्र को ही ग्रहण करता था और शराब-सेवन करना धीरे-धीरे छोड़ता चला जाता था। ब्राह्मणों को तो मद्य छूने पर भी दण्ड दिया जाता था। जो धनवान् व्यक्ति शराब की दूकान पर आता था उसकी सम्पत्ति, उसके कण्ठहार, कुण्डल, अँगूठी आदि आभूषणों की जाँच की जाती थी। यदि उपरोक्त आभूषण

चोरी के सिद्ध होते, तो सब राज्यकोष में जमा होते थे और दूकानदार को भी उस आभूषण के मूल्य के बराबर अर्थदण्ड दिया जाता था।

आगे चलकर प्रियदर्शी महान् सम्राट् अशोक ने चन्द्रगुप्त के कार्य को पूरा किया, वह स्वयं भी मदिरा पान करनेवालों की निगरानी रखते थे। सम्राट् अशोक ने अपनी राजसत्ता का प्रयोग बौद्धधर्म के नियमों का पालन कराने में किया। बौद्धधर्म के प्रचारार्थ उन्होंने अपने पुत्र महेन्द्र एवं पुत्री संघमित्रा को श्रीलंका में भिक्षु बनाकर भेजा था। उन्होंने अपने शासन के तीन वर्षों में मद्य और मांस का बड़ी कठोरता से दमन किया। यह सुधार इतनी दृढ़ता से किया गया था कि अशोक के बाद सैकड़ों वर्षों तक भी मद्य और मांस व्यापक नहीं हो सके।

सन् ३९९ ईस्वी में जब प्रसिद्ध चीनी यात्री 'फाहियान' भारत में यात्रा करने आया तब उसने बहुत प्रसन्न होकर अपनी यात्रा पुस्तक में यह लिखा है—“भारतवर्ष के निवासी न तो जीवहत्या करते हैं, न मद्य अथवा मादक पदार्थ का सेवन करते हैं वे मृत-जीवों का व्यवसाय भी नहीं करते, वहाँ मद्य की कोई दूकान भी सुझे देखने को नहीं मिली।”

दूसरा प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएनसांग भारत में सन् ६३० ई० में आया था और १६ वर्ष तक यहाँ रहा।

वह अपनी यात्रा-पुस्तक में लिखता है—“मैंने राजा हर्षवर्धन से लेकर साधारण किसान तक के जीवन का समीप से अध्ययन किया है, मैंने सबको शुद्ध, पवित्र तथा मितव्ययी पाया।” यह सब भगवान् बुद्ध के अहिंसा धर्म का प्रताप था।

भगवान् बुद्ध ने कहा था—“वेश्या और सुरापान दोनों ही अप्रिय हैं, दोनों ही त्यागने योग्य हैं। वेश्या धन का और सुरा परिवार का हरण करके मनुष्य को ऐसा बना देती है कि उसका मूल्य शून्य के समान भी नहीं रह जाता। मनुष्य समाज-कल्याण के लिये नैतिक तथा सामाजिक दृष्टि से इस अभिशाप का अन्त करना ही चाहिये। संसार में यह मनुष्य मात्र का प्रसिद्ध शत्रु है जो प्रलोभन का हेतु है। बुद्ध ने कहा—“मनुष्यो! तुम सिंह के सामने जाते भयभीत न होना,—वह पराक्रम की परीक्षा है, तुम तलवार के नीचे सिर झुकाने से भयभीत न

होना—वह बलिदान की कसौटी है, तुम पर्वत शिखर से पाताल में कूद पड़ने से भयभीत न होना—वह तप की साधना है, तुम दहकती ज्वालाओं से विचलित न होना—वह स्वर्ण-परीक्षा है; परन्तु सुरादेवी से सदैव भयभीत रहना—क्योंकि यह पाप और अनाचारों की जननी है। जिस राजा के राज्य में सुरादेवी आदर प्राप्त करेगी, वह राज्य काल-वेदि पर नष्ट होगा। वहाँ न औषधि उपजेगी, न अनाज होगा, न वृद्धि होगी, यह महाअभिशाप है।” आइये हम प्रतिज्ञा करें :—

सुरामेरय-प्रज्ज-पमाद्वहाना वेरमणी
सिक्खापदं समादियामि।

अर्थात्—मैं सुरा, मेरय आदि नशीली वस्तुओं के सेवन से विरत रहने की प्रतिज्ञा करता हूँ।

बौद्धदर्शन में जीवन का व्यावहारिक निरूपण

श्री शालिग्राम सिंह

“अन्य धर्मों की भाँति ही बौद्ध धर्म की शिक्षाओं का सर्व प्रथम सार है—नैतिक नियमों के अनुसार जीवन-यापन करना। किन्तु बौद्धधर्म की सबसे बड़ी विशेषता है उसके सिद्धान्त नैतिकता से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। जिज्ञासु केवल नैतिक पहलू पर ही विचार करते हैं परन्तु जीवन का सिद्धान्त तभी साकार होता है जबकि हम जीवन का वास्तविक अर्थ समझ लेते हैं। बौद्ध धर्म में जीवन-यापन का सार केवल “बौद्ध धर्मके स्मरणीय सिद्धान्तों” के अन्तर्गत निहित है। उसकी तीन श्रेणियाँ हैं—नैतिकता, साधन तथा पूर्णज्ञान। ये उच्च मार्ग हैं और इनका अनुसरण करनेके पश्चात् ही उनका महत्त्व समझ में आ सकता है।”

कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के अध्यापक डा० ई० जे० थामस की उपर्युक्त टिप्पणी से चाहे और कुछ भले ही प्रकट न हो किन्तु यह अवश्य प्रकट होता है कि बौद्ध धर्म जन-जीवन का नियन्त्रक है, जनसाधारणका धर्म है। यदि

धर्म का अर्थ “सुनिश्चित सिद्धान्तों के आधार पर जीवन को पूर्णतया—ब्रह्म के उच्चारण से जिसका व्यक्तिकरण होता है—की ओर अग्रसर करने वाली व्यवस्था है, तो बौद्ध धर्म पूर्ण धर्म है और उसकी साधना साधक को पूर्णत्व की ओर अग्रसर करती है।

बौद्ध धर्म की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि वह किसी व्यक्ति अथवा ग्रन्थ पर विश्वास न करके तर्क पर विश्वास करता है। तर्ककी कसौटी पर खरे उतरने वाले सिद्धान्त को ही अंगीकार करनेका आदेश देता है। भगवान् बुद्ध ने स्वयं एक स्थान पर आदेश दिया है तुम किसी बात पर केवल इसलिए विश्वास न करो कि तुमने उसे किसी से सुना है। केवल इसलिए विश्वास मत करो कि वह बात पुरानी परम्परा से चली आ रही है। केवल इसलिए विश्वास मत करो कि उसके कहनेवाले अनेक लोग हैं। केवल इसलिए विश्वास मत करो कि तुम्हारे धर्म-ग्रन्थोंमें लिखी हुई है। केवल इसलिए विश्वास मत करो कि उसके

कहने वाले तुम्हारे गुरुजन हैं। प्रत्येक बात को बुद्धिपूर्वक विचार कर देखो कि वह तुम्हारे तथा दूसरों के लिए कल्याणकारी है या नहीं। यदि कल्याणकारी ही प्रतीत होती है तो उसे स्वीकार करो, उसके अनुसार कार्य करो और उसके अनुसार आचरण करो।

अन्धानुकरण से मुक्ति

इस प्रकार बुद्धि के आधार पर किसी बात की प्रामाणिकता अथवा अप्रामाणिकता के निर्णय करने का परिणाम यह होता है कि व्यक्ति किसी मत या पंथ विशेष का अन्धानुयायी नहीं बन जाता। इसके अतिरिक्त उसे अपने मत के प्रति इतना मोह भी नहीं हो पाता कि वह केवल अपने मत को सत्य मानकर अन्य मतवलम्बियों से झगड़ता रहे। भगवान् बुद्ध ने इस प्रकार के झगड़ों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए एक सुगम मार्ग सुझा दिया है—सृष्टि के आदि काल से बोधिसत्व भिन्न-भिन्न रूपों में जन्म ग्रहण करते हैं और आगे भी करते रहेंगे। संसार में जो कुछ सत्यकथन है वह सब बोधिसत्वका ही है; जातक कथाओं का आधार भी सत्य निरूपण की यही प्रणाली है। जीवन के सत्तों कथनात्मक रूप में प्रस्तुत करते हुए अज्ञान-अन्धकार में भटकते हुए जीवों को सत्य का मार्ग दिखाने वाले प्राणी को बोधिसत्व का अवतार स्वीकार किया गया है।

इस रूप में सत्य की कोई सीमा निर्धारित नहीं की गयी है, उसकी अभिवृद्धि के लिए चिरन्तन कपाट खोल दिये गये हैं। इतना ही नहीं भगवान् बुद्ध सत्य को आंशिक से पूर्णत्व की ओर अग्रसर होता हुआ मानते थे तथा अपेक्षाकृतपूर्ण सत्यको अंगीकार करने में बुद्धिमत्ता आँकते थे। उस बात को उन्होंने एक कथा के द्वारा स्पष्ट किया है—

“दो मित्र धन कमाने जा रहे थे। मार्ग में उन्हें सन का ढेर पड़ा दिखाई दिया। दोनों ने सन का एक-एक

गट्टर बाँध लिया। आगे बढ़े तो उन्हें सुतली का ढेर दिखाई दिया। एक ने तो सन का गट्टर वहीं पटक कर सुतली का गट्टर बाँध लिया मगर दूसरे ने मोहवश सन के गट्टर को लादे रहने में ही गौरव और संतोष का अनुभव किया। इस प्रकार रास्ते भर उन्हें टाट, कपास, वस्त्र, ताँवा, राँगा, सीसा, चाँदी और स्वर्ण के ढेर मिलते गये। पहले ने तो एक को छोड़कर दूसरे का गट्टर बाँधा और अन्त में उसके पास केवल स्वर्ण ही रहा किन्तु दूसरे ने सन को छोड़कर कुछ भी नहीं लिया। उसे सन से मोह हो गया, क्योंकि वह उसे बहुत समय से ला रहा था।”

इस कथा से स्पष्ट है कि श्रेष्ठ मार्ग दिखायी देने पर पूर्ववर्ती अश्रेष्ठ अथवा कम श्रेष्ठ मार्गको त्याग देना चाहिए। ऐसी अवस्था में मतमतान्तर के झगड़े कैसे उत्पन्न हो सकेंगे? आज सभी क्षेत्रों में—चाहे व्यक्तिगत हों चाहे राष्ट्रीय और चाहे अन्तर्राष्ट्रीय—संघर्ष दिखाई देता है। इस संघर्ष का सर्व प्रमुख कारण है स्वयं को ठीक मानना तथा दूसरे को प्रत्येक अवस्था में गलत। यदि भगवान् बुद्ध के द्वारा प्रदर्शित मार्ग का अनुसरण कर हम सब ‘स्व’वाद की हठवादिता छोड़कर प्रत्येक मत की तलहटी से सत्य को खोज कर निकाल सकें तो प्रतिक्षण शान्ति के निकट पहुँच सकें। क्या विश्व के विभिन्न विरोधी गुट इस बात पर विचार कर सकेंगे? राष्ट्रसंघ में जिस प्रकार आजकल एक-दूसरे का दृष्टिकोण सम-



वैशाली का
अशोक-स्तम्भ

झने का प्रयास किया जा रहा है, उसका श्रेय भारत को है, जिसकी नीति बुद्ध-प्रणीत “पञ्चशील” पर आधारित है।

धर्म और आचरण

धर्म कोई विश्वास अथवा आश्रय नहीं है, वह तो आचरण में लाने की वस्तु है। धर्म के अनुकूल आचरण किये बिना धर्म पर विश्वास प्रकट करने का कोई अर्थ नहीं। भगवान् बुद्ध ने स्वयं कहा है—‘तुम्हें किंचि आतर्प्य,

अस्वातारो तथागता' अर्थात् काम तो तुम्हें ही करना होगा, तथागत तो केवल मार्ग बताने वाले हैं।

बुद्ध ने धर्म को वेड़े की उपमा देते हुए उसे भवसागर को पार करने का सहारा बताया है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है यदि कोई मनुष्य वेड़े से नदी पार करने के पश्चात् यह सोचकर कि वेड़े ने बड़ी सहायता की है, सिर पर लादे-लादे फिरे। तो गाँव वाले उस व्यक्ति का उपहास ही करेंगे। ठीक इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति धर्म का आचरण किये बिना ही स्वयं को उसका अनुयायी बतावे तो उसका कथन भी उतना ही हास्यास्पद होगा।

विद्वानोंका कथन है कि बौद्ध धर्म के पतन का मुख्य कारण भिक्षु-भिक्षुणियों की आचार-भ्रष्टता रही। किन्तु क्या भगवान् बुद्ध की तीक्ष्ण दृष्टि इस सत्य का अनुशीलन करने में असमर्थ रही थी। उन्होंने अपने परम शिष्य आनन्द से एक बार कहा था "आनन्द! यदि स्त्रियों को संव में प्रवेश की अनुमति नहीं मिलती तो बुद्ध धर्म सुचिर-

कालीन रहता, बुद्ध नियम एक सहस्र वर्षों तक स्थिर रहता। परन्तु क्योंकि अब उन्हें अनुज्ञा मिल गयी है, यह केवल पाँच सौ वर्ष जीवित रह सकेगा।"

इसका अभिप्राय यह नहीं कि भगवान् बुद्ध स्त्रियों का आदर नहीं करते थे। इसका अभिप्राय केवल इतना है कि वह स्त्री-पुरुषों का साथ-साथ रहना आचरण शुद्धता की दृष्टि से अनुपयुक्त समझते थे।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्टतः लक्षित होता है कि बौद्ध धर्म सरल है, वितण्डावादसे विहीन है, मतान्धता से शून्य है, तर्क प्रधान है तथा व्यवहारिक के साथ स्वाभाविक है। उसके अन्तर्गत न तो अस्वाभाविक रूप से शरीर को कष्ट देने का विधान है और न "ईश्वरीय साक्षात्कार की गवाँक्ति" दूसरे शब्दों में वह सामान्य से सामान्य व्यक्ति का धर्म होने की क्षमता रखता है और इसीलिए वह आज तक जीवित है। विश्वास है आज के युग में बौद्ध धर्म के उच्च सैद्धांतिक अधिष्ठान पर अधिष्ठित हो कर भारत पुनः विश्वशान्ति का शंख फूँक सकेगा।

रामतीर्थ ब्राह्मी तैल

(रजिस्टर्ड) स्पेशल नं० १ (औषधिगुक्त)

इसके इस्तेमाल से दिमाग में वृद्धि होती है। इससे बाल घुँघराले तथा काले होकर चमकीले होते हैं। गंजापन दूर कर नये बालों की वृद्धि होती है। स्मरण शक्ति तथा नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। गाढ़ी निद्रा आती है। प्रत्येक ऋतु में स्त्री-पुरुषों तथा बालकों को अपूर्व लाभ मिलता है।



बड़ी शीशी के लिए मय डाकखर्च और पैकिंग ५॥॥ का मनिआर्डर भेजें और ३॥॥ का छोटी के लिए। वी० पी० नहीं भेजी जाती।

श्री रामतीर्थ योगाश्रम

उमेशधाम, विन्सेन्ट, स्ट्रीट नं० २

दादर (सेण्ट्रल रेलवे) बम्बई १४

टेलिग्राम-प्राणायाम, दादर, बम्बई

फोन—६२८९९



वारासिवनी में १५००० व्यक्तियों ने धर्मदीक्षा ली

१६ मार्च को मध्यप्रदेश के बालाघाट जिलान्तर्गत वारासिवनी, भैरवगंज में प्रातः ९ बजे श्री यशवन्तराव अम्बेडकर की अध्यक्षता में सामूहिक बौद्धदीक्षा समारोह हुआ। सम्मेलन का उद्घाटन भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने किया। बुद्धवन्दना के पश्चात् उपस्थित लोगों को भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने बौद्धधर्म की दीक्षा दी। इस दीक्षा में लगभग १५००० लोग सम्मिलित हुए थे। सबने सहर्ष बौद्धधर्म ग्रहण किया।

सुश्री कुसुम मेश्राम ने स्वागत-गान गाया। स्वागत समिति के अध्यक्ष श्री ओंकारदास बोंबेर्ड ने उपस्थित नेताओं तथा दूर-दूर से आए हुए प्रतिनिधियों का पुष्पमाला से स्वागत किया। तत्पश्चात् स्वागत-समिति के मन्त्री श्री कृष्णकुमार तिरपुडे ने अपना भाषण किया। सम्मेलन में श्री हरिदास आवडे एम० एल० सी०, श्री पंजाबराव शंभरकर एम० एल० ए० (बम्बई), श्री भगवती प्रसाद मौर्य (अलीगढ़), कुमारी ईश्वरी देवी (आंध्र), श्री रामरतन जानोरकर (नागपुर) तथा अन्य नेताओं के बौद्धधर्म की विशेषताओं पर भाषण हुए।

सम्मेलन में छः प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए—
(१) सभी बौद्ध अपने को केवल बौद्ध ही कहें, 'नवबौद्ध' जैसे विषमताजनक शब्द का प्रयोग न करें। (२) बौद्धधर्म जाति-भेद से रहित है, अतः किसी से जाति, उपजाति नहीं पूछनी चाहिए। दूसरों के पूछने पर अपने लिए केवल 'बौद्ध' कहना चाहिए। (३) बौद्धों को विवाह-शादी में लड़की या लड़के के पक्ष से कुछ भी धन दहेज के रूप में नहीं लेना चाहिए और न तो अपनी पूर्व जाति में ही विवाह-शादी करने का विचार करना चाहिए। (४) जिले

एवं प्रदेश के प्रमुख ग्रामों में विहारों का निर्माण करना चाहिए और उसमें रहने वाले भिक्षुओं, श्रामणेरों अथवा अनागारिकों और धर्म-प्रचारकों के भोजनादि की व्यवस्था का भार उस ग्राम या क्षेत्र के बौद्धों को अपने जिम्मे लेना चाहिए। (५) आगामी ३ मई को बुद्ध जयन्ती समारोह पूर्वक सभी बौद्धों को मनानी चाहिए। (६) मध्य प्रदेश के अनेक स्थानों पर बौद्धों पर अत्याचार किए जा रहे हैं उन पर सरकार ध्यान देकर होने वाले अत्याचारों को रोकने का प्रयत्न करे।

सम्मेलन की सफलता के लिए संयोजक श्री कृष्ण-कुमार तिरपुडे, श्री ओंकारदास बोंबेर्ड, श्रामणेर धर्मरत्न, श्री आशाराम बन्सोड तथा श्री मेश्राम वकील बधाई के पात्र हैं।

कड़वण में दीक्षा समारोह—१७ जनवरी को वाखारी, तालुका कड़वण, जिला नासिक में १०,००० स्त्री-पुरुषों ने बौद्ध-दीक्षा ली। भिक्षु राष्ट्रपाल ने त्रिशरण और पञ्चशील दिया।

अफगानिस्तान के बौद्ध स्मारकों की सुरक्षा—२२ फरवरी को बंगलोर में महाबोधि सभा के भिक्षु बुद्ध-रक्षित को अफगानिस्तान के शाह जहीर ने आश्वासन दिया कि अफगानिस्तान में पाये जानेवाले बौद्ध स्मारकों को सुरक्षित रखा जायेगा।

आपने यह भी कहा कि संसार भर के सभी बौद्धों को अफगानिस्तान जाकर उन स्मारकों का दर्शन करने की सुविधा प्रदान की जायेगी।

श्रामणेर-दीक्षा—५ मार्च को सारनाथ के मूलगन्ध कुरी विहार में बरेली के श्री लालजी नामक एक तरुण ने

श्रामणेर-दीक्षा ली। दीक्षोपरान्त उसका नाम श्रामणेर उपाधि रखा गया। उक्त अवसर पर दीक्षा भदन्त शासनश्री महास्थविर ने दी। भिक्षु संघरत्न ने आचार्य-भार सम्माला और भदन्त जगदीश काश्यप ने उपदेश किया। श्रामणेर उपाधि ने सारनाथ में रहकर तीन मास तक बौद्धधर्म का अध्ययन करने के पश्चात् दीक्षा ली और पुनः धर्मप्रचारार्थ बरेली के लिए रवाना हो गए।

अन्त्येष्टि-संस्कार—५ मार्च को खड़गपुर निवासिनी श्रीमती मुँगाबाई उपासिका के श्री गोविन्द, श्री माधोराव काम्बडे तथा श्री रामलाल—इन तीनों पुत्रों ने अपनी दिवंगत माता का अन्त्येष्टि-संस्कार सारनाथ में दस भिक्षुओं द्वारा सम्पन्न कराया। बौद्ध विधि से अन्त्येष्टि संस्कार होने के पश्चात् उन्होंने संघ को चीवर तथा महाबोधि-सभा को २५) दान दिया। उसी दिन श्री रामलाल ने बौद्ध-दीक्षा ली। श्रीमती कुसुम बाई और श्री डोमा ने ५।=) सभा को प्रदान किये।

दलाईलामा का दान—दिल्ली विश्वविद्यालय को तिब्बत के महामान्य दलाई लामा ने १०० प्राचीन ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ भेजी हैं जो बौद्ध अध्ययन कक्ष के लिए उपहार स्वरूप गत मास में विश्वविद्यालय ने प्राप्त किया।

पुरस्कार—उत्तर प्रदेश के सूचना विभाग द्वारा आयोजित साहित्यिक प्रतियोगिता में 'सूर्योदय' नामक कहान पर धर्मदूत की सुपरिचित लेखिका एवं कवयित्री सुश्री घियावती मालविका को ५०) का तृतीय पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

विवाह-संस्कार—मार्च के प्रथम सप्ताह में खड़गपुर में श्री किसन राउर का विवाह सुश्री चम्पाबाई के साथ मथुरा काठी में हुआ। इस अवसर पर वर-वधु ने बौद्ध-दीक्षा ग्रहण की। श्री विठलराव कांबडे ने उनसे २२ प्रतिज्ञायें कराईं।

दीक्षा समाचार—खड़गपुर निवासी श्री रामाहुम ने अपनी मृतपत्नी की साप्ताहिक क्रिया के अवसर पर भिक्षु

विवेकानन्द से अपने दो पुत्र और पुत्र-वधुओं सहित बौद्धधर्म ग्रहण किया। श्री विठलराव कांबडे ने उनसे २२ प्रतिज्ञायें कराईं।

तेरहवीं शताब्दी में बौद्ध धर्म—तेरहवीं शताब्दी में धर्मस्वामी नामक एक तिब्बती लामा ने भारत के बौद्ध तीर्थों की यात्रा की थी और बुद्धगया, नालन्दा, सारनाथ आदि स्थानों में कुछ दिनों तक निवास भी किया था। उन्होंने अपनी यात्रा का पूरा विवरण लिखा था जिसका अनुवाद छप रहा है। उससे ज्ञात होता है कि तेरहवीं शताब्दी में भारत में बौद्ध और हिन्दू मिल-जुल कर रहते थे तथा भारत में बौद्ध धर्म की अच्छी अवस्था थी। यह सूचना प्रयाग में श्री अल्टेकर महोदय ने २७ मार्च को एक सभा में भाषण करते हुए दी।

सारनाथ में श्री देवर—कांग्रेस-अध्यक्ष श्री देवर भाई २४ मार्च को प्रातः ९ बजे सारनाथ आए। मूलगन्ध-कुटी विहार में भिक्षुओं ने सूत्र पाठ कर उन्हें आशीर्वाद दिया। भिक्षु जगदीश काश्यप ने भित्ति-चित्रों का परिचय कराया। भिक्षु संघरत्न ने महाबोधि सभा की ओर से उन्हें एक बुद्धमूर्ति तथा कुछ ग्रन्थ भेंट किए। उन्होंने दर्शक-पञ्जिका में लिखा—“आज हजारों वर्षों की याद आती है। हम उन्हीं के वंशज हैं, जिन्होंने भारत तथा मानवता को प्रकाश प्रदान किया। हम भगवान् बुद्ध को कभी न भूलें।”

डा० अम्बेडकर की सम्पत्ति सम्बन्धी समझौता—२८ मार्च को बम्बई में स्वर्गीय डाक्टर भीमराव अम्बेडकर की सम्पत्ति सम्बन्धी मुकदमे में उभय पक्ष में समझौता हो गया। इस समझौते के अनुसार श्रीमती डा० सविता अम्बेडकर (डा० अम्बेडकर की पत्नी) तथा श्री यशवन्तराव अम्बेडकर (डा० साहब के पुत्र) के मध्य सारी सम्पत्ति दो बराबर भागों में विभक्त हो जायेगी। स्मरण रहे कि यह मुकदमा बम्बई हाईकोर्ट में चल रहा था। डा० अम्बेडकर की अचल सम्पत्ति तीन लाख से अधिक मूल्य की है।

संयुक्त निकाय

दो भागों में

अनुवादक

भिक्षु जगदीश काश्यप

भिक्षु धर्मरक्षित

सुत्त-पिटक के तीसरे ग्रन्थ संयुक्त निकाय का हिन्दी अनुवाद दो भागों में प्रकाशित हो गया है। पृष्ठ संख्या क्रमशः ५२८ तथा ४४२। दोनों भागों का मूल्य क्रमशः ७) और ६) है।

बुद्धघोषकृत बौद्धयोग का उत्कृष्ट ग्रन्थ

विशुद्धि मार्ग

भिक्षु धर्मरक्षित

द्वारा हिन्दी में अनूदित

‘विशुद्धि मार्ग’ पालि-साहित्य का एक अमूल्य ग्रन्थ-रत्न है। इसमें बौद्ध-दर्शन की विवेचनात्मक गवेषणा के साथ योगाभ्यास की प्रारम्भिक अवस्था से लेकर सिद्धि तक की सारी विधियाँ सुन्दर ढंग से समझाई गई हैं। इस ग्रन्थ में बौद्धधर्म का कोई भी ऐसा अंग नहीं है जो अछूता हो। एक प्रकार से इसे बौद्धधर्म का विश्वकोश कहा जा सकता है। यद्यपि विशुद्धिमार्ग प्रधानतः योग-ग्रन्थ है, तथापि बौद्धधर्म का जैसा सुन्दर निरूपण इसमें किया गया है, वैसा अन्य किसी भी ग्रन्थ में प्राप्त नहीं है। योगियों के लिए तो यह गुरु के समान निर्देश करने वाला महोपकारी ग्रन्थ है।

यह दो भागों में मुद्रित हो गया है। पहले भाग में समाधि-निर्देश पर्यन्त ११ परिच्छेद हैं और दूसरे में शेष। पहला भाग ४३० पृष्ठों का है और दूसरा ३५०। दोनों के मूल्य क्रमशः १०) और ८) हैं। ग्रन्थ का आकार रायल है।

प्राप्तिस्थान :—

व्यवस्थापक, महाबोधि पुस्तक भण्डार,
सारनाथ, वाराणसी।

बौद्धधर्म के अमूल्य ग्रन्थ

दीघ निकाय

बुद्ध-वचनमृत का प्रथम अमृत। यह ग्रन्थ सुन्दर कागज पर छपा है। इसमें भगवान् बुद्ध द्वारा उपदिष्ट ३४ सूत्रों का प्राञ्जल हिन्दी भाषा में अनुवाद पढ़ सकेंगे। मूल्य ६) मात्र।

मज्झिम निकाय

यह प्रसिद्ध ग्रन्थ ६६६ पृष्ठों में छपकर उपलब्ध है। बौद्धधर्म की पूर्ण जानकारी के लिए इसका पढ़ना अत्यन्त आवश्यक है। सुन्दर कपड़े का जिल्द। मूल्य केवल ८)

संयुक्त निकाय

बुद्ध-वचनमृत का चतुर्थ अमृत। दो भागों में छप कर तैयार। पहले भाग का मूल्य ७) तथा दूसरे भाग का ६)। पृष्ठ-संख्या क्रमशः ५२८ तथा ४३८

विनय पिटक

यह भिक्षु संघ के नियमों को पूर्णरूप से जानने के लिए परम उपयोगी है। यदि बुद्ध-कालीन भारतीय शासन पद्धति का ज्ञान प्राप्त करना हो तो भी इसका अध्ययन परमावश्यक है। सुन्दर रंगीन कपड़े के जिल्द सहित। पृष्ठ संख्या ५५८। मूल्य ८)।

बुद्धचर्या

भगवान् बुद्ध का प्रामाणिक जीवन-चरित। ऐसा जीवन-चरित आज तक संसार की अन्य किसी भी भाषा में प्रकाशित नहीं हुआ है। पृष्ठ संख्या ६३०। मूल्य सजिल्द ८)। रजिस्टर्ड डाक-व्यय १)।

प्राप्ति स्थान:—

महाबोधि पुस्तक-भण्डार, सारनाथ, वाराणसी

हिन्दी में बौद्धधर्म की पुस्तकें

विशुद्धिमार्ग (पहला भाग)—भिक्षु धर्मरक्षित १०)	तुलसी के तीन पात—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन १)
विशुद्धिमार्ग (दूसरा भाग) " ८)	बौद्ध-चर्या-विधि—भिक्षु धर्मरक्षित १२)
दीर्घनिकाय—राहुल सांकृत्यायन ६)	थेरी गाथायें—भरतसिंह उपाध्याय १॥)
मज्झिम निकाय— " ८)	बुद्ध और बौद्ध साधक— " १॥)
विनय पिटक " ८)	धम्मपद—राहुल सांकृत्यायन १॥)
संयुक्त निकाय—भिक्षु ज० काश्यप और भिक्षु धर्मरक्षित प्रथम भाग ७), द्वितीय भाग ६)	बुद्धधर्म के उपदेश—भिक्षु धर्मरक्षित २)
अंगुत्तर निकाय (१ भाग)—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन ७)	बौद्ध विभूतियाँ— " १)
बोधिचर्यावतार—शान्तिभिक्षु १०)	लंका-यात्रा— " १॥)
धम्मपद (कथाओं के साथ)—भिक्षु धर्मरक्षित २॥)	नेपाल-यात्रा— " ४॥)
धम्मपद (गुटका)— " १)	कुशीनगर का इतिहास " २॥)
तथागत-हृदय " ॥)	पालि-पाठ-माला— " १)
पालि व्याकरण " २॥)	जातिभेद और बुद्ध— " ॥)
प्रथम बुद्ध-सन्देश " ॥)	तेलकटाह गाथा— " १२)
धम्मपद—अवधकिशोर नारायण १॥)	बौद्ध-शिशु-बोध— " १)
सुत्तनिपात—भिक्षु धर्मरत्न ३)	कुशीनगर-दिग्दर्शन— " १)
खुदकपाठ—भिक्षु धर्मरत्न १)	तथागत का प्रथम उपदेश— " १)
पालि महाव्याकरण—भिक्षु जगदीश काश्यप ६)	सारनाथ-दिग्दर्शन— " १)
थेर गाथा—भिक्षु धर्मरत्न ३)	बुद्धकालीन भारत का भौगोलिक परिचय ॥)
भगवान् बुद्ध की शिक्षा—देवमित्र धर्मपाल १-	पालि जातकावली—बटुकनाथ शर्मा २॥)
बुद्ध-जीवनी—वेदराज प्रसाद ॥॥)	बुद्ध-वचन—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन ॥)
बुद्धचर्या—राहुल सांकृत्यायन ८)	बुद्धवचनामृत—भिक्षु शासनश्री १)
तथागत—आनन्द कौसल्यायन १॥)	बौद्ध-कलाकृतियाँ—विद्यावती 'मालविका' ३)
बुद्ध और उनके अनुचर— " १॥॥)	श्रद्धा के फूल—(कहानी-संग्रह) " १२)
बौद्धचर्या पद्धति—बोधानन्द महास्थविर १॥॥)	बुद्ध-अर्चना—(कविता) " ३)
ओम् मणि पद्मे हुं—धर्मरक्षित और लोबजंग ॥)	पूणिमा—(कविता) " १२)
बौद्ध कहानियाँ—व्यथित हृदय १॥)	कामना—(कविता) " १२)
सारनाथ-वाराणसी—भिक्षु धर्मरक्षित १॥)	आदर्श बौद्ध महिलायें (पुरस्कृत) " १॥)
इतिवृत्तक—भिक्षु धर्मरक्षित ॥॥)	नारी-हृदय (कहानी) " १॥)
बौद्धयोगी के पत्र—भिक्षु धर्मरक्षित १)	बुद्ध-चरितावली—(सचित्र) " ॥)
भगवान् हमारे गौतम बुद्ध—प्रो० मनोरंजनप्रसाद— १)	महामानव बुद्ध—राहुल सांकृत्यायन २॥)
कपिलवस्तु-लुम्बिनी-दिग्द०—श्रीविजय श्रीवास्तव ॥)	बौद्धधर्म ही मानवधर्म—डॉ० भीमराव अम्बेडकर १)

नागरी लिपि में पालि ग्रन्थ

जातकट्टकथा—भिक्षु धर्मरक्षित १)	महावंसो—भिक्षु धर्मरक्षित ॥॥)
विशुद्धिमार्गदीपिका—धर्मानन्द कौशाम्बी ३॥)	धम्मचक्कप्पवत्तन सुत्त— " १॥)
नवनीत टीका— " २॥)	तेलकटाहगाथा— " १॥)
अभिधम्मसंग्रहो— " २॥)	सुत्तनिपात—भिक्षु धर्मरत्न ३॥)
पालि पाठ माला—भिक्षु धर्मरक्षित १)	खुदकपाठ— " १॥)
चरिया-पिटक— " १॥)	सिङ्गल सुत्त—भिक्षु कित्तिमा ३॥)

सूचीपत्र के लिए = के टिकट के साथ लिखें।

प्राप्ति स्थान :—

महाबोधि पुस्तक भण्डार, सारनाथ, वाराणसी।

Compted
1999-2004

